॥ श्रीः ॥

चौखम्बा लोकभारती : ग्रन्थमाला

३

# क्रोध-विजय

( प्राचीन-नवीन ज्ञान-विज्ञान और सर्व धर्म-ग्रन्थों के आधार पर क्रोध के स्वरूप, कारण, परिणाम, विजय आदि का सरल-सरस-विस्तृत विवेचन )

लेखक

डॉ० रामसरूप 'रसिकेश'

एम० ए० ( हिन्दी-संस्कृत ), एम० ओ० एल०, पी-एच्० डी०
विद्यावाचस्पति ( धर्म० )

पूर्व प्राध्यापक, डी० ए० वी० कालेज, लाहौर,
हंसराज कालेज, दिल्ली तथा दिल्ली विश्वविद्यालय

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वा रा ण सी

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा लोकभारती : ग्रन्थमाला

३

# क्रोध-विजय

( प्राचीन-नवीन ज्ञान-विज्ञान और सर्व धर्म-ग्रन्थों के आधार पर क्रोध के स्वरूप, कारण, परिणाम, विजय आदि का सरल-सरस-विस्तृत विवेचन )


लेखक

डॉ० रामसरूप 'रसिकेश'

एम० ए० ( हिन्दी-संस्कृत ), एम० ओ० एल०, पी-एच्० डी०,
विद्यावाचस्पति ( धर्म० )

पूर्व प्राध्यापक, डी० ए० वी० कालेज, लाहौर,
हंसराज कालेज, दिल्ली तथा दिल्ली विश्वविद्यालय


चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

# दो शब्द

बात कोई पचपन वर्ष पुरानी है। अपना एक दूर का सम्बन्धी था, रहता भी दूर ही था, पश्चिमी पाकिस्तान में, रावलपिंडी व पिशावर के दरम्यान में। बीस बरस का जवान, सुन्दर-पुष्ट पहलवान। नाम-धाम बताना अनुचित कि सम्बन्धी क्रोध न करने लगें। जब-जब रावलपिंडी आता, भेंट हो जाती। शनैः-शनैः परिचय प्रेम में परिवर्तित होता गया। पर्याप्त व्यवधान के पश्चात् एक दिन एकाएक उसके छोटे भाई से भेंट हो गई तो मैंने उससे उसके बड़े भाई का कुशल-क्षेम पूछा।

"वह तो पूरा हो गया।"*

"कैसे?"

"फाँसी चढ़ गया।"

प्रथम उत्तर ने मुझे शोक-मग्न कर दिया तो द्वितीय ने आश्चर्य-स्तब्ध। विवरण पूछा तो बोला—"उसने एक व्यक्ति से कुछ रुपये उधार लिये थे, जिन्हें वह प्रतिज्ञानुसार समय पर लौटा न सका। एक दिन लेनदार ने सरे बाज़ार ही रक़म लौटाने का इसरार किया और इसने क्रोध में चाकू के वार से उसका सीना चाक कर दिया। लेनदार तो वहीं दम तोड़ गया और हम इसे बचाने के लिए सिर-तोड़ दौड़-धूप करने लगे। अनेकों के सम्मुख सिर झुकाया, पानी की तरह पैसा बहाया पर कुछ भी हाथ न आया, वह फाँसी पर लटकाया गया। भला हो कमबख्त क्रोध का जो इसके प्राणों का ग्राहक और हमारी सुख-शान्ति का दाहक बन गया।"

---

* पंजाब में 'पूरा होना' का तात्पर्य है स्वर्ग सिधार जाना।

सम्बन्धि-सम्बन्धी घटना है, इसलिए सदा स्मरण रहती है, परन्तु
दुखदायी घटनाएँ तो आये-दिन होती ही रहती हैं। प्रति-प्रातः समाचार-पत्र
पढ़ते हैं कि क्रोधाधीन होकर प्रतिष्ठित सरकारी अधिकारी, वकील, डाक
प्रोफेसर आदि सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत लोग भी अपने निकटतम सम्बन्धियों
काम तमाम कर देते हैं और फलतः जीवन भर कारागार के कष्ट पाते वा फ
के तख्ते पर झूल जाते हैं। तब उन लोगों की तो कथा ही क्या जो निपट नि
क्षर, गँवार, निर्विवेक और उद्दंड हैं। उनके लिए तो तनिक-सी बात पर तैश
आकर किसी का अंग तोड़ना, सिर फोड़ना वा गर्दन मरोड़ना बायें हाथ का
है। उस समय तो आवेश में आ चित-चाही कर कलेजा ठंढा कर लेते हैं, प
पीछे वे स्वयं तथा उनके सम्बन्धी जो असह्य कष्ट-क्लेश उठाते हैं, उन्हें
जानते हैं, जिन पर बीतती है—

"घायल की गति घायल जानै को जिन लाई होय।" —मीरा

एक तो अपने उस बाल-सखा की अकाल मृत्यु, दूसरे प्रतिदिन पढ़ी-
जाने वाली हिंसात्मक घटनाएँ और तीसरे धर्म-ग्रन्थों में क्रोध की नितान्त नि
इन सब ने मुझे यह विचारने पर विवश कर दिया कि आखिर यह क्रोध है
बला, जिसके वशीभूत होकर कभी पति पत्नी का प्राणलेव बन जाता है, तो क
पत्नी पति को, कभी पिता पुत्र को मार डालता है तो कभी पुत्र पिता को, क
भाई भाई को तो कभी बहिन बहिन को, कभी ससुर जमाई को तो कभी जम
ससुर को, कभी राजा प्रजा को तो कभी प्रजा राजा को, कभी स्वामी से
को तो कभी सेवक स्वामी को, कभी मकान-मालिक किरायादार को तो क
किरायादार मकान-मालिक को, आदि आदि। उक्त जिज्ञासा की शान्ति के लि
उपयुक्त ग्रन्थ की खोज में बाजारों व पुस्तकालयों में चक्कर लगाये पर
विफलता के सिवा कुछ पल्ले न पड़ा। रामायण, महाभारत, पुराण, इतिहा
नीति-काव्य, निबन्ध-संग्रहों आदि में क्रोध-सम्बन्धी कुछ पद्य, विचार, निबन्ध
निस्सन्देह उपलब्ध थे, परन्तु उनके अध्ययन से प्राप्त सन्तोष 'ऊँट के मुँह

जीरा' की लोकोक्ति को ही चरितार्थ करता था। चारों ओर से लाचार हो स्वयं ही इस अछूते विषय पर लेखनी उठाने की ठानी और जहाँ-कहीं से जो कुछ भी उपयोगी सामग्री उपलब्ध हुई, उसका संचय आरम्भ कर दिया। भूमिका में उन लेखकों व ग्रन्थों का उल्लेख पुनरुक्ति मात्र होगा क्योंकि उनमें अधिकतर का उल्लेख परिशिष्ट में कर दिया गया है। उस अध्ययन तथा स्व-चिन्तन का निष्कर्ष आप के कर-कमलों में है। यदि इसके परीशीलन से पाठकों को अपना स्वभाव शान्त करने में, क्रोध पर विजय पाने में, निज गृहस्थी आनन्दमयी बनाने में तथा आधुनिक समाज में व्याप्त हिंसा को मिटाने में कुछ भी सहायता मिली तो मैं अपने परिश्रम को मोघ न मानूँगा।

प्रस्तुत पुस्तक आठ अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में भावों का स्वरूप स्पष्ट किया गया है क्योंकि क्रोध भी एक भाव है। द्वितीय अध्याय में क्रोध के स्वरूप तथा प्रकारों का विवेचन है। प्रायः तो क्रोध की सब कहीं भर-पेट निन्दा ही की जाती है, परन्तु हमने इस अध्याय में संक्षेपतः यह भी दिखाया है कि क्रोध सदैव क्रोध-भाजन नहीं होता, यदा-कदा प्रशंसा-पात्र भी बन जाता है। जो स्थान रोगि-चिकित्सा में रोग-निदान का है, वही क्रोध-विजय में क्रोध-कारणों के ज्ञान का। अतएव तृतीय अध्याय में हमने क्रोध-कारणों का उल्लेख किया है। परन्तु मानवों के कोप-कारणों का नहीं, जीव-जन्तुओं के क्रोध हेतुओं का। प्रश्न उठता है, मनुष्य क्रोध-सम्बन्धी पुस्तक में पशु-पक्षियों के कोप का विवरण क्यों? उत्तर यह है कि प्राणि-शास्त्र के अनुसार मनुष्य भी पशु-पक्षियों के ही विकसित भाई-बन्धु हैं। इसलिए मानवीय क्रोध के सम्यक् बोध के लिए जीव-जन्तुओं के कोप पर विहंगम दृष्टि डालना रोचक ही नहीं उपयोगी भी है। चतुर्थ अध्याय में हमने सामान्य मानवों के क्रोध-कारण पर सविस्तर प्रकाश डाला है, क्योंकि हम में से अधिकतर का सम्बन्ध इसी वर्ग से है। जैसे पशु-पक्षियों की अपेक्षा सामान्य मनुष्य अधिक विकसित हैं, वैसे ही, भाव व संवेगों के नियंत्रण की दृष्टि से, सामान्य मानवों की अपेक्षा महापुरुष। इस वर्ग में हमने महापुरुषों, ऋषि-

मुनियों, सिद्ध-तीर्थंकरों, पीर-पैगम्बरों, देवी-देवताओं, अवतारों तथा भगवान्
भी समाविष्ट कर लिया है। यद्यपि सामान्यतः यह समझा जाता है कि इस
के व्यक्ति सर्वथा सहनशील, शान्त व निष्क्रोध होते हैं, तथापि पंचम अध्याय
आप पढ़ेंगे कि तथ्य इसके विपरीत हैं। अपने कथन के समर्थन में हमने रामा
व महाभारत के पात्रों के क्रोध का विशेष रूप से विश्लेषण किया है क्योंकि
ग्रंथ एक तो भारत के प्राण हैं और दूसरे, दूसरे देशों के लोग भी इनसे न्यूनाधि
मात्रा में परिचित हैं।

जैसे क्रोध-कारणों के बोध से क्रोध-दमन में सहायता मिलती है, वैसे ही क्रो
के कुपरिणामों के परिचय से भी। कोप के वशवर्ती होकर इतिहास के प्रख्य
व्यक्तियों ने विश्व में क्या-क्या रोमांचकारी उत्पात मचाये हैं, इसका संक्षिप्त वर्ण
छठे अध्याय में द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त क्रोध से शरीर में क्या-क्या विक
उत्पन्न होते हैं तथा क्रोधी व्यक्ति किस-किस प्रकार से अपना भी अनिष्ट करत
है, इन बातों का उल्लेख तथा क्रोध के कतिपय सुपरिणामों की चर्चा भी इ
अध्याय में कर दी गई है।

यद्यपि परोक्ष रूप से पूर्ववर्ती सभी अध्याय क्रोध-विजय में सहायक हैं तथा
कोप-दमन के प्रत्यक्ष उपायों का वर्णन सातवें अध्याय में किया गया है। हमा
विश्वास है कि केवल नियमों तथा सिद्धान्तों के ज्ञान से मनुष्य उतना नहीं सीखत
जितना उन नियमों के धारक व्यक्तियों की जीवनियों से। इसी विश्वास
प्रेरित हो हमने आठवें अध्याय में कुछ क्रोध-विजयी व्यक्तियों की मर्मस्पश
घटनाओं को कालक्रमानुसार उपनिबद्ध किया है। ऐसे लोगों में हमने प्रायः सभ
देशों, कालों, धर्मों तथा वर्गों के विख्यात व्यक्तियों को लिया है, जिस से कोई य
न समझे कि ऐसे लोग किसी विशेष देश-काल-धर्म आदि में ही जन्म लेते हैं।

उपसंहार तो सार-रूप ही है, जिसमें समग्र ग्रंथ का सिंहावलोकन तथ
निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। ग्रंथ के अन्त में दो परिशिष्ट हैं। प्रथम में क्रोध
सम्बन्धी सूक्तियाँ हैं, द्वितीय में सहायक ग्रन्थों की सूचियाँ। ये सूक्तियाँ संसा

के सभी धर्म-ग्रन्थों तथा अन्य स्रोतों से संकलित की गई हैं। हमारा विश्वास है कि इनके श्रद्धा-पूर्वक दैनिक पाठ से क्रोधी जनों को शान्त तथा शान्त जनों को प्रशान्त बनने में यथेष्ट सहायता मिलेगी। इसी प्रकार जो लोग क्रोध के विषय में गम्भीरतर अध्ययन के इच्छुक हों, उनके लिए ग्रंथ-सूचियाँ भी सहायक सिद्ध होंगी।

अन्त में मैं उन सभी लेखकों व प्रकाशकों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिन द्वारा रचित व प्रकाशित पुस्तकों से प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन में सहायता ली गई है। दिल्ली चिड़िया-घर के संयुक्त निर्देशक श्री जे० एच० देसाई, राजेन्द्र नगर दिल्ली के वैद्य श्री रामरत्न पोपली, चितली कबर दिल्ली के श्री मुहम्मद फारूक खाँ, नागपुर के डाक्टर एच० एम० मुंजे तथा निजात्मजा डा० इन्दिरा बम्मी के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने प्रस्तुत कृति की रचना में अनेक प्रकार से सहयोग दिया है। ग्रन्थ-प्रकाशकों का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने इसे सुंदर रूप में प्रकाशित करने में स्तुत्य सहयोग दिया है।

अपनी ओर से पुस्तक को क्रोधोपशामक, ज्ञान-वर्द्धक तथा रोचक बनाने में मैंने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। परन्तु मनुष्यों के प्रयत्न कभी भी सर्वथा निर्दोष नहीं होते, जाने अनजाने अनेक त्रुटियाँ रह ही जाती हैं। इसके अतिरिक्त विधि की विडम्बना यह कि अपनी भूलों का भान भी सहज ही नहीं होता। अतः मैं सर्वविध त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना करता हुआ विद्वद् वृन्द से सविनय निवेदन करता हूँ कि मेरा ध्यान उनकी ओर आकर्षित करें, जिससे आगामी संस्करण अधिक निर्दोष व उपयोगी बन सके।

डी–१४१, नव राजेन्द्र नगर,<br>नव देहली–६०

विनीत—<br>रामसरूप

# विषय-सूची

प्रथम अध्याय

# भाव

यदि किसी पढ़े-लिखे व्यक्ति से पूछा जाय कि क्रोध क्या है, तो उत्तर मिलेगा—हृदय का एक भाव। सम्भव है, अपने कथन के समर्थन में वह यह भी कहे कि जैसे प्रेम, घृणा, आश्चर्य आदि भाव हैं, वैसे ही क्रोध भी। परन्तु प्रश्न पूर्णतया समाप्त नहीं हो जाता, क्रोध से भाव पर जा पहुँचता है। यदि क्रोध एक भाव है तो भाव क्या है? साधारण मनुष्य कह उठेगा—"यह भी कोई प्रश्न है जिसका उत्तर दिया जाय? भाव को सब समझते हैं। सबके मन में समय समय पर भिन्न-भिन्न भाव उत्पन्न होते हैं। कभी प्रेम के, कभी घृणा के, कभी क्रोध के, कभी क्षमा के आदि-आदि।" हम मानते हैं कि सबके मन में परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न भाव उत्पन्न होते हैं और सब उन्हें अनुभव भी करते हैं। इस पर भी हमारा विचार है कि अधिकतर लोग भाव के स्वरूप, प्रकार, कारण, परिणाम, महत्त्व आदि को भलीभाँति नहीं समझते और इस नासमझी का ही दुःखदायक परिणाम यह होता है कि कोई अवैध प्रेम के पाश में फँसकर कुल और कीर्ति को कलंकित कर देता है, कोई क्रोध की लपटों से जलता हुआ किसी की हत्या कर फ़ाँसी पर जा झूलता है, कोई अपनी ही हत्या कर डालता है, कोई लोभ के जाल में जकड़ा हुआ, रिश्वत आदि लेकर जेलों में जीवन बसर करता है, आदि-आदि। अतएव जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करने के लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है कि हम भावों के स्वरूप को सम्यक् समझें-समझायें, जिससे कि हम भावों का हनन तो नहीं, शमन और सदुपयोग अवश्य कर सकें। उन्हें नष्ट तो नहीं, अधीन जरूर बना सकें।

## भाव का स्वरूप

कभी-कभी वस्तुओं के नामों से भी उनके स्वरूप पर थोड़ा-बहुत प्रकाश पड़ ही जाता है। उदाहरणार्थ, रसोइये को पाचक इस कारण कहते हैं कि

वह पकाता है और कलम को लेखनी इस हेतु से कि उससे लिखा जाता है
इसी प्रकार देखना चाहिए कि 'भाव' शब्द से भी भाव के स्वरूप पर कु
प्रकाश पड़ता है वा नहीं। आज से लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व भारत में भ
नाम के आचार्य ने 'नाट्यशास्त्र' में इस विषय का विवेचन किया था। उन्हं
कहा है कि भावों को भाव इस कारण कहते हैं कि वे नाटकों में दर्शकों
मन को भावित करते हैं। तात्पर्य यह कि जैसे वास ( गन्ध ) से कोई कम
वासित ( सुगन्धित ) हो जाता है, वैसे ही भाव मानव के हृदय को व्या
कर देते हैं। वहाँ यह बात कही तो गई है नाट्य-कला के विषय में, पर
इसका सम्बन्ध हमारे विवेच्य विषय से भी है, अर्थात् जो मानवों के मन
व्याप्त कर देते हैं, वे भाव कहाते हैं, और सच पूछिए तो ऐसी बुरी तरह
व्याप्त करते हैं कि हमें उस समय किसी अन्य वस्तु की सुध-बुध ही न
रहती। इसीलिए तो लोग कहा करते हैं कि अमुक आदमी ने क्रोध से अ
होकर फलाँने की हत्या कर दी, और अमुक व्यक्ति ने प्रेम में पागल हो अप
ही प्राण दे दिये, आदि-आदि।

भावों को प्रायः मनोविकार, मनोवेग, मनोवृत्ति, चित्तावस्था या संवे
( Emotion ) भी कहा जाता है। क्या इन शब्दों से भी 'भाव' का स्वरू
समझने में कुछ सहायता मिलती है? हमारा उत्तर है—हाँ। भावों
मनोविकार कहने का कारण यह है कि ये मन की स्वस्थ—शान्त अवस्था
सूचक नहीं हैं, बल्कि उसमें होने वाले किसी विकार अर्थात् परिवर्तन
द्योतक हैं। 'मनोवृत्ति' तथा 'चित्तावस्था' शब्द यह प्रकट करते हैं
'भाव' मन की विशेष अवस्थाओं के ही नाम हैं। 'मनोवेग' या 'संवे
शब्द यह सूचना देते हैं कि मन निश्चल वा शान्त नहीं है, बल्कि अशान्त
क्षुब्ध है, वा हलचल से युक्त है। हम स्वयं भी साक्षात् अनुभव करते हैं
भय, क्रोध, घृणा, प्रेम, शंका आदि की दशा में मन स्वस्थ नहीं होता, उस
हलचल-सी मची रहती है। अंग्रेजी में भाव को 'इमोशन' कहते हैं। इस
तात्पर्य है कि जो हमारे शरीर में मोशन (Motion अर्थात् गति वा चेष्ट
उत्पन्न कर देता है, वह 'इमोशन' है। उदाहरणार्थ भाव का मन में संच
होने पर हम भागने के लिए तैयार हो जाते हैं और क्रोध-भाव का सच
होने पर हिंसा पर, इत्यादि।

पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों ने भाव की परिभाषा और व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। परन्तु, इस विषय पर सब सहमत हैं कि यह व्यक्तित्व की एक ऐसी जटिल स्थिति है, जिससे शरीर की श्वास-क्रिया, नाड़ी-गति तथा गिल्टियों से रस निकलने की क्रिया ( ग्रंथि-उदासर्ग Gland-secretion ) आदि में पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है। उस दशा में मन में एक जोश (आवेश) या क्षोभ की तीव्र अनुभूति होती है तथा प्राणी किसी विशेष प्रकार का व्यवहार करने को तैयार हो जाता है।[1] ध्यान से देखा जाय तो इस लक्षण के भाव की परिभाषा ही नहीं दी गई है, बल्कि उससे होने वाले कुछ शारीरिक परिवर्तनों का भी उल्लेख कर दिया गया है। भाव की परिभाषा में तो कोई भेद दिखाई नहीं देता।

## भाव के प्रकार

जैसे सागर सामान्य रूप से शान्त और निश्चल रहता है वैसे ही मन भी, परन्तु जिस प्रकार से समुद्र में आंधी, जहाज वा पनडुब्बी आदि के चलने से समुद्र के जल में हलचल और उथल-पुथल मच जाती है, उसी प्रकार आन्तरिक वा बाहरी कारणों से प्राणियों के मन में भी। जैसे जल में होनेवाले परिवर्तन हमारे सामने लहरों, भवरों, बुलबुलों, झाग आदि के रूप में उपस्थित होते हैं, वैसे ही मन में होनेवाले हेर-फेर, प्रेम, उत्साह, क्रोध, भय, घृणा आदि के रूप में। प्रश्न उठता है कि क्या भावों की गिनती की जा सकती है ? उत्तर यही है कि जैसे सागर की तरंगें असंख्य हैं, वैसे ही भाव भी। तो भी हर्ष का विषय है कि प्राचीन भारतीय आचार्यों ने इस विषय पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। अधिकतर साहित्याचार्यों के मत में मुख्य भाव निम्नलिखित हैं—१. रति ( प्रेम ) २. हास ३. शोक ४. क्रोध ५. उत्साह ६. भय ७. जुगुप्सा ( घृणा ) ८. विस्मय ( आश्चर्य ) ९. निर्वेद ( वैराग्य ) १०. आवेग ११. दैन्य १२. श्रम १३. मद १४. जड़ता १५. उग्रता १६. मोह १७ विबोध १८. स्वप्न १९. अपस्मार ( मिरगी ) २०. गर्व २१. मरण २२. आलस्य २३. अमर्ष २४. निद्रा २५. अवहित्था २६. उत्सुकता २७. उन्माद

---

१. जेम्स ड्रेवर, ए डिक्शनरी आफ साइकालोजी, (१९५६ ई०), पृ० ८०-८१।

२८. शंका २९. स्मृति ३०. मति ३१. व्याधि ३२. सन्त्रास ३३. लज्जा ३४ हर्ष ३५. असूया ३६. विषाद ३७. धैर्य ३८. चपलता ३९. ग्लानि ४०. चिन्त ४१. वितर्क। इनमें से प्रथम ८ को स्थायी भाव कहा गया और बाद के ३ को संचारी भाव। इन सभी भावों के स्वरूप तथा उदाहरण देने की आवश्यकता है और न स्थान, क्योंकि हमें क्रोध के संदर्भ में भावों प सामान्य रूप से ही विचार करना हैं। उपर्युक्त विवरण से इतना तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि मन के विचार (विशेष स्थिति) को भाव कहा जात है। यही बात 'अमरकोश' में आज से लगभग डेढ़ सहस्र वर्ष पूर्व अमर सिंह ने कही थी—विकारो मानसो भावः—अर्थात् मन का विकार ही भाव कहलाता है।

## भावोत्पत्ति के कारण

हम ऊपर कह चुके हैं कि भावों की उत्पत्ति आन्तरिक तथा बाहरी कारणं से होती है। नवजात शिशु को आरम्भ में दो ही अनुभूतियाँ ( Feelings ) होती हैं। दुःख की तथा सुख की। जब उसका पेट खाली होता है, तब रोता है, जब भर जाता है तब हँसता है। सुख-दुःख की ये मूल अनुभूतियाँ ही धीरे-धीरे विकसित होकर हास, भय, प्रेम, क्रोध आदि का रूप ग्रहण कर लेती हैं नन्हें शिशु को न साँप से डर लगता है न आग से। वह उनकी ओर निःसकोच हाथ बढ़ा देता है। जब उसे धीरे-धीरे समझा दिया जाता है कि सूर्य, अग्नि आदि दुःखदायक वस्तुएँ हैं, तब वह भय से भर कर उनकी ओर बढ़ने की नहीं, उनसे हटने की ही चेष्टा करता है। जब उसे पता चल जाता है कि माता के पास दूध है तो सही परन्तु मुझे देती नहीं, तब उसमें क्रमशः क्रोध भी जगने लगता है। वह अपने नन्हें कोमल कर-कमलों से माता को पीटने की भी चेष्टा करता है। माता उसे दूध आदि सुखदायक वस्तुएँ देती है, अतः उस से वह प्रेम भी करने लगता है। इसी प्रकार सुन्दर, सुखदायक वस्तुओं से प्रेम तथा गन्दी-दुःखदायक वस्तुओं के प्रति घृणा का भाव भी उसमें क्रमशः उत्पन्न होने लगता है।

## भावों के परिणाम

भाव मन में ही उत्पन्न और रंग-रूपरहित होते हैं, अतः हमें दिखाई नहीं

देते । तो भी कमरे में घुसती हुई बिल्ली हमारी क्रोध-भरी आँखों को देख वापस मुड़ जाती हैं और डाँटती-डपटती माता को देखकर बालक बाहर भाग जाता है । यदि भाव मन में ही रहते तो न बिल्ली लौटती न बच्चा भागता । उन्हें कैसे पता लग गया कि अन्दर घुसने और खड़े रहने में पिटाई की संभावना है । हमारी कुपित आँखों से बिल्ली को और माता की कड़वी वाणी से बालक को । बिल्ली और बच्चा हमारे मन के भावों को हमारे नेत्रों की मुद्रा तथा कण्ठ की ध्वनि से पहिचान लेते हैं । इसी प्रकार जब हमारे नेत्रों की मुद्रा और माता के कण्ठ की ध्वनि से प्रेम टपकता है तब बिल्ली और बच्चा हम से भागते नहीं, हमारी ओर भागते हैं । उदाहरणों से स्पष्ट है कि मन के विकार ( भाव ) शरीर में भी कुछ विकार ( परिवर्तन, चेष्टाएँ ) उत्पन्न कर देते हैं और शरीर के रंग-रूप तथा चेष्टाओं को देखकर हम मन की अवस्थाओं का अनुमान कर लेते हैं । जब कोई व्यक्ति हँसता-खिलखिलाता है तो हम अनुमान कर लेते हैं कि इसके मन में हर्ष का भाव है और जब आँसू बहाता है तो समझ जाते हैं कि इस के दिल में विषाद आदि है । सम्राट् अकबर के मुख्य सेनापति, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रहीम ने इसी बात का अपने एक मार्मिक दोहे में यों संकेत किया है—

**'रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेय ।**
**जाहि निकारो गेह से, कस न भेद कहि देय ।।'**

अर्थात् आँसू आँखों से ढुलक कर दिल का दुःख सब को बता देता है । ठीक ही है, जिसे तुम घर से निकालोगे वह तुम्हारे भेद दूसरों को क्यों नहीं बताएगा । इसी प्रकार शरीर का काँपना, चेहरे का रंग बदलना, रोंगटे खड़े होना आदि शारीरिक परिवर्तन भी हमें बता देते हैं कि किसी व्यक्ति के मन में किसी-न-किसी भाव का संचार हो रहा है । परन्तु यह भी स्मरण रहे, आज का मनुष्य अपनी सामाजिक अवस्था में नहीं है। वह मन को तो बहुत काबू में नहीं कर पाया, परन्तु काया पर उसने पर्याप्त अधिकार जमाया हुआ है । यह सम्भव है कि शोक से उसका हृदय दो-टूक हो रहा हो, परन्तु वह नयनों से नीर न बहाये । यह असम्भव नहीं है कि उसके दिल में तो आपके लिए द्वेष भरा हो, परन्तु वह आप से मीठी-मीठी बातें करता रहे । 'मुँह में राम-राम बगल में छुरी' की कहावत भी इसी बात की मनाही करती सुनाई देती है ।

इसलिए केवल बाहरी आकार-प्रकार से किसी के हृदय के भाव को ठीक-ठीक समझना सदा सम्भव नहीं होता। परन्तु यह भी भूलना न चाहिए कि जब किसी भाव का वेग अत्यन्त प्रबल होता है तभी वह संवेग ( Emotion ) कहलाता है और उस अवस्था में उसके प्रभाव से शरीर में कोई-न-कोई चेष्टा ( Motion ) होती ही है।

**भावों का उपयोग**

संस्कृत के किसी प्राचीन कवि का कथन है—

**नास्ति कामसमो व्याधि नास्ति मोहसमो रिपुः।**
**नास्ति क्रोधसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्॥**

अर्थ यह कि काम के समान कोई रोग नहीं, मोह के तुल्य कोई शत्रु नहीं, क्रोध के सदृश कोई आग नहीं और ज्ञान से बढ़कर कोई सुख नहीं। तात्पर्य यह कि काम, क्रोध, मोह आदि भाव रोग के समान संतापक, शत्रु के तुल्य नाशक और आग के समान दाहक है। इसलिए यदि दुःख, नाश और दाह से बचना हो तो ज्ञान की शरण में जाओ। इसी प्रकार चंद्रगोमी नाम के संस्कृत कवि ने कहा है—

**विषस्य विषयाणां हि दृश्यते महदन्तरम्।**
**उपभुक्तं विषं हंति विषया स्मरणादपि॥**

अर्थात् विष और विषयों को समान न समझो। इनमें तो बहुत भारी भेद है। देखिये ना, विष तो तभी मारता है जब हम उसे खा चुकते हैं, परन्तु विषयों का तो स्मरण ही शरीर में विकार उत्पन्न कर देता है। उनके सेवन की तो बात ही क्या? गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि में काम, क्रोध, लोभ आदि भाव दुर्दम दुर्जनों के सदृश दुःखदायी हैं—

**तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।**
**मुनि विग्यान धाम मन, करहिं निमिष महुँ छोभ॥**

( दोहावली, दोहा २६४ )

अर्थात् हे प्यारे, काम, क्रोध और लोभ, ये तीन अति प्रबल दुर्जन हैं। ये ज्ञानी-विज्ञानी मुनियों के मन में भी पल-भर में हलचल मचा देते हैं। भावों से प्रेरित मनुष्य भोगों में डूब जाता है, परन्तु कविवर रहीम ऐसे लोगों को कुत्तों से कम नहीं समझते—

**जो विषया सन्तन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।**
**ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान-स्वाद सों खात ॥**

—रहिमन विलास

अर्थात् "सन्तजन जिन विषयों को विष जानकर ठुकराते हैं; उन्हें ही मूर्ख लोग बड़े चाव से गले लगाते हैं। जैसे, जिस विषैले भोजन को मनुष्य कै के द्वारा बाहर निकाल देता है, उसी को कुत्ता स्वाद ले-लेकर खाता है।"

पुराने सन्तों तथा कवियों के भावों और भाव-जनित विषयों के सम्बन्ध में ऐसे विचार पढ़-सुनकर आधुनिक मनुष्य का दुविधा में पड़ना स्वाभाविक है। वह सोचने लगता हैं—क्या काम के विना सृष्टि चल सकती है, क्या क्रोध के बिना काम चल सकता है; क्या लोभ के विना अपना तथा अपनों का निर्वाह हो सकता है ? इत्यादि। यदि भावों के विना संसार के सब काम-धन्धे सुचारु रूप से चल सकते हैं तो जीव-जन्तुओं के मन में काम, क्रोध आदि भाव उत्पन्न ही क्यों होते हैं ? हमारे विचार में विचारों के समान भावों का स्थान भी जीवन में महत्त्वपूर्ण रहा है और रहेगा। जिज्ञासा का भाव न होता तो मनुष्य जंगली जीव ही बना रहता। वल्कल के ही वस्त्र पहनकर तथा जंगलों के ही फल-मूल खाकर ही संसार से विदा हो जाता। परन्तु उत्सुकता-वश उसने जल, स्थल और नभस्तल के असंख्य रहस्य खोजकर जीवन को कितना सुखमय बना लिया है। पहले वह संसार को मिथ्या और दुःखमय मानकर मृत्यु के पश्चात् सुखमय स्वर्ग और आनन्दमय अनन्त मोक्ष की प्राप्ति की इच्छा किया करता था। आज उसने संसार को ही इतना सुखमय तथा आनन्दमय वना लिया हैं कि स्वर्ग और अपवर्ग ( मोक्ष ) उसे प्राचीनों की कल्पनायें ही प्रतीत होते हैं। वात्सल्य की भावना से भरकर माता-पिता बच्चों को कण्ठ से लगाकर दिव्यसुख का अनुभव करते हैं। मोह के वश में होकर ही दरिद्र जननी-जनक भी बीमार बच्चे की इतनी अमूल्य सेवा-शुश्रूषा करते हैं जितनी अस्पतालों की पर्याप्त वेतन पाने वाली परिचारिकाएँ भी नहीं करतीं। पुण्य की भावना से प्रेरित होकर वृद्ध स्त्रियाँ भी लाठी टेक-टेक कर अमरनाथ और बद्री-केदार की उन उत्तुंग चोटियों पर जा चढ़ती हैं, जिन्हें भाव-हीन जन व्यर्थ समझकर आँख उठाकर देखना भी नहीं चाहते। स्वदेश-प्रेम के भाव से भरकर लाखों स्त्री-पुरुष अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र करने वा रखने के लिए

अपने अमूल्य प्राणों को तिल के तुल्य तुच्छ मानकर सहर्ष त्याग देते हैं। अपने चूजों की रक्षा करने के भाव से उत्सहित मुर्गी मस्त हाथी तक को अपनी चोंच तथा पंजों से अंधा बना देती है। भय के भाव से ही ओत-प्रोत होकर और भागकर छोटे-मोटे जंगली जीव वन के हिंसक-पशुओं से निज-रक्षा में समर्थ होता है। वीरता तथा क्रोधके भावों से भरकर ही बालक अभिमन्यु महाभारत के संग्राम में अनेक प्रौढ़ योद्धाओं का सामना करने का साहस कर सका धर्म के भाव से ही ओत-प्रोत कर सहस्रों सती-साध्वी स्त्रियाँ ज्वलन की ज्वालाओं को जल के समान शीतल जान उनमें कूद गईं और पातिव्रत के पवित्र भाव से ही प्रेरित होकर सैकड़ों-सहस्रों स्त्रियाँ स्वर्गगत स्वामियों के साथ सहर्ष सती हो गईं। सच पूछिये तो भावों की महिमा महान् है; उनके बिना जहान सुनसान है तथा जीवन श्मशान है।

संभव है, आप सोच रहे हों कि प्राचीन लोग भ्रम में थे और आज के ज्ञान-विज्ञान ने पुराने भ्रम के तम को नष्ट कर दिया है। यदि आप ऐसा सोचते हों, तो अंशतः ठीक ही है। आज यदि सहस्रों-लाखों बरसों के बीत जाने के बाद भी हम जहाँ-के-तहाँ खड़े रहें तो समझना चाहिए, हम जीवित नहीं हैं, मृत हैं। जीवन बढ़ने का ही नाम हैं, स्थिर रहने का नहीं। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन युगों के लोग भी भावों के महत्त्व को भली-भाँति समझते थे और उपयुक्त अवसरों पर उनका सु-प्रयोग भी करते थे। उदाहरणार्थ, महाभारत के युद्ध से पूर्व अर्जुन के मोह के निवारण तथा उसमें उत्साह के संचारण के लिए श्रीकृष्ण ने इन शब्दों का उच्चारण किया था—

**कुतस्त्वा कश्मलमिद विषमे समुपस्थितम्।**
**अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥**
**हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा मोक्ष्यसे महीम्।**
**तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥**

(भगवद्गीता २।२, ३७)

तात्पर्य यह कि "हे अर्जन, ऐसे विकट समय में यह मोह तुझ में कहाँ से आ गया? यह श्रेष्ठ लोगों के अयोग्य, स्वर्ग से दूर करने वाला तथा अपयश देने वाला है। अपने अधिकारों के लिए लड़ता हुआ यदि तू युद्ध में मारा गया

तो स्वर्ग को प्राप्त करेगा और यदि जीत गया तो पृथिवी के सुख भोगेगा। इसलिए युद्ध करने का दृढ़ संकल्प कर के तू उठ खड़ा हो।" स्पष्ट ही है कि यहाँ पर श्रीकृष्ण अर्जुन के मन में अपयश से होने वाले भय के भाव तथा लोक-परलोक में प्राप्य सुखों का प्रलोभन अर्थात् लोभ-भाव जगाकर उसे युद्ध के लिए उत्तेजित कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि यदि जीवन में भावों का उपयोग तथा महत्त्व अधिक है तो प्राचीन और मध्यकालीन सन्तों ने काम, क्रोध आदि भावों को नरक का द्वार क्यों कहा। उत्तर यही सूझता है कि वे प्रत्यक्ष में देखते थे कि काम की अधिकता से मनुष्य या तो व्यभिचारी बन जाता है, या अपने स्वास्थ्य वा जीवन से ही हाथ धो बैठता है; क्रोध की बहुतायत से या तो वह सामान्य अपराधों पर भी मनुष्य-हत्या जैसे घोर पाप कर बैठता है या अपने घरेलू वा सामाजिक जीवन को दुःखमय बना डालता है, लोभ के अतिशय से या तो वह जीवन का लक्ष्य ही धन बटोरना बना लेता है या सम्पत्ति-संग्रह की धुन में पल-पल पाप करने में भी संकोच नहीं करता, इत्यादि। अंग्रेजी की एक लोकोक्ति का भाव यह है कि चाँद को लक्ष्य बनाओगे तभी पर्वत-शिखर को बींध पाओगे। सम्भवतः प्राचीन महात्माओं ने भी उक्त भावों को इसी उद्देश्य से घोर शत्रु कहा था कि यदि इन्हें जड़ से उखाड़ने का उद्योग किया जायगा तभी इनको वश में किया जा सकेगा। आज के विचारक तथा कवि जहाँ इनके रचनात्मक प्रभावों का उल्लेख करते हैं, वहाँ इनके ध्वंसात्मक प्रभावों की भी उपेक्षा नहीं करते। उदाहरणार्थ, हिन्दी के दिवंगत कवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भावों के गुण-दोषों के सम्बन्ध में अपने स्वस्थ विचारों को 'मर्म स्पर्श' में यों व्यक्त किया है—

**काम-क्रोध मद लोभ मोह से पूरित है भव सारा।**
**इनके विविध प्रपञ्चों से कब किसे मिला छुटकारा?**
**मानव-तन में ये पारस हैं, इनके परसे सोना।**
**बनते हैं कुधातु, यदि कुत्सित मति का लगे न टोना।।**
**यदि काम न होता तो कैसे सृष्टि-सृजन हो पाता?**
**यदि न क्रोध होता प्रवृत्ति-पति कैसे कौन बचाता?**
**यदि न लोभ होता तो हित की ललक न रक्षित रहती?**
**यदि न मोह होता तो ममता कितनी आँचें सहती!**

**यदि मद होता नहीं आत्मगौरव क्यों रक्षित रहता ?**
**कैसे संकटमय जग में जन-जीवन समुद न बहता।**
**कामादिक के अनुचित निन्दित घृणित प्रयोगों द्वारा ॥**
**अत्याचार-विरत लोगों ने ले अन्याय-सहारा।**
**जितने अत्याचार किये, की है जितनी निर्दयता ॥**
**उनको कहते वज्र-हृदय भी बार-बार है कँपता ॥**

सार रूप में कह सकते हैं कि मानव जीवन में भाव उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने विचार—हृदय उतना ही महत्त्वशाली है जितनी बुद्धि। जीवन की नौका को गति देते हैं भाव और मार्ग दिखाते हैं विचार। न वह भावों के बिना चल सकती है और न विचारों के बिना लक्ष्य पर पहुँच सकती है। इसलिए विचारों और भावों के सुन्दर उपयोग से ही हम मानव जीवन में कुछ विशेष कार्य कर सकते हैं, अन्यथा सामान्य बातों मे ही उसे नष्ट कर संसार से चल देते हैं। भावों के इस सामान्य विवरण के पश्चात् हम एक अत्यन्त प्रबल भाव—क्रोध के स्वरूप के सम्बन्ध में आगामी अध्याय में कुछ प्रकाश डालेंगे।

## द्वितीय अध्याय

# क्रोध

### क्रोध का स्वरूप

गत अध्याय में भावों का विवेचन करते हुए हम कह चुके हैं कि क्रोध एक भाव है अर्थात् हृदय की एक विशेष दशा। सो अव देखना यह चाहिए कि वह हृदय की कौन-सी दशा है जिसे क्रोध कहते हैं।

संस्कृत भाषा के कोशों में 'क्रोध' के प्रायः निम्नलिखित पर्याय प्राप्त होते हैं—कोप, रोष, अमर्ष, प्रतिघ, भीम, संरम्भ तथा मन्यु। इन शब्दों की रचना पर ध्यान देने से भी क्रोध के स्वरूप पर थोड़ा-वहुत प्रकाश पड़ ही जाता है। 'क्रोध', शब्द 'क्रुध्' धातु से वना है और 'कोप' शब्द 'कुप्' धातु से। दोनों ही 'गुस्से होना' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। 'रोष' शब्द 'रुष्' धातु से वना है, जिसका अर्थ क्रोध करना ही नहीं, मारना-पीटना, सताना और सताया जाना भी है। इससे प्रकट होता है कि रोष आने पर मार-पीट भी सम्भव है तथा अपना और पराया मन भी दुःखित होता है। 'अमर्ष' शब्द अनमर्ष के संयोग से वना है 'मर्ष' शब्द 'मृष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ सहना, क्षमा करना वा इजाजत देना। सो 'मर्ष' के अभाव अर्थात् न होने को 'अमर्ष' कहते हैं। तात्पर्य यह कि क्रोध को अमर्ष इस कारण कहा जाता है कि क्रोध की अवस्था में मनुष्य अन्याय नहीं सहता, पराया दोष क्षमा नहीं करता और कोई अनुचित कार्य करने की अनुमति नहीं देता। 'प्रतिघ शब्द' ( प्रति + हन ) से बना है। 'प्रति' उपसर्ग का प्रयोग 'बदला' के अर्थ में और 'हन्' धातु का हिंसा, पीटना, जीतना आदि अर्थों में होता है। इस प्रकार 'प्रतिघ' शब्द से यह विदित होता है कि क्रोध की दशा में मनुष्य प्रतिशोध अर्थात् बदले की भावना से प्रेरित हो कर किसी को मारता-पीटता वा वश में करता है। यूनान के तत्त्वज्ञ अरस्तू का मत है कि किसी से प्राप्त कष्ट का वदला लेने की इच्छा ही क्रोध है[1]। सो

---

1. Anger is the desire to repay suffering—Aristotle.

'प्रतिघ' शब्द अरस्तू के क्रोध-लक्षण से मिलता-जुलता ही है। 'भीम' शब्द 'भी धातु से बना है, जिसका अर्थ है डरना तथा डराना। क्रोध को भीम इसलि कहा जाता है कि लोग इससे डरते हैं वा यह लोगों को डराता है। 'संरम्भ शब्द 'सम + रम्भ' से व्युत्पन्न होता है और इसका अर्थ है—भलीभाँति शब्द करना। सो 'क्रोध' को 'संरम्भ' इस कारण कहते हैं कि मनुष्य क्रोध की अवस्था में खूब गरजता है। 'मन्यु' शब्द 'मन्' धातु से सिद्ध होता है जिसका अर्थ है—अभिमान करना। क्रोध की दशा में अभिमान की अनुभूति मन में रहती है। मनुष्य अपने को बड़ा तथा विरोधी को तुच्छ मान उसे पीस डालने को उद्यत हो जाता हैं। इस प्रकार क्रोध के उपर्युक्त पर्याय स्थूल रूप से यह संकेत करते हैं कि क्रोध हृदय का वह भाव है जिसमें मनुष्य अपमान, अन्यायादि नहीं सहता, प्रतिकार करना वा प्रतिशोध लेना चाहता है तथा भयंकर रूप धारण कर खूब गरजता वा मार-पीट करता है। उस अवस्था में उसके मन में विशेष हलचल ही नहीं होती, अभिमान भी विद्यमान रहता है।

## साहित्य-शास्त्रों में क्रोध

कोशकारों ने तो स्थूल दृष्टि से 'अमर्ष' को 'क्रोध' का पर्यायवाची लिख दिया है, परन्तु साहित्यशास्त्रियों ने इस विवेचन के प्रसंग में 'अमर्ष' को संचारी भाव माना है और क्रोध को स्थायी भाव। पं० विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण' में अमर्ष का लक्षण इस प्रकार किया है—

**निन्दादोषापमानादेरमर्षो ऽभिनिविष्टता।**
**नेत्ररागशिरः कम्पभ्रूभङ्गोत्तर्जनादिकृत्॥**

(३।१५६)

अर्थात् निन्दा, दोषारोपण, अपमानादि से उत्पन्न हुए हृदय के क्षोभ को अमर्ष कहते हैं। इसके कारण नेत्रों में लाली, सिर में कंपन, तेवर चढ़ना, डांट-डपट आदि क्रियाएँ होती हैं। पडितराज जगन्नाथ ने 'रसगंगाधर' में 'अमर्ष' की परिभाषा यों दी है—

**परकृतावज्ञादिनानापराधजन्यो मौनवाक् ।**
**पारुष्यादिकारण भूतश्चित्तवृत्तिविशेषोऽमर्षः ॥**

अर्थात् अमर्ष चित्त की एक विशेष वृत्ति वा अवस्था को कहते हैं । यह अवस्था तब होती है जब किसी मनुष्य का उचित आदर नहीं किया जाता वा उसकी आज्ञा का उल्लंघन किया जाता है । अन्य भी कई अपराधों से अमर्ष हो सकता है । अमर्ष से युक्त व्यक्ति या तो चुप कर जाता है या कठोर वाणी आदि का प्रयोग करता है । तात्पर्य यह कि अमर्ष क्रोध से कुछ हलका और अस्थायी होता है । इसमें मनुष्य अपनी उपेक्षा, निरादर आदि के कारण दूसरे को डाँट-डपट तो देता है, परन्तु कुपित व्यक्ति के समान मार-पीट और हत्या आदि नहीं करता । साहित्यशास्त्रियों के अनुसार, क्रोध की अवस्था में भी अमर्ष क्रोध की वृद्धि में सहायक होता है ।

क्रोध की परिभाषा पं० विश्वनाथ ने इन शब्दों में की है—

**प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यावबोधः क्रोध इष्यते ॥**
( साहित्यदर्पण ३।१७७)

अर्थात् शत्रुओं के प्रति तीव्रता की अनुभूति को क्रोध कहते हैं । रौद्ररस के विवेचन में उन्होंने तथा अन्य साहित्याचार्यों ने क्रोध के स्वरूप पर जो प्रकाश डाला है उसे सरल शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं । शत्रुओं तथा विरोधी पक्ष के व्यक्तियों को देखकर क्रोध उत्पन्न होता है । उनके द्वारा किये हुए निन्दा, निरादर, अपकार, गाली-गलौज आदि अनिष्ट कार्य क्रोध को अधिक भड़का देते हैं । क्रोध आने पर मनुष्य का मुख तथा नेत्र लाल हो जाते हैं और भँवें टेढ़ी हो जाती हैं । क्रुद्ध मनुष्य दाँत पीसता है, होंठ चबाता है, कड़वे शब्द बोलता है, डाँटता-डपटता है तथा विरोधियों को ललकारता है। इतना ही नहीं, वह मुक्का तान तथा शस्त्रादि उठा लेता है । ऐसी स्थिति में उसके चित्त में मद, उग्रता, अमर्ष, चंचलता, उद्वेग, असूया, स्मृति आदि अनेक भाव आते-जाते हैं जिनसे क्रोध और भी तीव्र होता जाता है। कहना न होगा कि साहित्याचार्यों की उपर्युक्त परिभाषाओं में क्रोध के कारणों तथा उससे उत्पन्न होने वाले शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तनों का भी कुछ संकेत मिल जाता है ।

## कवि-जन और क्रोध

प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक कवियों ने भी स्व-स्व रचनाओं क्रोध के स्वरूप पर प्रसंगवश कुछ-न-कुछ प्रकाश डाला ही है। उदाहरण: कुछ पद्य देखने योग्य हैं। महर्षि व्यास ने 'महाभारत' में क्रोध के सम्बन्ध लिखा है—

**अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि,**
**पापानुबंधं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।**
**सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो,**
**मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य।**

( विदुरनीति ४।६८

विदुरजी धृतराष्ट्र को उपदेश देते हुए कहते हैं—महाराज, क्रोध एव ऐसा पेय ( पीने योग्य पदार्थ ) है जो बिना रोग के उत्पन्न, कड़वा, सिर-दर्द उत्पन्न करने वाला, पाप से सम्बद्ध, कठोर, तीखा और गरम है। इसे सज्जन ही पी सकते हैं, दुर्जन नहीं। आप भी इसे पीकर ( दबाकर ) शान्त हो जाएँ। भाव यह कि क्रोध से सिर-दर्द, कटुता, कठोरता, पाप, आदि उत्पन्न होते हैं, अतः उसे वश में करना चाहिए और शान्त रहना चाहिए। व्यासजी ने तो क्रोध को एक पेय कहा है, परन्तु किसी अन्य कवि ने परम शत्रु—

**क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणाम्,**
**देहस्थितो देहविनाशनाय।**
**यथास्थितः काष्ठगतो हि वह्निः,**
**स एव वह्निर्दहते च काष्ठम्॥**

( व्याख्यानमाला, पृ० १६ )

अर्थात् क्रोध मनुष्यों का सबसे बड़ा शत्रु है। अन्य शत्रु तो बाहर से हमारे शरीर पर आक्रमण करते हैं, परन्तु यह हमारे शरीर के विनाश के लिए शरीर के अन्दर ही रहता है। जैसे लकड़ी के अन्दर रहने वाली अग्नि उस लकड़ी को ही जला डालती है, वैसे ही शरीर मे स्थित क्रोध शरीर को। एक अन्य विद्वान् के विचार में तो क्रोध प्राण-घातक विष से भी भयंकर वस्तु है–

**क्रोधस्य कालकूटस्य विद्यते महदन्तरम् ।**
**स्वाश्रयं दहति क्रोधः कालकूटो न चाश्रयम् ।।**

( व्याख्यानमाला, पृ० १५ )

भाव यह कि जो क्रोध को भयंकर विष-मात्र कहता है, वह भूलता है। कारण, क्रोध और कालकूट विष में भारी भेद होता हैं। विष तो अपने आधार ( शीशी, डिबिया आदि ) का संहार नहीं करता, परन्तु यह क्रोध तो अपने आश्रय ( अर्थात् क्रोध करने वाले ) को जला डालता है। प्राकृत-भाषा के एक कवि ने क्रोध को विष तो कहा ही है, उसका इलाज भी बता दिया है—

**कोहा विसं किं अमयं अहिंसा,**
**माणो अरी, किं हियमप्पमाओ ।**
**माया भयं, किं सरणं तु सच्चं,**
**लोहो, दुहं किं सुहमाहु, तुट्ठिं ।।**

( प्राकृत सुभापितसंग्रह, पृ० ४२ )

**अर्थः—क्रोध तो विष है, फिर अमृत क्या है? अहिंसा।**
**अभिमान तो शत्रु है, फिर मित्र क्या है? अप्रमाद।**
**माया तो भय है, फिर विश्राम क्या है? सत्य।**
**लोभ तो दुःख है, फिर सुख क्या है? सन्तोष।**

सन्तकवि मलूकदास की दृष्टि में क्रोध काले नाग से कम नहीं है। वह प्रभु-प्राप्ति के पथ के पथिकों को लूटनेवाला कपटो लुटेरा है—

**राम मिलन क्यों पाइये, मोहि राखा ठगवन घेरि, हो**
**क्रोध तो काला नाग है, काम तो परघट काल।**
**आप-आप को खैंचते, मोहि कर डाला बेहाल, हो ।।**

( सन्त सुधासार, २, पृ० ३१ )

स्वामी सुन्दरदास का विचार है कि क्रोधादि मानसिक विकार ठगों से किसी प्रकार भी कम नहीं है। जैसे धूर्त ठग भोले यात्रियों को धोखा देकर उनके धन और प्राण हर लेते हैं, वैसे ही क्रोधादि विकार और इन्द्रिय-भोग मनुष्य के जीवन का सर्वनाश कर देते हैं—

श्रवनूँ लै जाइ करि नाद की लै डारै पासि,
नैनवाँ लै जाइ करि रूप बसि कर्यौ है।
नथुवा लै जाइ करि बहुत सुँघावै फूल,
रसनूँ लै जाइ करि स्वाद मन हर्यौ है।
चरनूँ लै जाइ करि नारी सौं सपर्श करै,
सुन्दर कोउक साध ठगनि तैं डर्यौ है।
काम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग,
ठगन की नगरी मैं जीव आइ पर्यौ है॥

( सुन्दरदास : सवैया, उपदेश चितावनी को अग )

स्वर्गीय पं० रामनरेश त्रिपाठी क्रोध को अपने ही घर में रहनेवाले शत्रु से कम नहीं समझते। उनका विचार है कि इस शत्रु पर विजय पाने से मनुष्य समस्त जगत् को जीत सकता है—

**क्रोध तुम्हारा प्रबल शत्रु है, बसा तुम्हारे घर में।**
**हो सकते हो उसे जीत कर विजयी तुम जग भर में॥**

( रामनरेश त्रिपाठी, पथिक, पृ० ५८ )

कविवर अनूप के मत में क्रोध का भाव भयकर भूख के समान है। जैसे अतिभूखा व्यक्ति किसी पदार्थ को निगल जाता है, वैसे ही अतिक्रुद्ध व्यक्ति भी किसी का काम-तमाम कर ही डालता है।

कुपित मनुष्य सिंह के समान निर्दय ही होता है—

**महाबुभुक्षा-सम क्रोध-भाव है,**
**उसे सदा खाद्य पदार्थ चाहिए।**
**मृगेन्द्र का दारुण ही स्वभाव है,**
**प्रकोप का मारण ही प्रभाव है।**

( अनूप : वर्द्धमान, पृ० ५३९)

### क्रोध के प्रकार

विचार करने पर विदित होता है कि क्रोध एक प्रकार का नहीं, अनेक प्रकार का है। यदि कोई व्यक्ति हमारा नुकसान वा अपमान अज्ञान-वश कर

दे, तो उस पर हमें उतना क्रोध नहीं आता, जितना जान-बूझकर हानि करने वाले पर। यदि गोद में स्थित शिशु हमारे वस्त्र गीले वा पीले कर दे, तो न हमारा मुख लाल होता है, और न हम उस के गाल लाल करते हैं। तो भी मन पहले के समान प्रसन्न तो नहीं रहता। सम्भव है, हम उसे कुछ भी न कहें और यह भी असम्भव नहीं कि हम उसे बेईमान, नालायक, गधा आदि विशेषणों से 'विभूषित' कर दें। यह भी सम्भव है कि हमारा हाथ उस पर हलका-सा भी न उठे और यह भी असम्भव नहीं कि हम उसके गालों पर वात्सल्य-खीझ-मिश्रित एक-दो हलकी-फुलकी चपत लगा भी दें। इसके विपरीत, जब कभी कोई वयस्क व्यक्ति अनुमति के बिना, अन्यथा किसी होलियों के दिनों में किसी रंग-रूप अबीर-गुलाल से सरकस के जोकर-सा कर देता है, तो वह अप्रसन्न ही नहीं होता, गाली-गलौज तथा लड़ाई-झगड़े पर भी उतर आता है, जिससे अनेक बार दुःखदायक साम्प्रदायिक दंगे तक भड़क उठते हैं। इस प्रकार यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि कारणों, परिस्थितियों तथा व्यक्तियों के स्वभाव की भिन्नता के कारण क्रोध के अनेक प्रकार होते हैं, जिन्हें खीझ, चिड़चिड़ाहट, अमर्ष, वैर आदि अनेक नाम दिये जाते हैं। इन सब पर विस्तार-पूर्वक लिखें तो अनेक पृष्ठ भी पर्याप्त न होंगे, इसलिए संक्षेप पर सन्तोष करना ही समीचीन जँचता है।

खीझ, क्रोध की अतिक्षीण अवस्था है। जब कोई अनुचित बात देख-सुनकर मन की प्रसन्नता नष्ट हो जाय तथा दुःख-मिश्रित हलका-सा क्रोध उत्पन्न हो जाय, तब यह समझना चाहिए कि मन को खीझ ने व्याप्त कर लिया है। बसों आदि में अशिष्ट व्यक्तियों द्वारा सहयात्री कन्याओं वा महिलाओं को लक्ष्य कर की गई अभद्र चेष्टाओं वा किये गये अश्लील व्यंग्यों को देख-सुनकर मन में खीझ ही उत्पन्न होती है। कई बार तो ऐसी खीझ से बचने के लिए ही अनेक भद्र व्यक्तियों को बस-यात्रा त्याग कर किसी अन्य वाहन की शरण लेनी पड़ती है।

चिड़चिड़ाहट भी, खीझ के समान ही, क्रोध का हलका-सा रूप है। जीवन में प्रतिदिन ऐसे अनेक क्षण आते हैं, जिनमें हमें सुविधाएँ यथेष्ट रूप में प्राप्त नहीं होतीं। बसों आदि के समय पर न मिलने से, उनमें भीड़-भड़क्का अधिक होने से, रेजगारी आदि के यथेष्ट मात्रा में न मिलने से, राशन आदि के लिए

लम्बी लाइन में लगने से हमारे मन की खीझ चिढ़ में बदल जाती है। ऐसी घटनाओं का कभी घाटा नहीं होता, इसलिए चिड़चिड़ाहट हमारे स्वभाव में समाविष्ट हो जाती है और हम धैर्य से हाथ धो बैठते हैं अन्य मानसिक विकारों के समान यह भी एक मानसिक दुर्बलता है, जो रोगियों तथा वृद्धों को शीघ्र ही वश में कर लेती है। इसके कारण मनुष्य प्रायः बुड़बुड़ाने लगता है और बच्चों को विनोद की सामग्री मुफ्त में ही मिल जाती है।

जब कोई बली, धनी वा विद्वान् व्यक्ति किसी निर्बल, दरिद्र वा मूर्ख की निन्दा करता है, तब उस निन्दित वा अपमानित व्यक्ति में अमर्ष अर्थात् असहनशीलता उत्पन्न होती है। वह कह उठता है—"अब तक जो कुछ तुमने कहा, मैं सहता रहा। अब और न सहूँगा।" यह एक प्रकार से प्रतिकार की इच्छा ही है और क्रोध की पूर्वावस्था है। पूर्ण क्रोध की दशा में तो तिरस्कृत व्यक्ति तिरस्कर्ता के प्रति अधिक प्रचण्ड होकर उसके प्राणों का ग्राहक तथा उसके घर-बार का दाहक तक बन जाता है।

वैर भी क्रोध का एक प्रकार ही है। विद्वानों ने वैर को क्रोध का अचार वा मुरब्बा कहा है। हमारे मत में मुरब्बे की अपेक्षा अचार ही कहना अधिक उपयुक्त है और वह भी लाल-मिर्चों का। क्रोध व वैर का भेद काल-कृत है अपमानित क्रुद्धव्यक्ति तुरन्त तिरस्कर्ता के दाँत तोड़ देता है, सिर फोड़ देता है वा गर्दन मरोड़ देता है। परन्तु यदि किसी कारण-वश शत्रु को तत्क्षण दण्डित न किया जा सके, तो मन में वैर की गाँठ बाँध लेता है, और उपयुक्त समय आने पर, प्रतिशोध लेकर कलेजे की आग ठंढी करता है। चूहे को देखते ही बिल्ली झपट पड़ती है और भेड़ को देखते ही भेड़िया। यद्यपि, सामान्य बोल-चाल में 'बिल्ली-चूहे का वैर' कह दिया जाता है, तो भी ऐसे स्थलों पर वैर शब्द का प्रयोग तात्त्विक नहीं लाक्षणिक होता है। वस्तुतः तो वैर वहीं होता है जहाँ क्रोध को कुछ काल तक दिल में सभाल कर रखा जाय और उपयुक्त अवसर आने पर पूरी कोर-कसर निकाल ली जाय। बच्चों व सज्जनों में क्रोध का उदय तो होता है, परन्तु वैर से प्रायः वे दूर ही रहते हैं। क्रोध-कारण के दूर होने पर उनका क्रोध भी काफूर हो जाता है, अचार की तरह चिरकाल तक सुरक्षित नहीं रहता।

जैन धर्म-ग्रन्थों में क्रोध के चार प्रकार कहे गये हैं—१. संज्वलन क्रोध २. प्रत्याख्यानी क्रोध ३. अप्रत्याख्यानी क्रोध तथा ४. अनन्तानुबन्धी क्रोध। संज्वलन क्रोध क्षणिक होता है। जैसे जल में खींची हुई रेखा कुछ ही क्षणों में लुप्त हो जाती हैं, वैसे ही संज्वलन क्रोध शीघ्र ही शान्त हो जाता है। प्रत्याख्यानी क्रोध संज्वलन क्रोध से कुछ अधिक स्थायी होता है। उसकी उपमा रेत में खींची हुई रेखा से दी जाती है, जो पवन के प्रवाह आदि से पक्ष वा मास-भर में मिट जाती है। अप्रत्याख्यानी क्रोध पूर्वोक्त दोनों क्रोधों से अधिक टिकाऊ होता है। उसकी तुलना धरती में पड़ी दरार से की जाती है। जैसे धरा की दरार वृष्टि आदि से कुछ मासों में ही भरती है, वैसे ही अप्रत्याख्यानी क्रोध भी एकाध वर्ष में ही शान्त होता है। सबसे बुरा तो अनन्तानुवन्धी क्रोध है जिसका अन्त मनुष्य के अन्त से पूर्व नहीं होता। वह तो पहाड़ में पड़ी दरार की तरह पटने में ही नहीं आता। कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं कि क्रोध के ये भेद उसकी सत्ता के समय को दृष्टि में रख कर ही किये गये हैं।

आश्रय ( क्रुद्ध व्यक्ति ) की दृष्टि से क्रोध के चार भेद किये गये हैं :—

**उत्तमे तु क्षणं कोपो मध्यमे घटिका-द्वयम्।**
**अधमे स्यादहोरात्रं चाण्डाले मरणान्तिकः॥**

( अच्युतानन्द : व्याख्यानमाला, पृ० १५ )

अर्थात् उत्तम लोगों का क्रोध क्षण-भर रहता है, मध्यम जनों का दो घड़ी भर, अधमों का दिन-रात मात्र और चण्डालों का मृत्यु-पर्यन्त।

यूनान के विख्यात दार्शनिक अरस्तू भी क्रोध को एक ही प्रकार का नहीं मानते। उनका विचार है—"क्रोध के विषय में भी हमें अधिकता, न्यूनता तथा मध्यमता दिखाई पड़ती है। हम मध्यमता को कोमलता, अधिकता को चण्डता तथा न्यूनता को निर्जीवता का नाम दे सकते हैं।"[1]

## क्रोध : अनुचित तथा उचित

क्रोध के उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त दो भेद और किये जा सकते हैं—अनुचित तथा उचित। अनुचित क्रोध की निन्दा प्रायः पढ़ी-सुनी तथा की जाती

---

1. ( Aristotle : Ethics, p. 10 )

है। हम भी पीछे, क्रोध के स्वरूप के प्रसंग में, उसे शत्रु, अग्नि, विष अ
कह चुके हैं। आगे भी इसके सम्बन्ध में यथास्थान यथेष्ट कहने का अव
मिलेगा। इसलिए यहाँ उसे यहीं तक सीमित रखकर उचित क्रोध के सम्ब
में कुछ कहना ही उचित प्रतीत होता है।

प्रश्न उठता है कि क्या कभी क्रोध उचित भी होता है। यदि हं
है तो प्रायः सभी धर्मों के विभिन्न धर्मग्रन्थों में उसे पानी पी-पी कर
कोसा गया है? सभी देशों के सन्त-महात्माओं ने उसकी भर-पेट निन्दा
की है? वस्तुतः देखा जाय तो इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए विशेष मा
पच्ची की आवश्यकता नहीं। स्मरण रखना चाहिए कि प्रायः सभी धर्म-ग्र
का मुख्य लक्ष्य ईश्वर-दर्शन वा मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग बताना है। उ
लिए मन की शान्ति परमावश्यक है, और मन की शान्ति के लिए क्रोध
त्याग। साधु-सन्तों का जीवन-लक्ष्य भी वही है जो धर्म-शास्त्रों का। इस
यदि उनकी वाणियों में भी क्रोध के पूर्ण परित्याग पर वल दिया गया है
कोई आश्चर्य नहीं। यह सत्य है कि उपर्युक्त लक्ष्य प्रशंसनीय है, तो भी सं
के अधिकतर मानव तो न कभी मोक्षाभिलाषी थे, न हैं और न होंगे। वे
सुख-शान्ति-पूर्ण जीवन के इच्छुक रहे हैं, तथा रहेंगे भी। उनके लिए तो इत
ही पर्याप्त है कि वे सुखी तथा शान्त जीवन व्यतीत करें और तदर्थ अनु
क्रोध से वचे रहें। इसी प्रकार अधिकतर मनुष्य न कभी साधु-सन्त थे, न
और न होंगे। अधिकतर लोग तो गृहस्थ ही रहे हैं, और रहेंगे भी। उनके लि
भी इतना ही काफी है कि वे अनुचित क्रोध से वचने का निरन्तर उद्योग क
रहें। हमारे विचार में उचित अवसर पर उचित मात्रा में क्रोध किये बि
सामान्य जनों का जीवन नहीं चल सकता। इसके अतिरिक्त यह समझना
भारी भ्रम है कि संसार भर के धर्म-ग्रन्थ क्रोध के सर्वथा त्याग की ही शि
देते हैं। विभिन्न धर्मों के ग्रंथों के अध्ययन से विदित होता है कि विशेष अ
सरों पर आत्मरक्षा, आत्मीय-रक्षा व स्वाधिकार-रक्षा के लिए वे भी लड़
भिड़ने तथा मरने-मारने की प्रवल प्रेरणा करते हैं। उदाहरण के लिए कुछ
प्रमाण पर्याप्त होंगे :—

**वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्।**
**सासह्याम पृतन्यतः॥** ( ऋग्वेद १।८।४

अर्थात्, "हम कुशल वीरों और तुम्हारी सहायता से अपने शत्रुओं पर विजयी हों।" युद्ध में विजय के लिए क्रोध अनिवार्य है; अतः यहाँ परोक्ष-रूप से क्रोध के लिए भी प्रार्थना है। वेदों में इस प्रकार परोक्ष रूप से ही नहीं, प्रत्यक्ष रूप से भी तेज, मन्यु ( क्रोध ) आदि की याचना की गई है। यथा—

**तेजोऽसि तेजोमयि धेहि।**
**मन्युरसि मन्यु मयि धेहि॥**

( यजुः १९।९ )

अर्थात् "तू तेज है, मुझे तेज दे। तू सामर्थ्य है, मुझे सामर्थ्य दे। तू बल है, मुझे बल दे। तू कान्ति है, मुझे कान्ति दे। तू क्रोध है, मुझे क्रोध दे। तू पराक्रम है, मुझे पराक्रम दे।"

भगवान् मनु ने आत्म-रक्षा के लिए कहा है—

**गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।**
**आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥**

( मनुस्मृति ८।३५० )

अर्थात् गुरु, बालक, वृद्ध वा सुविद्वान् ब्राह्मण, कोई भी हो, जब वह आततायी बन जाय, तब उसका बिना विचार के ही वध कर देना चाहिए। आततायी की परिभाषा शुक्रनीति में यों की गई है—

**अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रोन्मत्तो धनापहः।**
**क्षेत्रदारहरश्चैतान् षड् विद्यादाततायिनः॥**

अर्थात् मकानों को आग लगाने वाला, विष देनेवाला, शस्त्रधारण कर मारने पर तुला हुआ, धन, भूमि तथा स्त्री का अपहरण करने वाला, ये छः आततायी हैं।

'महाभारत' में श्रीकृष्ण अर्जुन को स्वाधिकार-रक्षा के लिए युद्ध करने की यों प्रेरणा करते हैं—

**हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा मोक्ष्यसे महीम्।**
**तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥**

( भगवद्गीता २।३७ )

अर्थात् हे अर्जुन, यदि तू ( युद्ध में ) मारा गया तो स्वर्ग पाएगा, विजयी हुआ तो पृथ्वी के भोग भोगेगा। इसलिए युद्ध के लिए दृढ़ सं करके उठ खड़ा हो।

वेद-शास्त्रों के उपर्युक्त उद्धरणों से प्रमाणित होता है कि विशेष अव पर क्रोध तथा युद्ध पाप नहीं, पुण्य माने गये हैं। अब तनिक अन्य धर्मों भी दृष्टि-पात कर लिया जाय। इंजील का पुराना धर्मनियम ( Old Tes ment ) यहूदियों तथा ईसाइयों का मान्य ग्रन्थ है और नया धर्म-नि ( New Testament ) ईसाइयों का। इन दोनों ही भागों में मनुष्यों को अवसरों पर क्रोध करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। यथा—

"कोई क्यों न हो, जो अपने माता वा पिता को शाप दे, वह निश्चय मार डाला जाए। जिसने किसी दूसरे की स्त्री के साथ व्यभिचार किया हो वह व्यभिचारी और व्यभिचारिणी दोनों निश्चय ही मार डाले जाएँ।"

( पुराना धर्म नियम, नैव्यव्यवस्था २०।९, १०

"यदि कोई तुम्हारे पास आये और यही ( ईसा की ) शिक्षा न दे, न तो घर में आने दो और न नमस्कार करो। क्योंकि जो कोई ऐसे जन नमस्कार करता है, वह उसके बुरे कामों में साझी होता है।"

( नया धर्म-नियम, यूहन्ना की दूसरी पत्री, १।१०—११

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि इंजील में भी कहीं क्रोध के उग्र रूप प्रेरणा मिलती है तो कहीं कोमल रूप की।

इंजील के समान 'कुरान' में भी कई स्थलों पर क्रोध को क्षम्य त ग्राह्य बताया गया है। जैसे—

"जिन मुसलमानों से ( व्यर्थ ही ) युद्ध किया जाता है, उन्हें इजाज़त कि ( वे भी युद्ध करें ), क्योंकि उन पर अत्याचार हो रहा है। अल्ल निश्चय उनकी सहायता करने में समर्थ है।"

( कुरान २२।३९

"और तुम्हें क्या हुआ है कि खुदा की राह में उन विवश पुरुषों, स्त्रि तथा बच्चों के लिए नहीं लड़ते, जो प्रार्थना किया करते हैं कि हे प्रभो, ह

इस नगर से जिसके निवासी अत्याचारी हैं, निकालकर कहीं और ले जा और अपनी ओर से किसी को हमारा सहायक बना।"

( कुरान ४।७५ )

उक्त अवतरणों से सिद्ध है कि कुरान आत्मरक्षा तथा दीन-रक्षा के लिए क्रोध करने तथा लड़ने-मरने की इजाज़त देता है।

इसी प्रकार अन्य धर्मों के पवित्र ग्रन्थों से भी ऐसे अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनमें उचित अवसरों पर क्रोध वा युद्ध करने की प्रेरणा पाई जाती है। परन्तु खेद है, स्थान की कमी के कारण हम उन्हें यहाँ उद्धृत करने में असमर्थ हैं।

स्मरण रहे कि उचित क्रोध की धर्मशास्त्रों ने ही नहीं, संसार-भर के अनेक विचारकों ने भी प्रशंसा तथा प्रेरणा की है : जैसे—

**आश्रितैरप्यवमन्यते मृदुस्वभावः ।**
**तीक्ष्णदंडः सर्वैरुद्वेजनीयो भवति ।**
**यथार्हं दण्डकारी स्यात् ।।**

( चाणक्य राजसूत्र १४१-१४३ )

अर्थात् कोमल-स्वभाव ( क्रोध-शून्य ) स्वामी का उसके सेवक भी निरादर कर देते हैं। उग्र दण्डदाता के सब वैरी बन जाते हैं। इसलिए मनुष्य को यथोचित दंडदाता बनना चाहिए।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के महामंत्री चाणक्य ने कहा है—धृतराष्ट्र के भाई तथा मंत्री महामनीषी विदुरजी का वचन है कि—

**जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्,**
**विज्ञातदोषेषु, दधाति दण्डम् ।**
**जानाति मात्रां तथा क्षमां च,**
**तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा ।।**

( विदुरनीति १।११० )

अर्थात् लक्ष्मी सदा उसी मनुष्य की सेवा करती है जो मनुष्यों का विश्वासपात्र होता है, उनके दोष जानने पर उचित मात्रा में दंड भी देता है तथा समय पर क्षमा करना भी जानता है।

अनेक विदेशी विद्वानों ने भी उचित क्रोध को ग्राह्य माना है। हम के श्री पाले ( Paley नामक मनीषी के कथन से सन्तोष करेंगे—

"क्रोध सदा पापमय नहीं होता क्योंकि कुछ अवसरों पर कुछ मात्रा वह अनिवार्य होता है। किन्तु वह पापमय तथा शास्त्रविरोधी तब बन जा है जब वह साधारण तथा अपर्याप्त उत्तेजना से उत्पन्न हो जाता है और तक बना रहता है।"

उचित क्रोध के सम्बन्ध में सन्त स्वभाव आधुनिक कवि वियोगी हरि भी लिखना पड़ा—

**देखि दीन-दुर्दलन हूँ दहत न जाके अंग।**
**ता कुचालि कौ भूलिहौं, कबहूँ न कीजै संग॥**
**देखि सती-व्रत-भंग हूँ, आवत जाहिं न रोष।**
**ता कादर के कदन में, मानिय नैक न दोष॥**

( वीर सतसई, पृ० १०६, १०८

अर्थात् दीनों पर होनेवाले अत्याचार देखकर जिसके अंगों में आग नह लगती, उस कुचाली की संगति भूलकर भी न करनी चाहिए। जिस व्यक्ति क सती-साध्वी स्त्री का सतीत्व भंग होते देखकर भी क्रोध नहीं आता, उस काय को नाश करने में तनिक भी दोष न समझना चाहिए।

## क्रोध और अन्य संवेग

क्रोध अपनी उग्रता से अन्य संवेगों को वश में कर लेता है। ऐसा भी देखा गया है कि क्रोध के आवेश में मनुष्यों ने प्रियतम व्यक्ति तक की हत्या कर दी और तत्पश्चात् उसी हत व्यक्ति के बाहुपाश में बँध गये। तो भी, इसका प्रभाव केवल अपने लक्ष्य पर ही नहीं, मार्ग में आनेवाली प्रत्येक वस्तु पर भी पड़ता है। अन्य भाव तो बुद्धि का विरोध करते हैं, परन्तु यह तो होशहवास का नाश मनुष्य को पागल बना देता है। यदि संयोगवश शत्रु को यह अपना लक्ष्य न बना सके तो अपने आश्रय को ही नष्ट कर देता है। 'महाभारत' में हम पढ़ते हैं कि अभिमन्यु-वध के पश्चात्, अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं अभिमन्यु-घातक जयद्रथ को सूर्यास्त तक न मार सका तो अपने-आप को ही समाप्त कर दूंगा।

अन्य भाव तो प्रायः एक-एक व्यक्ति को प्रभावित करते हैं, परन्तु क्रोध समग्र राष्ट्र तक को उग्र बना देता है। विदेशी आक्रमण वा उग्र असन्तोष की अवस्था में राष्ट्र के सभी स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान और बूढ़े विदेशियों से लोहा लेने को वा अपने शासकों के ही विरुद्ध उठ खड़े होते हैं। अन्य संवेगों में शान्ति वा धैर्य का कुछ-न-कुछ अंश होता है, परन्तु क्रोध तो पूर्णतया हिंसात्मक संवेग है, जो अपने भविष्य वा परिणाम की चिन्ता त्याग कर शस्त्र उठाकर विरोधी को दंड देने को उद्धत हो जाता है। अन्य संवेग तो प्रायः सामान्य वा निम्न कोटि के लोगों को ही अपना शिकार बनाते हैं, परन्तु क्रोध तो सुसस्कृत व समझदार लोगों को भी वश में कर लेता है। इसलिए ऐसे प्रबल संवेग को वश में रखने के लिए सदा ही सचेष्ट रहना चाहिए।

अन्त में हम एक बार पुनः स्मरण करा दें कि न हम क्रोध के अन्धा-धुन्ध समर्थक हैं और न उग्र विरोधी। हमारा लक्ष्य यही प्रतिपादित करता है कि मनुष्य अनुचित क्रोध से कैसे बचे, यह नहीं कि उचित क्रोध का सर्वथा ही परित्याग कर दे। तात्पर्य यह कि क्रोध हमारा सेवक बनकर रहे, स्वामी बन कर नहीं, हम उसका दमन करें, हनन नहीं।

●

## तृतीय अध्याय

# जीव-जन्तुओं के क्रोध के कारण

हम ऊपर कह चुके हैं कि हमारा लक्ष्य क्रोध पर विजय पाना है, न कि उसका सर्वथा हनन करना। वैशेषिक दर्शन के रचयिता महर्षि कणाद का कथन है—

**कारणाभावात् कार्याभावः।**

( वैशेषिक दर्शन ४।१।३ )

अर्थात् जहाँ कारण नहीं होता, वहाँ कार्य भी नहीं होता। इसलिए यदि क्रोध के कारणों का ज्ञान हो जाय, और उन कारणों को दूर कर दिया जाय, तो क्रोध-जनित कुपरिणाम भी कायर हो जायँगे। आइये देखें कि क्रोध किन कारणों से उत्पन्न होता है।

हम भावों के विवेचन के प्रसंग में पीछे कह चुके हैं कि भाव सागर की तरंगों के समान असंख्य हैं। सच्ची बात तो यह है कि भावों के समान ही भावों के उत्पादक कारण भी गणनातीत हैं। भावों के सम्बन्ध में शायद यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वे जड़ पदार्थों में पैदा नहीं होते, चेतन प्राणियों में ही उत्पन्न होते हैं। पथ पर पड़े पत्थर की ठोकर से पाँव में तीव्र पीड़ा पहुँचने वा रक्तस्राव होने पर अबोध बालक ही नहीं, कभी-कभी भद्र लोग भी उसे अभद्र शब्द कह बैठते हैं, परन्तु स्वयं असावधान उन मनुष्यों की गालियाँ सुनकर निरपराध पाषाण कुपित नहीं होता, क्योंकि वह निष्प्राण है, निर्जीव है, चेतनाहीन है। अब विचारना यह चाहिए कि किन-किन प्राणियों में किन-किन कारणों से क्रोध प्रकट होता है। हिन्दू-शास्त्रों में कहा गया है कि आत्माएँ चौरासी लाख योनियों में स्व-स्व कर्मों के अनुसार चक्कर लगाती हैं। उन चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के नाम-धाम का उल्लेख तो अभी तक हमारे देखने में नहीं आया, परन्तु आधुनिक प्राणिशास्त्रियों के अनुसार उनकी संख्या लाखों तक तो जा पहुँचती है। उनमें भी जो केवल

अणुवीक्षणयंत्र ( खुर्दबीन ) द्वारा ही दिखाई देते हैं, उनके सम्बन्ध में यहाँ कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। हम तो केवल उन्हीं कुछ प्राणियों के क्रोध के सम्बन्ध में संक्षेप से कहेंगे जिनसे हमारा पाला प्रतिदिन पड़ता है, जिनके क्रिया-कलाप हम अनायास देखते रहते हैं।

## जीव-जन्तुओं में क्रोध के कारण

प्राणिशास्त्रीय ग्रन्थों के अध्ययन से विदित होता है कि पृथ्वी पर मनुष्य के आविर्भाव से लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व अनेक प्रकार के जीव-जन्तु उत्पन्न हो चुके थे। यद्यपि उनमें से अनेकों का नाम-निशान भी जहान से मिट चुका है, तो भी लाखों प्रकार के जीव-जन्तु आज भी भूमि, जल, स्थल तथा आकाश में विचरते दिखाई देते हैं। चूँकि प्राणिशास्त्र के अनुसार मनुष्य का विकास भी छोटे जीव-जन्तुओं में से हुआ है अतः उचित प्रतीत होता है कि मनुष्य के क्रोध के कारणों की जिज्ञासा के संदर्भ में उससे पूर्ववर्ती प्राणियों के क्रोध के सम्बन्ध में भी संक्षेप से कुछ कह दिया जाय। प्राणिशास्त्री ही नहीं, धर्मशास्त्री भी हमें यह बताते हैं कि—

'जीवो जीवस्य भोजनम्' ( )

अर्थात् एक जीव दूसरे जीव का भोजन है। प्रश्न उठता है, जब एक जीव दूसरे को मारकर अपना आहर बनाता है, तब उसे क्रोध आता है वा नहीं। प्रकृति-पर्यवेक्षण से पता चलता है कि उक्त प्रश्न का उत्तर 'हाँ' भी है और 'न' भी। गौ-भैंस आदि जीव जब घास-पात चरते हैं, तब उनके शरीर में क्रोध के लक्षण दिखाई नहीं देते; परन्तु सिंह-व्याघ्र आदि जब मृग-शश आदि का शिकार करते हैं तब उनके आकार से कोप प्रत्यक्ष प्रकट होता है।

आइये देखें, हमारे परिचित प्राणियों में से कौन, कब, क्यों क्रोध करता है। प्रथम, जलचरों को ही लीजिये, क्योंकि प्रथम प्राणी पानी में ही प्रादुर्भूत हुए।

### मगर

मगरमच्छ की दंत-पंक्तियाँ देख किस का दिल दहल नहीं जाता! क्रोधी जलचरों पर विचार करते ही मगर का नाम सबसे पहले जबान पर आता है। मछली आदि पर आता है। मछली आदि अनेक प्राणी इसके क्रोध-भाजन व

भोजन बनते रहते हैं। जब क्रुद्ध मगर अपनी सुदृढ़ दुम से किसी जलीय जीव पर वार करता है तब उसकी जान पर आ बनती है। जब वह तट से कुछ ही दूर भूमि पर स्थित किसी प्राणी को देख लेता है, तब पूंछ से ऐसा प्रबल प्रहार करता है कि वह पहले पानी में और फिर इसके पेट में जा पहुँचता है। इसकी दुम के थपेड़े से छोटी शिकारी नौकाएँ उलट जाती हैं तथा शिकारी उलटे इसके शिकार बन जाते हैं। भूखा मगर स्व समग्र शरीर को जल के अन्दर रख कर नेत्रों व नथुनों को बाहर रहने देता है। दूरस्थ शिकार को देखते ही यह चतुर गोताखोर की तरह डुबकी लगा कर ठीक वहाँ पहुँचकर उसे पकड़ लेता है। यदि इसमें सफल न हो सके तो अपनी जोरदार दुम के वार से उसे बेदम-सा कर देता है। प्राय: तो यह मनुष्य पर आक्रमण नहीं करता, परन्तु यदि दो-एक बार, भूख वा परिस्थिति से विवश होकर, मनुष्य का शिकार कर बैठे तो नरभक्षी बन जाता है। जब मगर तट पर बैठकर, मुख खोलकर धूप सेकते हैं, तब इनके तेज दाँतों में के कीड़ों तथा मांस-खडों को टिटिहरी जाति की चिड़ियाँ खोद-खोद कर खाती हैं। उस समय गाय-बैलों तक को मार डालने वाला यह जीव उन चिड़ियों पर किंचित् भी कुपित नहीं होता, क्योंकि उनकी उस क्रिया से इसे सुख ही प्राप्त होता है। अन्त में कह सकते हैं कि मगर तो मनुष्य पर यदा-कदा ही क्रोध करता है, मगर मनुष्य मगर को, उसके मांस व खाल के लोभ से नित्य ही बन्दूक का निशाना बनाता रहता है।

## ह्वेल

प्राणिशास्त्रियों का विचार है कि संसार में आज तक जितने भी जीव-जन्तु उत्पन्न हुए हैं, ह्वेल मछली उन सबसे बड़ी है। आज तक मापी गई सबसे बड़ी ह्वेल की लम्बाई १०० फुट थी और जिस सबसे बड़ी ह्वेल को, खण्ड-खण्ड कर तौला गया, उसका भार था १३९ टन। ग्रांडील हाथी का डील देखकर मनुष्य दंग रह जाता है परन्तु उसकी तौल तीन-चार टन से अधिक नहीं होती। ह्वेल के बल का अनुमान इस घटना से लगाया जा सकता है कि एक ह्वेल ह्वेलमारक जहाज को, उसके इंजनों की गति प्रतिकूल होने पर भी कम-से-कम नौ मील प्रति घण्टा की गति से सात घंटे तक अभीष्ट दिशा में लगातार खींचती चली गई थी।

यदि कोई इन्हें न सताये तो कुबड़ी ह्वेलें, पिल्लों के समान, घण्टों तक जहाज के इधर-उधर निरीहता से खेलती रहती हैं। परन्तु यदि इनकी कोमल त्वचा में कोई नुकीला लोहा चुभो दिया जाय तो फिर इनके क्रोध से भगवान् ही बचाये। ये अपनी पूँछ से ऐसे प्रबल व घातक प्रहार करती हैं कि शिकारी स्वयं शिकार बन जाते हैं। मृत्यु से पूर्व ये इतनी उत्तेजित हो उठती हैं कि बेतहाशा इधर-उधर दौड़ने लगती हैं। उस समय इनके प्रहारों से समीपवर्ती जहाज अंडों के छिलकों के समान चटाक से टूट जाते हैं।

## मधुमक्खी

जलचरों के बाद नभचरों पर निगाह डालिये। मधु के कारण हम मधु-मक्खी से प्यार करते हैं और डंक के कारण डरते हैं। मधुदायिनी होती हुई भी यह क्रोधकारिणी क्यों बन जाती हैं, डंक क्यों मारती है? इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए हमें इनके झुण्ड पर विचार करना होगा। प्रत्येक गिरोह में सूर्यवंशी राजा सगर के सुतों के समान, प्रायः साठ सहस्र मधुमक्खियाँ रहती हैं। उनमें एक रानी, करीब दो सौ नर तथा शेष श्रमिक और सैनिक होते हैं। डंक तथा विषग्रंथियाँ श्रमिकों व सैनिकों में होती हैं, क्योंकि समस्त छत्ते के पालन-पोषण तथा रक्षण का दायित्व उन्हीं पर होता है। मधुमक्खियाँ सामान्यतः किसी पर कुपित नहीं होतीं परन्तु कोई इनके छत्ते को छेड़े वा संचित मधु को छीनने का यत्न करे तो फिर उसे नहीं छोड़तीं। अपने कोप से उसे कुप्पा बना देती हैं और कई बार तो परलोक ही पहुँचा देती हैं। जब नई रानी आ जाती है, तब पुरानी रानी छत्ता छोड़कर चली जाती है, मानो वानप्रस्थ ले लेती है। परन्तु नई रानी इसी से सन्तुष्ट नहीं होती। वह दूसरे, रानी बनने वाले, शिशु-कीटों का संहार भी कर देती है। उसके इस क्रोध का कारण ईर्ष्या हो सकता है। तुलना कीजिए।

**दुसह दुराज प्रजानु कौ, क्यों न बढ़ै दुखदुंद।**
**अधिक अँधेरौ जग करत, मिलि पावस रवि चंद॥**

(बिहारी रत्नाकर, दोहा ३५७),

अर्थ : एक देश में दो राजाओं के शासन से प्रजा के दुख-द्वन्द्व बहुत बढ़ जाते हैं। अमावस्या के दिन सूर्य तथा चाँद के एक राशि में आ जाने से संसार अधिक अंधकारमय हो जाता है।

क्योंकि, एक देश में दो राजाओं के समान, एक गिरोह में दो रानियों का अस्तित्व उसे सह्य नहीं होता। गर्भवती होने के पश्चात् यह पाँच वर्ष पर्यन्त अंडे देती रहती है। ज्योंही शरद् ऋतु आती है, क्रुद्ध रानी के आदेश से शेष नर भी छत्ते से निर्वासित कर दिये जाते हैं जो शीघ्र ही मर जाते हैं। अनावश्यक प्राणियों का पालन उसे सह्य नहीं है। रानी में डंक तो होता है, परन्तु उसका प्रयोग वह तभी करती है, जब किसी अन्य रानी से युद्ध करने के लिए उसे क्रुद्ध होना पड़ता है।

कुछ प्राणी आत्मरक्षा, क्षुधा-शान्ति आदि के लिए क्रोध करते तथा लड़ते-भिड़ते हैं, परन्त कुछ को मनुष्य अपने मनोविनोद के लिए भी क्रोधित करता व लड़ाता-भिड़ाता आया है। इस प्रकार की लड़ाइयाँ प्राचीन तथा मध्यकाल की अपेक्षा वर्तमान में कम अवश्य हो गई हैं, परन्तु नितांत निर्मल नहीं हुईं। भैंसों, साँड़ों, मेंढ़ों, मुर्गों, तीतरों, बटेरों आदि के दंगल आज भी यत्र-तत्र कराये जाते हैं और उनकी जीत-हार पर दाँव भी लगाये जाते हैं। क्रोध वस्तुत: युद्ध की तैयारी है और उसे उत्पन्न करने के लिए शौकीन लोग इन प्राणियों को मेवे, केसर, जड़ी-बूटियाँ, सुरा आदि भी खिलाते-पिलाते हैं।

## मुर्गी

मुर्गी नन्हा-सा जीव है। मांसाहारी मनुष्य तो हाथ से ही उसकी गर्दन मरोड़ देते हैं। परन्तु जब उसको अपने चूजों के प्राण संकट में पड़ते दिखाई देते हैं, तब वही यमराज का रूप धारण कर लेती है। कुछ समय पूर्व एक हाथी वहाँ आ निकला जहाँ चूजे खेल रहे थे। सन्तान-स्नेह-वश कुपित मुर्गी ने उछल-उछल कर गजराज के नेत्रों पर ऐसे पंजे मारे कि बेचारे का मुँह फ़िर गया और चूजे बच गये।

## चील

यहाँ लगभग पचास वर्ष पूर्व की, निज विद्यार्थी-काल की एक घटना स्मरण आती है। लाहौर के वैदिक आश्रम में वृक्षों के नीचे तो यज्ञ की वेदी थी और ऊपर चील का घोंसला। विश्वामित्र की वेदी पर तो ताड़का, सुबाहु आदि जान-बूझ कर रक्त-मांस की वर्षा करते थे परन्तु उक्त चील अज्ञान-वश ही मांस-हड्डियाँ आदि गिरा देती थी। अन्ततः एक दिन एक साहसी

छात्र ने चील के नीड़ को उखाड़ फेंकने का संकल्प किया। ज्यों-ज्यों वह छात्र नीड़ के निकट पहुँचता, त्यों-त्यों ही कुपित चील के झपट्टे विकट होते जाते। यह सत्य है कि छात्र अपनी लक्ष्यसिद्धि में सफल हो गया, तथापि यह भी उतना ही सत्य है कि क्रुद्ध चील ने भी स्व-संतान के त्राण में कोई कोर-कसर नहीं रहने दी।

## पतोरी

पतोरी ( छोटा चित्तीदार उल्लू ) नहीं चाहती कि आप उसके क्रिया-कलाप को ध्यान से देखें। यदि आप देखेंगे हो तो वह अपने गोल निर्निमेष नेत्रों से अपनी अप्रसन्नता आप पर प्रकट करेगी तथा अपना गोल सिर ऊपर-नीचे हिलाकर अपना क्रोध भी व्यक्त करेगी। इसी प्रकार सभी प्रकार के उल्लू भी कार्य-कलाप समीप से देखे जाने पर कोप प्रकट करते हैं।

## शिकरा

अपने आहार का अपहार पक्षियों के क्रोध का कारण होता है। एक बार एक शिकरा नीम की शाखा पर बैठ छिपकली खा रहा था। एक-एक करके दो जंगली कौए भी उसके समीप की टहनी पर आ डटे तथा क्रमशः उसके करीब आने लगे। शिकरा कौओं का अभिप्राय भाँप गया और क्रोध-भरी कटु-ध्वनि करता हुआ दोनों पर टूट पड़ा। कौए बड़े भी थे और दो भी, परन्तु कुपित शिकरे का आक्रमण इतना उग्र था कि तीनों एक गोला-सा बन धरती पर आ गिरे। कुछ क्षणों तक तो यह गोला इधर-उधर लुढ़कता रहा किन्तु तत्पश्चात् वे लुटेरे कौए कुपित शिकरे से ऐसे जान बचाकर भाग गये जैसे वीर ग्रामीणों से डाकू-दल।

## श्राइक

सर्वाधिक क्रोधी व क्रूर पक्षी श्राइक ( Shrike ) है जिसे बूचड़-पक्षी ( Butcher bird ) भी कहते हैं। यह मन्द मधुर स्वर में गाने वाला एक छोटा-सा पक्षी है जो देखने में तो गम्भीर है, परन्तु हिंसकता में बाज से भी बाजी ले जाता है। टिड्डे, चिड़िया और चूहे इसके चहेते भोजन हैं। जब इसे सहज ही कोई शिकार दिखाई नहीं देता तो चतुराई का आश्रय लेता है।

उस समय यह कष्ट में पड़े हुए किसी पक्षी के बच्चे की-सी करुण ध्वनि करता है, जिससे कई छोटे पक्षी इसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। तब क्षणभर में ही अपना लक्ष्य चुन कर यह किसी मोटी चिड़िया पर झपट पड़ता है। निस्सन्देह यह तेज उड़ाकू पक्षी है परन्तु चिड़िया की उड़ान भी मन्द नहीं होती। सो एक भयंकर व लम्बी चिड़ी-दौड़ आरम्भ हो जाती है। चंगुल-रहित होने के कारण, यह पहले चिड़िया के ठीक ऊपर जा पहुँचता है और फिर अपने मार से उसे भूमि पर गिराने का यत्न करता है। निर्बल चिड़िया अपनी प्राण-रक्षा का प्रत्येक प्रयत्न करती है। परन्तु कुपित श्राइक, 'की-ी-ी' ध्वनि करता हुआ, उसका निर्दयता से पीछा करता है और अपनी वक्र चोंच के सतत प्रहारों से उसके सिर व पेट को चीर डालता है। चिड़िया के शव को वहाँ से उठा, वह एक काँटेदार पेड़ पर पहुँचकर उसे एक काँटे से वैसे ही लटका देता है, जैसे कसाई बकरे आदि के मांस-खण्ड को खूँटी से। उसे खाना वा न खाना, पूर्णतः वा अंशतः खाना, उस की मौज पर निर्भर है। श्राइक प्रायः तो संग्रह के लिए और कभी-कभी तो केवल हिंसा के आनन्द के लिए ही क्रोध करता है।

## चींटी

स्थल-चरों में, प्रथम चींटी को ही लीजिए। ये एक-एक बिल में सहस्रों-लाखों की संख्या में रहती हैं और सहवासियों को सम्यक् पहचानती हैं। जब किसी अन्य दिमौर ( बिल ) की चींटी भूल से किसी दूसरे बिल में घुस जाती है, तब वहाँ की चींटियाँ क्रुद्ध हो उस पर पिल पड़ती हैं और यदि उसके प्राण नहीं हर लेतीं तो अधमरी तो अवश्य ही कर देती हैं। सच है, बिना बुलाये और बिना इजाजत पर-घर में घुसना पर-क्रोध को आमंत्रित करना है।

चींटियाँ अपने बच्चों को दूध-सा पिलाने के लिए उन हरे रंग की मक्खियों को पालती हैं जो पुष्प-रस का पान कर कुप्पा हो जाया करती हैं। आवश्यकता पड़ने पर चींटियाँ उन्हें काटकर वह 'दुग्ध' देने पर विवश कर देती हैं। प्रत्यक्ष ही वे सन्तान-स्नेह के कारण उन मक्खियों को अपना क्रोध-भाजन बनाती हैं।

पर-घर पर अधिकार जमाने के उद्देश्य से भी चींटियाँ क्रुद्ध होकर युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, अमेरिका के कोलम्बिया राज्य में एक वृक्ष पर लाल चींटियाँ रहती थीं और नीचे काली। दो घंटों के घोर युद्ध के पश्चात् काली सेना ने लाल सेना को मार कर वृक्ष पर अधिकार कर लिया। रंग-भेद भी इस क्रोध का कारण हो सकता है तथा विजय-कामना भी।

## बिच्छू

चींटी तो कभी-कभार ही काटती है, अब उस कीट ( बिच्छू ) पर दृष्टि डालिये, जिसके नाम, 'वृश्चिक' का अर्थ ही है 'काटने वाला' कहना न होगा कि 'बिच्छू' 'वृश्चिक' का ही बिगड़ा हुआ रूप है। सो, जो है ही काटने वाला, वह क्रोधी क्यों न होगा !

परन्तु कुशल यही है कि वह अपना कोप-भाजन मनुष्यों को इतना नहीं बनाता, जितना मक्खी, मच्छर, तिलचट्टा आदि कीट-पतंगों को। एक बिच्छू दूसरे बिच्छू तक को खा जाता है और मैथुन के पश्चात् तो बिच्छी, बिच्छू को भी हड़प कर जाती है। मनुष्य को, जो उसे किसी दैत्य से कम दिखाई नहीं देता, बिच्छू अपने आप कुछ नहीं करता; परन्तु छेड़ने पर छोड़ता भी नहीं और ऐसा डंक मारता है कि मनुष्य को आमरण स्मरण रहता है। तात्पर्य यह कि हम पर तो वह तभी क्रुद्ध होता है जब हमारे द्वारा उसे अपने प्राण विकट संकट में पड़ते दिखाई पड़ते हैं।

## सर्प

बिच्छू छोटा-सा प्राणी है, जो न स्पष्ट देख सकता है, न तेज चल सकता है। यही कारण है कि लोग उससे बहुत नहीं डरते। उसे प्रायः पत्थर से पीस देते हैं वा चप्पल से मसल डालते हैं। परन्तु साँप की बात ही और है। वह १० इञ्च से ३० फुट तक लंबा होता है। उसे देखते ही दिल दहल जाता है, फुंकार सुनते ही कलेजा निकल जाता है, तथा काटे जाने पर मौत मस्तक पर मँडराती नजर आती है। जब हम यह पढ़ते हैं कि भारत में प्रतिवर्ष प्रायः पच्चीस सहस्र मानव साँपों के डसने से प्राणों से हाथ धो बैठते हैं, तब हम इसके क्रोध का अनुमान कर काँप उठते हैं। परन्तु सच पूछिए तो बहुत अधिक

डरने की बात नहीं है। कारण, सर्पों के नौ परिवारों तथा १५००० जातियों में से केवल कुछ ही परिवारों के सर्प विषैले हैं और जो विषैले हैं, वे अकारण आक्रमण भी नहीं करते।

अब देखना यह चाहिए कि सर्प क्रुद्ध कब होते हैं। सँपेरे की बीन पर जब साँप झूमता है तब हम समझते हैं कि वह मधुर ध्वनि पर मस्त हो रहा है। परन्तु यह सरासर गलत है, क्योंकि साँप के कान ही नहीं होते। उसके पास पिस्तौल भी चलाई जाए तो भी उसे सुनाई नहीं देता। वह मदारी और उस की बीन को हिलते हुए देखकर यह समझता है कि मुझ पर आक्रमण होने को है। उससे बचाव तथा बदले में आक्रमण करने के लिए वह पैंतरे बदलता है तथा मदारी पर वार भी करता है। जब हमारे पाँव आदि के धमाके से भूमि काँपती है तब उसकी त्वचा उसे अनुभव कर लेती है और वह बचाव के लिए भाग उठता है। केंचुल उतारने के समय से कुछ काल बाद तक साँप को बहुत कम दिखाई देता है। उन दिनों छेड़े जाने पर सर्प प्रायः क्रुद्ध होकर डस लेते हैं। क्रोध करने में सब सर्प-जातियाँ समान नहीं होतीं। मटिहा साँप ( Earth Snake ) में क्रोध बहुत होता है और दबाव पड़ने पर काटता भी जोर से है, परन्तु कुशल यही है कि उसमें विष होता ही नहीं। नाग ( Cobra ) फनियर, विषैला तथा घातक सर्प है। परन्तु धन्य है कि निष्कारण आक्रमण नहीं करता तथा छेड़ने पर भी भागने का ही यत्न करता है। यदि छेड़ने वाला अति निकट होकर बहुत तंग करे तो यह शरीर का अग्रभाग उठा, फण फैला डसने को उद्यत हो जाता है। यदि मनुष्य इसकी भयंकर फुंकार से भीत होकर भागे तो आक्रमण कर अवश्य डसता है; किन्तु यदि चुप-चाप खड़ा रहे तो यह धीरे से चला जाता है। वृद्ध नागों की अपेक्षा इनके बच्चे-पट्ठे अधिक क्रोधी व आक्रामक होते हैं।

नागराज, नाग से भी भयंकर है। यह मनुष्य से भागने के स्थान पर उसका पीछा करता है। भागकर इससे बचना असम्भव है। बचाव का उपाय यही है कि इस पर छाता, वस्त्र आदि फेंक दिया जाय जिससे यह उसमें उलझ जाय। नागराज, नाग, करायत जैसे सर्पों को भी चट कर जाता है।

करायत हमारे देश का सर्वाधिक विषैला सर्प है और सर्प-वंश से होने वाली अधिकतर मौतों का कारण इसी का क्रोध है। प्रायः यह जोड़े के रूप में

रहता है। यदि एक को मार दिया जाए तो दूसरा अधिक क्रुद्ध होकर वार करता है। ऐसी स्थिति में अपनी रक्षा में प्रमाद करना भारी भूल है। 'घोड़ करायत' का विष तो नाग से भी तीव्र होता है। परन्तु क्रोध कम। विना छेड़े तो यह बहुत कम आक्रमण करता है किन्तु दवाव पड़ने पर डसने से नहीं चूकता। 'धामिन' साँप विषैला न होते हुए भी अतिक्रोधी है। दवाव पड़ने पर भयंकर फुंकार तथा मुख पर आक्रमण करना है। 'फुरसा' अतिक्रोधी भी है और अतिविषैला भी; पर तनिक-सा छेड़ने पर भी प्रबल आक्रमण कर देता है।

अमेरिका का खड़खड़ा साँप ( Rattle Snake ) तो इतना क्रोधी है कि बन्दी बन जाने पर अनशन व्रत धारण कर लेता है। वह कैद में वर्ष-भर निराहार रहकर प्राण त्याग देता है। अमरीका के टैक्सास प्रदेश में एक व्यक्ति ने वीस वर्षों में ५००० खड़खड़े सर्प पकड़े, परन्तु बन्दी बनने पर एक ने भी उपवास नहीं तोड़ा और लगभग एक वर्ष-भर में सब-के-सब ने प्राण छोड़ दिये।

सन्तान के अनिष्ट की आशंका से भी सर्प क्रुद्ध हो उठते हैं। एक वार एक परिवार के लोग मकान बन्द कर मास-दो मास के लिए वाहर चले गये। लौटने पर रात को पलंग पर बच्चों को सुलाया तो वे प्रातः जागे ही नहीं। छान-बीन से ज्ञात हुआ कि निवार की तह में संपोले थे, जिन्हें बचाने की इच्छा से कुपित सर्पिणी ने सुप्त मानव-बच्चों को सदा के लिए सुला दिया था।

**बिल्ली**

देखने में भोली-भाली बिल्ली दबे पाँव घर में घुस आती है। लोग इसे पालते भी हैं; बच्चे इससे खेलते भी हैं; तो भी क्या यह क्रोध-हीन, शान्त और निरीह प्राणी है? चूहों से पूछिए जो इसे देखते ही विल में घुस जाते हैं; चिड़ियों से प्रश्न कीजिए जो इस पर निगाह पड़ते ही चीं-चीं की ध्वनि से आकाश सिर पर उठा लेती हैं वा दम साधकर घोंसलों में दुबक जाती हैं। तो क्या यह समझें कि विल्ली चिड़ियों, चूहों आदि को ही क्रुद्धावस्था में चट कर जाती हैं, मनुष्यों को कभी कुछ नहीं कहती? नहीं, वात ऐसी नहीं हैं। जब कोई मनुष्य इसे वा इसके वच्चों को कष्ट पहुँचाने पर तुल जाता है, तब यह भी क्रोध में भरकर आक्रामक को काल के गाल में धकेल देती है। यहाँ हमें एक दुःखद घटना स्मरण आती है, जिसका उल्लेख प्रासंगिक प्रतीत होता है।

पाकिस्तान के निर्माण से कुछ ही समय पूर्व, लाहौर में, हमारे घर से कुछ ही दूर एक सज्जन रहते थे। नाम था युधिष्ठिर। एक बार सुना कि वे एक बिल्ली के क्रोध के लक्ष्य बन गये हैं और बहुत दिनों से बिस्तर पर हैं। बीमार पुर्सी के लिए जब पहली बार पहुँचा तो उन्होंने घटना का विवरण यों संक्षेप में सुनाया—भाई साहब, एक बिल्ली ने बहुत दिनों से नाक में दम कर रखा था। कभी दूध पी जाती, कभी दही खा जाती, कभी मलाई चट कर जाती और कभी क्राकरी तोड़ जाती। हानि की हद होती है और सहिष्णुता की सीमा। एक दिन मेरा धैर्य टूट गया और मैंने बिल्ली का काम तमाम करने का इन्तज़ाम कर लिया। पत्नी को पाकशाला से बाहर भेज दिया और स्वयं दृढ़ दंड ले द्वार के पीछे छिप गया। ज्योंहीं बिल्ली अंदर घुसी, मैंने कपाट बंद कर उस पर प्रहार किया। वार खाली गया और बिल्ली आत्म-रक्षा का उपाय करने लगी। खिड़की तथा द्वार दोनों ही बंद होने के कारण वह पिंजरे के चूहे के समान बन्दी बन गई। बचाव का कोई उपाय न देखकर बिल्ली शेर बन गई और गुर्राती हुई मुझ पर झपटी। मैं भी तैयार ही था। दो क्रुद्ध प्राणियों में युद्ध आरम्भ हो गया। मैं दंड से प्रहार करता, वह नाखूनों और दाँतों से। वह घायल हो मर गई, मैं बिस्तर पर पड़ गया। डाक्टरों ने टीके लगाये जो काम नहीं आये और अब पक्षाघात से चारपाई पर पड़ा हूँ। देखिये, अन्त क्या होता है। कुछ समय पश्चात् भारत का विभाजन हुआ और हम दिल्ली आ गये। यहाँ किसी मित्र से विदित हुआ कि युधिष्ठिरजी को रुग्णावस्था में ही भारत लाया गया था और कुछ काल बाद वे भी परलोकवासी हो गये। कहना न होगा कि इस घटना में बिल्ली के क्रोध का कारण आत्म-रक्षा ही था।

### कुत्ता

बिल्ली चूहे पर झपटती है तो कुत्ता बिल्ली पर। मांसाहारी जन्तुओं को उदर-पूर्ति के लिए क्रोधाधीन होकर निर्बल प्राणियों का वध करना ही पड़ता है, किन्तु कुत्ता केवल पेट-भरने के लिए ही कुपित नहीं होता। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि कुत्तों ने भी नगर के भागों का विभाजन किया हुआ होता है। जब एक मुहल्ले का कुत्ता भटक कर दूसरे मुहल्ले में जा पहुँचता है, तो वहाँ के कुत्ते संघटित और क्रुद्ध होकर उसे काटने को दौड़ पड़ते हैं। तब पथ-

भ्रष्ट कुत्ता पहले तो डर कर सिर झुका, कान लटका, दुम दवा तीर की तेजी से भाग खड़ा होता है कि जान वचे; परन्तु जब आक्रामक कुत्ते उसे जा ही दवोचते हैं, तब वह भी साहस बटोरकर अकड़ कर खड़ा हो जाता है और मुँह फाड़ कर अपने पैने नुकीले दाँतों से किये गये प्रहारों का प्राण-पण से प्रतिकार करता है। वह दृश्य देख तुरन्त विदित हो जाता है कि प्रकृति ने प्राणियों को क्रोध किस लिये दिया है। यहाँ आक्रामक कुत्तों के क्रोध का कारण था ईर्ष्या और आक्रान्त कुत्ते के क्रोध का हेतु था आत्मरक्षा। कुत्ते अन्य अनेक कारणों से भी क्रोधाविष्ट होते हैं। जो इनके पिल्लों को सताता है, वे इसे काटने को दौड़ पड़ते हैं। गड़ेरियों के कुत्ते स्व-स्वामियों की भेड़-बकरियों को उड़ाने वाले भेड़ियों पर कुपित होकर टूट पड़ते हैं। शिकारियों के कुत्ते अपने मालिकों को प्रसन्न करने के लिए क्रोधोन्मत्त होकर शिकार को मार गिराते हैं। धनी-मानी लोगों के कुत्ते चोर-चकार को उनके घर के निकट नहीं फटकने देते तथा अन्न-दाता की प्राण-पण से रक्षा करते हैं। एक कुत्ता तो अपने स्वामी के उस वकरे पर भी क्रोध करता देखा गया जो अपने ही बच्चे को सींग मारने की चेष्टा करता था। क्रुद्ध कुत्तों की इसी प्रकार की अनेक उपयोगिताओं के कारण हिन्दू तथा ज़रतुश्ती धर्म-ग्रन्थों में कुत्ते के पालन-पोषण की प्रबल प्रेरणा की गई है। मनुस्मृति ( ३।९२ ) में कहा गया है—

**शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।**
**वायसानां कृमीणां च शनकैर्निवपेद् भुवि॥**

अर्थात् गृहस्थ का धर्म है कि वह कुत्तों, पतितों, चाण्डालों, पाप-रोगियों, कौओं तथा कीड़े-मकोड़ों को भी अन्नभाग दे। ज़रतुश्ती धर्म-ग्रंथ 'सददर' ( ३१।२ ) तथा 'वेंदिदाद' में कुत्तों के गुणों का वर्णन तथा उन्हें पीटने का निषेध किया गया है।

### भेड़िया

प्राणिशास्त्री हमें बताते हैं कि प्राचीन काल में जिन भेड़ियों को मनुष्य का प्यार-दुलार प्राप्त हुआ वे पालतू बनकर कुत्ते हो गये और जो उस स्नेह से वंचित रह गये, वे अब भी जंगल के भेड़िये ही है। कुछ प्रकृति-वैज्ञानिकों

का मत है कि चौपायों में से कुशलतम शिकारी भेड़िया ही है। इसका र
तो चाहे आधी ही भेड़ से भर जाय, परन्तु क्रोधवश यह एक ही रात में
५० भेड़ों का वध कर देता है। अमरीका का एक भेड़िया सात वर्षों में २५०
डालर मूल्य के तथा दूसरा तेरह वर्षों में ५००० डालर मूल्य के पशुओं
डकारने के बाद ही शिकारियों का शिकार बना। संयोग ही समझिए
मानव के सिवा भेड़िया किसी अन्य प्राणी से भीत-त्रस्त नहीं होता।

## वुलवरीन

वुलवरीन का नाम संभवतः बहुत कम लोगों ने सुना होगा। लैस्ली ट
ह्वाइट का विचार है वन का सर्वाधिक विनाशक प्राणी भेड़िया नहीं, वुलवर
है। एक भी वुलवरीन दिख जाए तो भेड़ियों का झुण्ड भाग खड़ा होता ;
भेड़िया तो मनुष्य से डरता है परन्तु सब पशु व मानव वुलवरीन से काँपते ;

वुलवरीन का वजन २५–३० पाउंड तथा आकार शिकारी कुत्ते से तनि
ही बड़ा होता है। यह अमरीका तथा यूरोप के उत्तरी भागों में पाया जा
है। यह इतना चतुर-चालाक होता है कि वहाँ के वासी इसे 'शैतान का पार्थि
मकान' मानते हैं। इसके लंबे व वक्र दन्त उस्तरे की तरह तेज होते हैं अं
भिड़न्त में तो यह साक्षात् आतंक होता है। भारतीय राजपूतों के समा
इसे भी ध्यान नहीं आता कि मुकाबले में कौन और कितने हैं। उन्हीं
समान यह भी कभी पग पीछे नहीं हटाता; या विजय पाता है या मृत्यु, तीस
शब्द इसके कोश में है ही नहीं। नर के समान मादा भी सदा भयंकर ;
होती है, परन्तु प्रसव के पश्चात् तो सन्तति-रक्षा के लिए और भी अधि
कुपित हो जाती है। उन दिनों तो यह उकसाई जाने पर, सशस्त्र मानव प
भी आक्रमण कर देती है। इसे हिंसन व भक्षण का इतना अधिक व्यसन
कि लोग हमारे यहाँ के 'भूखा भेडिया' के समान इसे 'पेटू वुलवरीन
कहते हैं।

## रीछ

काला रीछ अपने आकार-प्रकार के किसी भी अन्य वन्य प्राणी से अधिक
प्रबल होता है। वह अपने पंजे के एक ही प्रहार से जवान साँड़ के सिर क
सुर्मा बना देता है। मनुष्यों को तो यह प्रायः कुछ नहीं कहता, परन्तु फ़ल-

फूल-कन्द-मूल जीव-जन्तु, मछली, मांस, कीट-पतंग सब कुछ चट कर जाता है; यह विनोदी तथा जिज्ञासु होता है, परन्तु जब इसकी इच्छा-पूर्ति में बाधा डाली जाती है वा इसके बच्चों को कुछ क्षति पहुँचाने का यत्न किया जाता हैं, तब यह अत्यधिक कुपित हो उठता है। ताले से युक्त कोठरी तथा बक्स में बंद भोजन की गंध भी इसे क्रोधान्ध बना देती है।

## चीता

चीता, व्याघ्र से अधिक चतुर तथा सिंह से अधिक क्रूर होता है। जिन वृक्षों पर चढ़ने में सिंह और व्याघ्र विफल रहते हैं, उन्हीं से उछल कर यह मनुष्य की पीठ पर आ सवार होता है। सामान्यतः तो यह नरभक्षी नहीं होता, परन्तु संयोग-वश जब किसी मनुष्य को मार बैठता है, तब इस कार्य को सहज जान, मानवों का जान-लेवा बन जाता है। गढ़वाल के रुद्रप्रयाग नामक प्रदेश का एक क्रोधी नरभक्षक चीता १९१८-२६ के बीच सवा सौ मनुष्यों तथा असंख्य प्राणियों का संहार करने के पश्चात् ही प्रसिद्ध शिकारी जिम कार्बेट की गोली का शिकार बन सका था। चीता, सिंह आदि एक कटघरे में हों तो अपना श्रेष्ठत्व जताने को ही जूझ पड़ते हैं। परन्तु जब कोई एक मुँह फेर लेता है तब क्रोधी शांत हो जाता है। सभी मांसाहारी प्राणी विभिन्न वृक्षों पर पेशाब कर अपना-अपना क्षेत्र सीमित करते हैं तथा उन सीमाओं का उल्लंघन होने पर लड़ पड़ते हैं।

## गौ

ऊपर प्रायः मांसाहारी स्थल-चरों के क्रोध का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इससे यह न समझना चाहिए कि शाकाहारी स्थल-चर सर्वथा शान्त और निष्क्रोध होते हैं। गौ अपने शांत स्वभाव के कारण इतनी विख्यात है कि शान्त, निरीह तथा निर्दोष सज्जन वा देवी को 'गौ' कह दिया जाता है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि उसके सींग केवल सिंगार के लिए ही नहीं हैं कि उन्हें सिंगोरियों वा सिंदूर आदि से सजा दिया जाय। जब प्रश्न प्राण-रक्षण वा सन्तान-संत्राण का उठता है तब कुपित गौ-बैलों के सींग आक्रामक पुरुषों व पशुओं के शरीर के आर-पार हो जाते हैं। यहाँ पर इसी विषय से सम्बद्ध एक आप-बीती घटना उल्लेख अनुचित न होगा। सन् १९२२ ई० के

लगभग की बात है कि अपने लघु भ्रातृव्य, जिसकी आयु ७-८ वर्ष की थी, के साथ पश्चिमी पाकिस्तान के माड़ीघाट से माड़ी इंडस को पैदल आ रहा था। ढलवान पर एक गौ चर रही थी और थोड़ी दूर पर उसका बछड़ा। मैं आगे ऊँचाई पर था, भाई लगभग सौ गज पीछे। भाई ने, न जाने क्यों, बछड़े को छोटा-सा पत्थर दे मारा। दूर खड़ी गौ ने यह दृश्य देख लिया और स्व-बछड़े को बचाने तथा मेरे भाई को 'पाठ पढ़ाने' को दौड़ पड़ी। उन दिनों मैं न प्रौढ़ था और न सदण्ड; इसलिए गौ को दूर से ही पत्थर मारने और शोर मचाने के सिवा कुछ कर न सका। एकाएक समीपवर्ती छोटी लाइन पर जा रहे इंजन के चालक की दृष्टि उस दृश्य पर पड़ी। वह इंजन रोक, डंडा ले गौ की ओर बढ़ा और तब कहीं भाई के प्राण बचे। इस घटना का स्मरण आते ही मुझे प्रायः चाणक्य की यह शिक्षा भी याद आ जाया करती है कि न मनुष्य को निहत्था रहना चाहिए न सींग वाले प्राणियों पर बहुत विश्वास करना चाहिए।

## हाथी

हाथी सीधा, भीरु तथा आज्ञापालक प्राणी है, परन्तु जब क्रुद्ध होता है, तब कान फैला, सिर हिला जोर से चिल्लाकर आक्रमण कर देता है। कुछ वर्ष पूर्व उगांडा ( अफ्रीका ) के 'परा' नामक स्थान पर दर्शकों के लिए मकानों का निर्माण किया जा रहा था। जो भी लोग वहाँ काम करने के लिए आते थे, उन्हें एक हाथी वहाँ से बार-बार भगा देता था। उस क्षेत्र को वह 'अपनी सीमा' में मानता था और नहीं चाहता था कि कोई उस पर अनधिकृत निर्माण करे।

हथिनी का गर्भधारण-काल २१ मास का होता है। जब प्रसव-समय समीप होता है, तब हस्तिनी अपने से बड़ी एक अभिभाविका की सहायता लेती है। यह प्रसव-समय में 'जननी' के समीप रहती है तथा जो कोई उस समय उसके पास आने का प्रयास करता है, उस पर कुपित हो आक्रमण करती है।

सन्तान-वियोग भी हथिनी के शोक तथा क्रोध का एक कारण है। एक बार एक हथिनी अपने मृत शावक को तीन दिन तक उठाकर इधर-उधर

घूमती रही। तत्पश्चात् वह कई दिनों तक एक वृक्ष के पास निराहार खड़ी रही। उन दिनों वह सभी समीप जाने वालों पर आक्रमण करती थी। जब वह वहाँ से चली गई तब ज्ञात हुआ कि उसने अपने मृत बच्चे को गढ़ा खोद कर वहीं गाड़ा था।

हाथी अपने साथी की रक्षा के लिए भी कोप करते देखे गये हैं। अति-वृद्ध गज़ की देख-भाल दो युवक हाथी करते हैं। सकट उपस्थित होने पर वे अपने श्रद्‍्य वृद्ध को तो किसी सुरक्षित स्थान पर खड़ा कर देते हैं, और स्वयं क्रोध में भरकर शत्रु से लोहा लेने चल पड़ते हैं।

भय भी हाथियों के क्रोध का एक कारण है। अफ्रीकी हाथी देशी व गोरे लोगों की गन्ध खूब पहचानते हैं। यदि कोई देशी व्यक्ति उन का पीछा कर रहा हो तो कुछ समय तक वे कहीं छिप जाते हैं; परन्तु उन्हें किसी गोरे की गन्ध मिल जाए तो क्रोध से खूब पाँव पटकते हैं और डर से मीलों तक भाग कर जान बचाते हैं।

## बन्दर

आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार मनुष्य का विकास बन्दरों की ही किसी जाति से हुआ है। अतः उनके क्रोध के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। बन्दरों की दो मुख्य जातियाँ मानी जानी हैं—१. सामान्य वन्दर तथा २. मानव सदृश-बन्दर।

### १. सामान्य बन्दर

इन की भी अनेक उपजातियाँ हैं; जैसे बेबून, मैनड्रिल, इन्यूज, नील वन्दर, लंगूर आदि।

बेबून अफ्रीका में ही पाया जाता है तथा झुण्डों में ही रहता है। पीछा करने वालों पर क्रुद्ध होकर यह पत्थर लुढ़काता वा छोटे पत्थर उठाकर मारता है। बूढ़ा बेबून अपने शरारती बच्चों को कुपित होकर डाँटता ही नहीं, पीटता भी है। परन्तु माता ऐसी भी परिस्थिति में हस्तक्षेप नहीं करती। वृद्ध नर बेबून की आयु के साथ क्रमशः क्रोध भी बढ़ता जाता है। रात को जब तक उसे किसी वृक्ष पर अभीष्ट स्थान नहीं मिल जाता, तब तक वह बड़बड़ाता रहता है। स्त्रियाँ और बच्चे उसके पश्चात ही सो सकते है, पहले नहीं।

कभी-कभी नींद के दस मिनट के अंदर-ही-अंदर, कोई कष्ट होने पर, क्रोध से फिर भौंक उठता है। दिन के समय भी अहंकार-वश वह प्रत्येक को 'खों-खों' से डराता है। क्रोधी पर क्रोध तथा भागने वाले को भगाने का यत्न करना प्रत्येक बंदर का स्वभाव ही है। प्यार से इसके स्वभाव में सुधार संभव है। दक्षिण अफ्रीका का चकमा बेबून तो इतना साहसी होता है कि मनुष्य को अकेला देखकर लूट लेता है।

मैनड्रिल बड़े डील का बंदर है। यह पालतू होने पर भी पूर्णतया विश्वसनीय नहीं होता। कभी-क़भी तो बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के ही क्रोधवश अतिभयंकर हो उठता है।

इन्यूज़ उत्तरी भारत का सामान्य बन्दर है। बचपन में तो यह शान्त होता है, परन्तु बड़ा होने पर क्रूर व उद्दंड हो जाता है। तीर्थों के यात्री इनकी क्रोधमयी करतूतों से पर्याप्त परिचित होते हैं। ये अपने दाँतों व पंजों से स्त्रियों व बच्चों को काफ़ी कष्ट पहुँचाते हैं।

नीलबंदर पश्चिमी घाट में ही मिलता है। यह इतना क्रोधी व भयानक होता है कि इसे पाला ही नहीं जा सकता।

लंगूर, बंदर जितने शरारती तो नहीं होते, किन्तु जब संख्या बहुत बढ़ जाती है तो काफी कुचेष्टक हो जाते हैं। सभी वन्दर बहुत बुद्धिमान् होते हैं तथा दूसरे की दुर्भावना का अनुमान कर कोप करते हैं।

## २. मानव-सदृश बन्दर ( वन-मानुष )

इन पुच्छ-हीन वन्दरों की जातियों में से मुख्य चार हैं—१. गिब्बन २. औरंगओटान ३. चिंपांजी तथा ४. गोरिल्ला।

भारत में केवल गिब्बन ही पाया जाता है। इन के माथे पर आड़ी सफ़ेद धारी होती है तथा ये प्रातः-सायं खूब शोर मचाते हैं। ये भूमि पर मनुष्य के समान चल सकते हैं।

### औरंगओटान ( वन का आदमी )

यह बृहदाकार बलशाली वनमानुष केवल बोर्नियो व सुमात्रा द्वीपों में पाया जाता है। इसका आकार-प्रकार बहुत भोंडा होता है तथा सताया जाने पर बहुत क्रुद्ध व भयंकर हो उठता है। बिना छेड़े मनुष्य को कुछ नहीं

कहता, परन्तु स्वरक्षा के लिए शरीर-बल से पूरा काम लेता है। एक बार एक क्रुद्ध मादा ने वृक्ष से वज़नी फ़लों की दस मिनट तक ऐसी वृष्टि की कि यात्री आगे न बढ़ सके। आयु-वृद्धि के साथ, अन्य वानरों के समान यह भी अधिक क्रुद्ध व उद्दंड होता जाता है।

## चिपांजी

अफ्रीका का चिपांज़ी मनुष्यों से बहुत कुछ मिलता-जुलता है तथा मानवेतर प्राणियों में सब से अधिक चतुर है। साधारण औजारों से काम ले सकता है। पांच फुट का यह वन-मानुष सभ्य-नम्र है तथा मनुष्य को देखकर भाग जाता है। इसके ईर्ष्या-जनित क्रोध की एक घटना उल्लेखनीय है। एक अंग्रेज़, पालतू चिपांज़ी को अफ्रीका से स्वदेश ले जा रहा था। मार्ग में एक बन्दरगाह से एक यात्री-परिवार जहाज पर सवार हुआ। तब पहले यात्री चिपांज़ी को छोड़ कर उनके बच्चे से प्यार करने लगे। एक दिन जब यात्री भोजन कर रहे थे, तो ईर्ष्यावश चिपांजी ने उस बच्चे को उठा कर समुद्र में फेंकने की चेष्टा की।

## गोरिल्ला

गोरिल्ला सब से बड़ा व सब से भयंकर वनमानुष है। मनुष्य-सा कद और सिंह-सा बल। प्रायः पशुओं के समान ही चलता है, कभी-कभी मनुष्यवत् डंडों से तो नहीं पीटता, परन्तु क्रुद्ध होने पर हाथ-पाँव तथा दाँतों से खूब लड़ता है। शत्रु की गन्ध मिलते ही मादा (माता) तो बच्चे को ले भाग जाती है, किन्तु नर क्रोध में भर भयंकर सूरत बना गर्जने लगता है तथा अपनी छाती पर वैसे ही हाथ मारता है, जैसे अखाड़े में मल्ल अपनी रानों पर। तदनंतर वह आँधी के समान शत्रु पर टूट पड़ता है। ऐसे कुपित गोरिल्ले को गोली मारने में ही अपना कुशल है। एक बार एक क्रुद्ध गोरिल्ले ने, गोली का वार खाली जाने पर, दौड़ कर शिकारी की बंदूक की नली मुँह में डाल ली और उसे ऐसे जोर से दबाया कि वह वक्र हो गई।

## सार

उपरिलिखित विवरण से विदित होता कि जीव-जन्तुओं में क्रोध प्रायः निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न व तीव्र होता है—

१. भूख-प्यास से व्याकुल होने पर तथा खाते समय विघ्न पड़ने पर।

२. भक्ष्य पदार्थों के अपहरण पर।

३. उत्तेजक द्रव्यों के सेवन से।
४. प्राण हरने वाले पर तथा शत्रु की गन्ध प्राप्ति पर।
५. भूत, वर्तमान वा भविष्य में पीड़ा देने वाले पर (गैंडे व दरिय घोड़े गर्मी में जल से निकाले जाने पर क्रुद्ध व कुछ आक्रामक जाते हैं)।
६. निवास-स्थान के नाश पर।
७. घर में अनधिकृत रूप से प्रवेश करने वाले पर।
८. पराये घर पर अधिकार करने के विचार से।
९. सन्तान व सम्बन्धी के पोषण के लिए अन्यों पर क्रोध।
१०. सन्तान व सम्बन्धी को सताने वा मारने वाले पर क्रोध।
११. प्रिय वा श्रद्धेय जीव की रक्षा के लिए क्रोध।
१२. अनावश्यक बोझ बने हुए सम्बन्धी पर क्रोध।
१३. काम, लोभ, ईर्ष्या, हिंसक-वृत्ति, भय, अहंकार तथा मनोविनोद लिए क्रोध।
१४. जाति-भेद के कारण क्रोध।
१५. कार्य में हस्तक्षेप करने वाले पर क्रोध।
१६. अभीष्ट वस्तु की अप्राप्ति पर क्रोध।
१७. स्वामी के प्राण वा संपत्ति की रक्षा के लिए क्रोध।
१८. स्वामी को प्रसन्न करने के लिये अन्य प्राणियों पर क्रोध।
१९. क्रोधी पर बदले में क्रोध।
२०. निर्बल एकाकी पर क्रोध।
२१. स्वसमुदाय की संख्या-वृद्धि होने पर अन्य जीवों पर क्रोध।
२२. शरारती बच्चों पर बूढ़ों का क्रोध।
२३. आयुवृद्धि से क्रोध-वृद्धि।
२४. बच्चों व बूढ़ों की अपेक्षा युवकों में क्रोध की अधिकता।
२५. केंचुल उतारने के बाद कुछ समय तक सर्पों में क्रोध-वृद्धि।
२६. प्रसव के बाद मादाओं में स्वसंतान-रक्षार्थ क्रोध-वृद्धि।
२७. प्रसूता की रक्षा के लिए अभिभाविका का क्रोध।
२८. अज्ञात कारण से क्रोध।

## चतुर्थ अध्याय

# सामान्य मनुष्यों के क्रोध के कारण

गत अध्याय में जीव-जन्तुओं के क्रोध पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। अब यह देखने का यत्न किया जायेगा कि मनुष्य, जो कि विकास-क्रम की दृष्टि से पशु-पक्षियों से बहुत आगे है, क्यों क्रोध करता है।

### शैशव

मनुष्य का आरम्भ शैशव से नहीं, गर्भावस्था से होता है। किसी गर्भस्थ बच्चे ने कभी कहीं जननी पर क्रोध किया हो, इस वात का हमें तो अभी तक कोई ज्ञान नहीं। किसी अन्य पर उसके क्रोध का प्रश्न ही नहीं उठता। निरीक्षण तथा मनोवैज्ञानिक ग्रन्थों के अध्ययन से विदित होता है कि जन्म के बाद पहले तीन मासों में भी शिशु में एक सामान्य उत्तेजना ( Excitement ) सी ही लक्षित होती है, क्रोध नहीं। तीन मास की अवस्था में उसमें हर्ष तथा कष्ट के लक्षण दिखाई देने लगते हैं, किन्तु पूर्वोक्त उत्तेजना भी विद्यमान रहती है। तीन से छह मास के शिशुओं में भय, घृणा तथा क्रोध भी प्रकट होने लग जाते हैं, जो कष्ट की अनुभूति के ही विकसित रूप हैं। इस अवधि में भय की अपेक्षा क्रोध की ही अधिकता दिखाई देती है और इसका कारण है कष्टप्रद परिस्थितियाँ। जब माता-पिता उसकी ओर ध्यान नहीं देते अथवा उसकी इच्छा-पूर्ति नहीं करते, तब वह क्रोध प्रकट करता है। खिलौना छिनने, स्नान, वस्त्र-परिवर्तन आदि के समय भी शिशु क्रुद्ध होता है। जब उसके किसी अभीष्ट कार्य में कोई रुकावट उत्पन्न होती है, तब वह क्रुद्ध हो उठता है। यह स्थिति शैशव की समाप्ति-पर्यन्त अर्थात् लगभग दो वर्ष की अवस्था तक रहती है।

### पूर्व-बाल्यकाल

दो से छह वर्ष तक की अवस्था को 'पूर्व-बाल्य-काल' कहा जाता है। शैशव की अपेक्षा इस अवस्था में क्रोध बढ़ जाता है। कारण, पहले की अपेक्षा

बालक की इच्छाएँ बढ़ती हैं और वह उन्हें पूरी करने के लिए अत्यधिः उत्सुक रहता है। स्वभावतः ही वे सब-की-सब पूरी नहीं हो सकतीं, अत बाधाएँ उपस्थित होने पर वह क्रोध करता ही रहता है। स्मरण-शक्ति i वृद्धि भी उसके क्रोध का कारण बन जाती है। अनुभव से उसे विदित हो जाता है कि क्रोध करने पर मन-चाहे पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं; अतः व प्रत्येक अभीष्ट की प्राप्ति के लिए भी क्रोध करने लगता है। इस अवस्था i माता-पिता को सावधान रहना चाहिए। उसकी उचित इच्छाएँ ही पूरी क जानी चाहिए, अनुचित नहीं। यदि वह अनुचित माँगे मनवाने के लिए कुपित होता है, तो उसे प्रेम से शान्तिपूर्वक समझाना चाहिए। यदि इस पर भी व नहीं मानता और रोता-चिल्लाता है, तो उसकी परवाह नहीं करनी चाहिए इस प्रकार वह जान जायेगा कि सभी दशाओं में क्रोध से काम नहीं बन करते।

इस अवस्था में बालक निम्नलिखित कारणों से भी क्रोध करते हैं—

१. पूरी नींद न मिलना; सोने के कमरे में स्वच्छ वायु की न्यूनता कष्टप्रद बिस्तर।
२. भोजन की न्यूनता वा अधिकता।
३. न्यून, अधिक अथवा ऋतु के विपरीत वस्त्र-धारण।
४. समान आयु के बच्चों के साथ खेल-कूद का समय न मिलना।
५. अपच, कब्ज़ आदि कोई रोग।
६. अपनी योग्यता वा शक्ति से बाहर का काम करने में विफलता।
७. भावुकता।
८. बार-बार की डाँट-फटकार।

## उत्तर बाल्य-काल

छह से बारह बरस तक की अवस्था को 'उत्तर बाल्य-काल कहते हैं। बच्चा इन वर्षों में स्वतंत्रता-पूर्वक कार्य करने का अत्यन्त इच्छुक तो होता है, परन्तु उसमें अनुभव व विवेक की कमी होती है। इसीलिए माता-पिता तथा सम्बन्धी उसे पूरी स्वतंत्रता नहीं देते। इस प्रकार इच्छाएँ पूरी न होने पर वह क्रोध करता रहता है। उसके क्रोध का दूसरा मुख्य कारण उसकी

आलोचना है। प्राय: माता-पिता आदि अन्य अधिक गुणी बालकों की तो उसके सम्मुख स्तुति करते हैं और उसे उनकी तुलना में हीन और बुद्धू बताते हैं। ऐसी तुलनात्मक आलोचना जहाँ बच्चों को क्रोधित करती है वहाँ उसे हानि भी पहुँचाती है। इस काल का क्रोध बच्चे रो-धो कर नहीं, अपितु लड़-झगड़ कर, चुप रहकर वा उदास होकर व्यक्त करते हैं।

थकावट की दशा में कोई कार्य करने वा अध्ययन का अनुरोध करने पर भी बच्चे क्रोध करने लगते हैं। अन्य बहिन-भाइयों की अपेक्षा कम स्नेह मिलने पर भी वे कुपित हो उठते हैं।

## किशोर-काल

उत्तर बाल्य-काल की समाप्ति तथा प्रौढ़ावस्था के प्रारम्भ के बीच का काल किशोर-काल कहलाता है। सामान्यत: १२ से २१ वर्ष तक की अवस्था के बालकों को किशोर तथा १०–१८ वर्ष तक की कन्याओं को किशोरी कहते हैं। इस अवस्था में उन में शारीरिक और मानसिक परिवर्तन इतनी प्रबलता तथा शीघ्रता से होते हैं कि उचित निर्देशन के अभाव में वे अनेक प्रकार की भयंकर भूलें कर बैठते हैं, जिनके कटु परिणाम उन्हें भुगतने ही पड़ते हैं। इस अवस्था में उनके जनकों तथा अध्यापकों का कर्तव्य हो जाता है कि वे उनकी मानसिक अवस्था का भलीभाँति सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन कर उनका उचित पथ-प्रदर्शन करें।

यौवन के आरम्भ के साथ-साथ युवक-युवतियों में आशा तथा विश्वास का उदय होता है; इसलिए वे अपने आपको प्रौढ़ सिद्ध करने के लिए व्याकुल रहते हैं। परन्तु यह भी सत्य है कि अभी तक उनमें अनुभव तथा ज्ञान की कमी ही होती है, भावों की तीव्रता भले ही हो। वे परिपक्वता की ओर पाँव अवश्य बढ़ा रहे होते हैं, परन्तु परिपक्व नहीं होते। इसलिए न तो उन पर दायित्व का पूरा भार डाला जा सकता है और न उन्हें सर्वथा दायित्वशून्य रखना उचित है। यदि उन्हें उत्तरदायित्व का कोई भी कार्य नहीं सौंपा जाता तो वे कुपित हो जाते हैं। इसलिए उन्हें शान्त तथा उत्साहित रखने के लिए आवश्यक है कि उनकी आयु की अल्पता, अनुभव की न्यूनता और ज्ञान की कमी के कारण सम्बन्धी तथा प्राध्यापक उनका मज़ाक न उड़ाएँ, बल्कि उन्हें सीमित मात्रा में

दायित्व सौंपें तथा उचित मार्ग-निर्देशन करें। जब ऐसा नहीं किया जात उनकी उचित माँगों की पूर्ति नहीं की जाती, तब उन्हें-स्व-सम्बन्धियों पर क्रोध आने लगता है तथा शिक्षणालयों के प्राध्यापकों और व्यस्थापकों पर भ क्रोध की अभिव्यक्ति तो एक वा दूसरे प्रकार से होगी ही। भय वा शिष्टत के कारण वे माता-पिता को पीटते नहीं, परन्तु उनके प्रति 'असत्याग्रह-सा आरम्भ कर देते हैं, घर के काम-काज में रुचि नहीं लेते, छोटे बहिन-भाइयं को तमाचे जड़ देते हैं, घर से भाग जाते हैं, इत्यादि। शिक्षणालयों में जं अध्यापक उनकी मनोवृत्ति को न समझकर, उनकी उचित कठिनाइयों कं भी दूर करने में सहयोग नहीं देते, उनके प्रति वे उद्दंडता दिखाते हैं । तथ आज्ञोल्लंघन करते हैं। जब संस्था के प्रबन्धक उनकी उचित माँगों की भ उपेक्षा करते हैं, तो वे हड़तालें करते हैं, मेज-कुर्सियाँ तोड़ते हैं तथा अन्य अनेक प्रकार से संस्थाओं की सम्पत्ति को क्षति पहुँचाते हैं। इसी प्रकार जब शिक्षणालयों को आने-जाने के लिए परिवहन की व्यवस्था सन्तोष-जनक नहं होती, तो वे बसों की गद्दियाँ चीर डालते हैं, बसों, बस-स्टापों आदि कं फूंक डालते हैं तथा अन्य यात्री-बसों पर पथराव करते हैं। ऐसी स्थिति मे सम्बन्धियों तथा सम्बन्धित प्राध्यापकों, व्यवस्थापकों, राजकीय अधिकारियों आदि का कर्तव्य है कि वे किशोर-किशोरियों की उचित माँगों पर ध्यान दे कर उनकी वास्तविक कठिनाइयों को दूर करने का प्रयास करें। परन्तु इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि उनकी अनुचित माँगे, हिंसा, तोड़-फोड़ आदि के डर से कदापि स्वीकार न की जायँ। जहाँ अनावश्यक नियंत्रण उनके विकास में बाधक होता है, वहाँ नियत्रण का सर्वथा अभाव उन को उद्दण्ड, उच्छृंखल, अनुशासन-हीन तथा उत्तरदायित्व-शून्य बना डालता है। इसलिए प्रौढ़ अनुभवी तथा ज्ञानी मनुष्यों का कर्तव्य है कि उनके क्रोध के वास्तविक कारणों की तह तक जाकर उन्हें शान्त, सभ्य तथा वीर बनायें।

## प्रौढ़ों में क्रोध के कारण

शिशुओं, बालकों तथा युवकों के क्रोध-कारणों के दिग्दर्शन के पश्चात् अब यह देखना चाहिए कि प्रौढ़ मनुष्य प्रायः क्यों क्रुद्ध होते हैं। वस्तुतः क्रोध के कारणों की गणना आकाश के तारों वा सागर-तीरवर्ती रेत के कणों की गणना

के समान ही असम्भव है। असम्भव इतना ही है कि हम कुछ प्रमुख कारणों की ओर संकेत कर दें तथा शेष को प्रौढ़ पाठकों की कल्पना पर छोड़ दें। प्रमुख कारणों को, विवेचन की सुगमता के विचार से, हम सात वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

१. वैयक्तिक २. पारिवारिक ३. सामाजिक ४. आर्थिक ५. राजनीतिक ६. धार्मिक ७. मिश्रित।

## १. वैयक्तिक कारण

वैयक्तिक कारणों के भी तीन विभाग किये जा सकते हैं—

( क ) शारीरिक, ( ख ) बौद्धिक तथा ( ग ) आत्मिक।

### ( क ) शारीरिक कारण

शरीर हमारे व्यक्तित्व का स्थूलतम भाग है। जिस व्यक्ति वा वस्तु से हमारे शरीर को कष्ट पहुँचता है, उस पर हम सहज ही खिन्न वा क्रुद्ध हो उठते हैं। गाड़ी, बस आदि में अधिक भीड़-भाड़ होने पर प्रायः 'तू तू मैं-मैं' हो ही जाती है। जिस पदार्थ से वर्तमान में चाहे दुःख न मिल रहा हो, परन्तु भविष्य में दुःख मिलने की सम्भावना हो, उस पर भी मनुष्य कुपित हो उठता है। साँप, बिच्छू, मच्छर, खटमल, घातक व पीड़क प्राणियों को प्रायः इसीलिए मार डाला जाता है। राजनीतिक क्रान्ति होने पर नये शासक पुराने शासकों तथा उनकी सन्तान का भी प्रायः इसी कारण संहार कर दिया करते हैं।

शारीरिक अस्वास्थ्य भी क्रोध का कारण है। दीर्घ और असाध्य रोग ही मनुष्य को क्रोधी नहीं बना देते, जुकाम, सिरदर्द, अपच आदि से भी मनुष्य चिड़चिड़ा हो जाता है। आधुनिक खोजों से विदित होता है कि जिगर तथा गल-ग्रंथि ( Thyroid gland ) से यदि स्राव अधिक होने लगे तो मनुष्य अतिशीघ्र कुपित हो उठता है। १९७२ ई० में दिल्ली में ७२ व्यक्तियों ने आत्महत्या की। उनमें से नौ ने रोगों से पीड़ित, निराश व क्रुद्ध हो कर अपना प्राणान्त किया।

उचित खान-पान का अभाव भी क्रोध उत्पन्न करता है। कई पुरुष मिर्च-मसाले, कच्ची-जली रोटी, न्यूनाधिक नमक, घी की बहुतायत वा अभाव आदि अनेक कारणों से कुपित होकर कभी पत्नियों को पीट डालते हैं, कभी पाचकों

को बुरा-भला कहते हैं और कभी चूल्हा-बर्तन तोड़ डालते हैं। यूनानी तत्त्वज्ञ अरस्तू ने लिखा है कि सुरा-पान क्रोध का एक प्रमुख कारण है। यही कारण है कि डाकू, हत्यारे आदि लोग डाका आदि डालने से पूर्व मद्य-पान करके ही घर से निकलते हैं। मांस, अंडा, चाय, काफ़ी, सुरा, तँबाकू, लाल मिर्च, खटाई, लहसुन, प्याज, बैंगन आदि गरम पदार्थों से कोप उत्पन्न होता है और दूध, मलाई, दही, छाछ, शर्बत, मक्खन, खीरा, ककड़ी, घीया, तोरई, टिंडा, आमला, पेठा, करेला, भिंडी आदि से शान्त। सामान्यत: गरम वस्तुएँ क्रोध उत्पन्न करती हैं तथा शीतल और लेसदार वस्तुएँ शान्ति। पित्त-नाशक होने के कारण मधुर, तिक्त ( तीते ) और कषाय ( कसैले ) पदार्थ प्राय: कोप-नाशक होते हैं तथा कड़वे, खट्टे व नमकीन पदार्थ पित्तवर्द्धक होने के कारण क्रोधोत्पादक होते हैं। अनुचित आहार के समान असंतुलित तथा अपौष्टिक आहार भी क्रोध का कारण है। इसलिए आवश्यक क्रोध से बचने के लिए आवश्यक है कि हमारे भोजन में सभी आवश्यक तत्त्वों का उचित मात्रा में समावेश हो।

भूख-प्यास की तीव्रता क्रोध की जननी है। भूख से पीड़ित लोग, अनाज न मिलने पर निजी वा सरकारी भण्डार लूट लेते हैं। अकाल के दिनों में कई बार मनुष्य अन्य मनुष्यों को तथा माता-पिता अपने बच्चों तक को मारकर भूख की ज्वाला शान्त करते हैं। कुछ ही समय पूर्व की एक घटना है कि एक हरिजन युवक, दिन-भर कड़ा परिश्रम कर सायं घर पहुँचा तो भोजन तैयार न था। उसकी गर्भवती पत्नी धान कूट रही थी। भूखे युवक ने मूसल छीन उसके सिर पर दे मारा। जब बूढ़ी सास बहू को बचाने के लिए बढ़ी तो बेटे ने उसी मूसल से माँ का काम भी तमाम कर दिया।

सुख में बाधा व्यक्ति के क्रोध का कारण बनती है और बाधक व्यक्ति क्रोध का भाजन। एक बार एक दादी ने वात्सल्य-वश अपने किशोर सोते पोते को पीने को दूध दिया। किशोर को निद्रा का सुख दूध की पुष्टि से अधिक प्रिय था इसलिए उसने दुग्ध-पान से इन्कार कर दिया। परन्तु स्नेहमयी दादी बार-बार अनुरोध करती गई। इस पर किशोर ने दादी को ही जली-कटी नहीं सुनाई, दूध का गिलास भी औंधा कर दिया।

अधूरी नींद क्रोध का एक मुख्य कारण है। गाढ़ी नींद हमारी थकावट तथा चिन्ताओं को भगानी है और स्वास्थ्य प्रदान करती है। नींद हमारे जीवन का एक अत्यन्त सुखद व स्थास्थ्य-प्रद अनुभव है। इसलिए जब तक अनिवार्य न हो किसी सुप्त को जगाना न चाहिए ('सोतों को जगाने का काम समाजसुधारकों व राजनीतिक नेताओं आदि पर ही छोड़ देना चाहिए)। उचित बिछौने तथा शयन-कक्ष में वायु-प्रवेश का अभाव भी नींद में बाधक बन क्रोध का कारण बनता है। उचित मात्रा में विश्राम व व्यायाम न करना भी कोपोत्पादक है।

किसी भी अंग वा इन्द्रिय की विकलता क्रोध उत्पन्न करती है। इसलिए पूरा ध्यान रखना चाहिए कि हमारे नेत्र, श्रोत्र आदि सभी अंग ठीक प्रकार से कार्य करने में समर्थ रहें।

## ( ख ) बौद्धिक कारण

जीवन को शान्त, समृद्ध तथा आनंदमय बनाने में बुद्धि का योगदान है। यही कारण है कि वैदिक संस्कृति में गायत्री मंत्र को, जिसमें प्रभु से बौद्धिक प्रेरणा की प्रार्थना की गई है, सर्वश्रेष्ठ मंत्र माना गया है। बुद्धिमान् मानव तो विवेक से काम लेता है, अतः शीघ्र ही क्रोधाधीन नहीं होता, किन्तु निर्बुद्धि मनुष्य क्रोध का शिकार बनकर सैंकड़ों कष्ट उठाता रहता है। उदाहरणार्थ, 'राम' ने कई वर्ष पूर्व 'श्याम' को कुछ कड़वे शब्द कहे। उस घटना में श्याम का भी कुछ दोष हो सकता है तथा राम का क्रोध भी अनुचित हो सकता है। बरसों बीत गये, बात आई-गई हो गई। इस पर भी यदि 'श्याम' उस घटना को अनेक बार स्मरण करके दाँत पीसता रहे, मुट्ठी भींचता रहे, मन-ही-मन खीझता रहे तो अनुचित ही है। भूत के समान ही भविष्य के सम्बन्ध में भी कई लोग अनिष्ट कल्पनाएँ कर क्रोध किया करते हैं, जो सर्वथा अनुचित है। अनेक बार हमारी अपनी ही असावधानी से हमारे सिर, पैर वा किसी अन्य अंग को ठोकर लग जाती है। उसमें दोष हमारा होता है, अतः हमें किसी अन्य पर क्रोध करने का अधिकार नहीं होता। तो भी हम निर्जीव पत्थर, ताक, द्वार, दीवार आदि पर वा सजीव प्राणी पर कटु-शब्दों का प्रयोग कर बैठते हैं। कभी-कभी तो जिस द्वार आदि से चोट लगी हो, उसको धक्का-मुक्का भी

मार देते हैं, जिससे उसे तो कोई कष्ट पहुँचता नहीं, अपना मन कुछ संतुष्ट सा अवश्य हो जाता है ।

संसार का वातावरण कुछ ऐसा विकृत हो चुका है कि सत्य का स्थान झूठ ने, धर्म का स्थान पाप ने, ईमान का स्थानी वेईमानी ने, विश्वास का स्थान धोखे ने, परोपकार का स्थान परापकार ने, कर्तव्यपरायणता का स्थान कर्तव्यविमुखता ने ले लिया है । जमाखोरी और रिश्वतखोरी, चोरबाजारी आदि सामाजिक दुर्गुणों के कारण विचारशील मानव के मन में नित्य तनाव बना रहता है । संसार को वह निर्दोष, शान्त तथा पूर्ण देखना चाहता है, परन्तु प्रति प्रातः समाचार-पत्र पढ़कर तथा सांसारिक लोगों का कलुषित व्यवहार देखकर वह कुढ़ता, खीझता तथा क्रुद्ध होता रहता है । सामान्यजन उपर्युक्त अवस्था को ही संसार का सत्य स्वरूप समझकर सन्तुष्ट रहते हैं और घूस आदि दे-दिलाकर अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं, परन्तु शिक्षित, सभ्य, धर्मप्रिय और सदाचारी लोग आदर्शवादी होने के कारण, कष्टों में भी एक सात्त्विक आनन्द अनुभव करते हैं । साहित्य, इतिहास आदि के ग्रन्थों में रौद्र रस के वृत्तान्त पढ़कर नाटक, सिनेमा आदि में युद्धादि के दृश्य देखकर तथा संग्रामों के चित्रों का अवलोकन कर भी क्रोध उत्पन्न होता है ।

### आत्मिक कारण

इच्छा आत्मा का प्रधान गुण है । जन्म-मृत्यु-पर्यन्त मनुष्य इच्छाओं के अधीन रहता है, क्योंकि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इच्छाएँ अनिवार्य हैं । कोई धनी बनना चाहता है तो कोई बली, कोई तपस्वी बनना चाहता है तो कोई यशस्वी, कोई योगी बनना चाहता है तो कोई भोगी, कोई अधिकारी बनना चाहता हैं तो कोई परोपकारी । परन्तु परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण सभी की सब कामनाएँ कभी पूर्ण नहीं होतीं । अपूर्ण इच्छा निराशा की जननी है और निराशा खीझ तथा क्रोध की ।

अपमान भी क्रोध का एक प्रधान कारण है । सामान्य मनुष्य सम्मान की भले ही कामना न करे, परन्तु अपमान से बचना तो चाहता ही है । धनी-मानी अपराधी अपमान से बचने के लिए सहस्रों-लाखों रुपये दे डालते हैं परन्तु जेल में जाना पसन्द नहीं करते । अपमान से बचने के लिए कई बार अनेक

प्रतिष्ठित मनुष्य क्रोध में आकर आत्म-हत्या तक कर लेते हैं। जब छत्रपति शिवाजी को औरंगजेब की सभा में समुचित स्थान नहीं दिया गया, तब उन्हें इतना क्रोध आया कि वे उबल पड़े तथा पेट में कटार भोंक कर स्व-जीवन समाप्त करने पर तैयार हो गये।

यह अपमान की भावना अपने-आप तक ही सीमित नहीं होती, अपनों को भी अपनी परिधि में ले लेती है। जब कोई व्यक्ति हमारे किसी पूज्य वा प्रियजन का अपमान करता है, तब वह मानो हमारा ही निरादर करता है। यही कारण है कि हम उस घड़ी चुप तथा निष्क्रिय नहीं रहते और क्रुद्ध हो कर प्रतिकार रूप में उसका अपकार करने को तैयार हो जाते हैं। यही कारण था कि लक्ष्मण परशुराम-द्वारा कृत श्रीराम के अपमान पर कुपित हो उठे थे और उससे लोहा लेने को भी तुल गये थे।

प्रत्यक्ष अपमान करने वाले के समान ही परोक्ष में निन्दा करने वाले पर भी हमें क्रोध आता है। वह निन्दा सच्ची भी हो सकती है, झूठी भी। ऐसी अवस्था में हम ऐसे सोचते हैं—दोष और गुण किसमें नहीं होते? विधाता ने किसे सर्वथा निर्गुण व निर्दोष रचा है? हममें भी दोष हो सकते हैं, दूसरों में भी। परन्तु किसी को यह अधिकार कहाँ से मिल गया कि वह सर्वसाधारण में हमें कलंकित करता फिरे? जैसे जय से हर्ष होता है, वैसे ही पराजय से शोक। समझदार मनुष्य तो, जीत-हार में से एक को अवश्यम्भावी समझकर न बहुत प्रसन्न होता है, न बहुत विषण्ण, परन्तु अपरिपक्व बुद्धि के युवक व प्रौढ़ उस हार को सह नहीं सकते और विजेता के प्रति क्रुद्ध हो उठते हैं। इसी क्रोध के कारण कई बार खेल के मैदान युद्ध के मैदान बन जाते हैं और निन्दनीय रक्त-पात हो जाता है। इस प्रकार का क्रोध क्रीड़ा-भूमि तक ही सीमित नहीं रहता, वाद-विवाद, राजनीतिक निर्वाचन, युद्धादि के बाद भी अपनी करामात दिखाता रहता है। हिटलर के क्रोध का प्रमुख कारण प्रथम महायुद्ध में जर्मनी की पराजय था।

असहिष्णुता भी क्रोध की जन्मदात्री है। असावधानी के कारण जैसी छोटी-मोटी भूलें हमसे हो जाती हैं, वैसी ही अन्यों से भी। उनसे एक-दूसरे को न्यूनाधिक कष्ट पहुँचना असंभव नहीं है। उदाहरणार्थ, कुछ ही दिन पूर्व

एक भाई ने क्रोध में आकर अपने सगे भाई की हत्या कर दी। कारण यह कि हत भाई के पेड़ की शाखा घातक भाई के खेत में लटकती थी। दोनों में मनमुटाव तो पहले से था ही, इस साधारण घटना ने भयंकर विस्फोटक का रूप धारण कर लिया।

ईर्ष्या भी असहिष्णुता से मिलता-जुलता भाव है। असहिष्णुता में हम दूसरे के दोष नहीं सहते और ईर्ष्या में दूसरे के गुण। गुण, धन, विद्या, पदवी आदि के कारण जब समाज में किसी सज्जन का संमान होने लगता है, तब दुर्जन मन में ईर्ष्या का जन्म होता है। वह ईर्ष्या ईर्ष्यालु को ही कष्ट नहीं देती कभी-कभी क्रोध का रूप धारण कर उस गुणी-धनी व्यक्ति को भी कष्ट पहुँचाने को उद्यत हो जाती है। कुछ समय पूर्व किसी नगर में भारत-केसरी चंदगीराम का जलूस निकाला गया। उसकी इस शोभा-यात्रा से ईर्ष्यालु लोगों ने कुपित होकर निन्दनीय दंगा कर दिया जिससे पर्याप्त जन-धन की क्षति हुई।

निर्बल निर्दोष व्यक्ति पर अत्याचार देखकर मनुष्य-मात्र की आत्मा पर आघात पहुँचता है। फलतः वह अत्याचारी पर कुपित हो उठता है तथा पीड़ितों के प्रति सहज सहानुभूति प्रकट करता है। उत्तर वियतनाम पर अमरीकी सरकार के अत्याचारों को पढ़-सुनकर स्वयं अनेक अमरीकियों ने भी क्रोध व्यक्त किया और पाकिस्तानी सेनाओं द्वारा बंगला देश पर किये गये अमानुषिक अत्याचारों को पढ़-सुनकर सारा सभ्य संसार दुःख व क्रोध से तिलमिला उठा था। कुछ समय पूर्व बुलन्दशहर के दो निर्दोष बालकों का इस कारण अपहरण तथा वध कर दिया गया कि लोभी हत्यारे उनके माता-पिता से फिरौती के रूप में भारी-भरकम रकम ऐंठना चाहते थे। धर-पकड़ के पश्चात् जब अपराधी जेल में ले जाये गये, तब वहाँ दूसरे कैदियों ने उन्हें कुपित होकर इस कारण धिक्कारा कि उन्होंने निरीह स्कूली छात्रों को लोभवश मार डाला था।

## पारिवारिक कारण

परिवार का प्रारम्भ विवाह से होता है। जो व्यक्ति अपना पारिवारिक जीवन आनन्दमय बनाना चाहता हो, उसे अपने जीवन-साथी के चुनाव में

विशेष सावधानता से काम लेना चाहिए। इस विषय में तनिक से भी प्रमाद से संपूर्ण जीवन विषाद-पूर्ण बन जाता है। यद्यपि आजकल अधिकतर लोगों की दृष्टि रंग-रूप तथा धन-संपत्ति पर अधिक लगी रहती है, तथापि हमारे मत में सदाचार, स्वास्थ्य, विद्या आदि का महत्त्व सौन्दर्य तथा संपत्ति से कहीं अधिक है। यदि साथी में इन गुणों का अभाव हुआ तो रूप और संपदा के रहते हुए भी घर क्रोध के कारण, विपदा का धाम बना रहेगा।

घर को क्रोध से मुक्त तथा आनन्द से युक्त रखने के सैकड़ों उपाय हैं, जिनका ज्ञान गार्हस्थ्य-सम्बन्धी ग्रन्थों के अध्ययन से प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ तो हम केवल कुछ प्रमुख बातों की ओर ही संकेत कर सकते हैं, जिनकी ओर उचित ध्यान देने से क्रोध निर्वासित तथा शान्ति स्थापित हो सकती है।

## पति-पत्नी

योग्य साथी के चुनाव की बात दोहराना व्यर्थ है। कोई मूर्ख पुरुष धन, पद आदि के मद में बहकर एक पत्नी के जीवन-काल में ही और व्याह कर लेते हैं। ऐसे पुरुषों की पत्नियाँ भी परस्पर लड़ती-झगड़ती रहती हैं और पतियों को भी उनके क्रोधमय तथा व्यंग्यमय वचन-बाणों का लक्ष्य बनना पड़ता है। इतना ही नहीं, उन पत्नियों के बच्चे भी प्रायः परस्पर प्रेम-पूर्वक नहीं रहते; अनेक बार तो एक-दूसरे के प्राणहारक बन जाते हैं।

गार्हस्थ्य में प्रविष्ट होकर भी जो पति-पत्नी किसी अन्य स्त्री-पुरुष से अनैतिक सम्बन्ध रखते हैं, उनके घर क्रोध के कारण कलह-क्लेश के क्रीड़ा-स्थल बने रहते हैं। दोनों में से एक के व्यभिचार की गन्ध भी दूसरे को मिल जाय, तो दूसरा भी नैतिकता का त्याग कर पाप के गर्त में कूद पड़ता है। ऐसे पति-पत्नी स्वय ही पतित नहीं होते, स्व-संतान को भी व्यभिचारी बनाने के कारण बन जाते हैं। ऐसे दुराचारी लोग प्रायः शीघ्र ही काल के गाल में समा जाते हैं। कारण, कहीं तो दुराचारी पति पत्नी की हत्या कर डालता है और कहीं दुराचारिणी पत्नी अपने प्रेमी की सहायता से पति को परलोक पहुँचा देती हैं। कभी-कभी तो दुराचारी पुरुष अपनी पुत्र-वधू तक के सतीत्व पर आघात कर बैठते हैं तथा अपने पुत्र के क्रोध के शिकार बनकर यमलोक में जा पहुंचते हैं। इस प्रकार के क्रोध में कई बार तो अनेक अबोध निर्दोष बालक भी

अपने माता-पिता के पाप के कारण, मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। कुछ समय पूर्व दिल्ली में ही ऐसे दो-तीन बालक, अपने पिता के दोष के कारण एक क्रुद्ध व्यक्ति द्वारा जीवित जला डाले गये थे।

पति-पत्नी में परस्पर सहयोग का अभाव क्रोध व कलह का मूल है। जब दोनों यह समझते हों कि हमें अब एक नया परिवार बनाना है और सुख-शान्ति-पूर्वक जीवन बिताना है, तो दोनों को ही एक-दूसरे की सुख-सुविधा का ध्यान रखना होगा। विवाह से पूर्व तो स्वभावतः वे अपना-अपना ही ध्यान रखते थे, परन्तु अब भी वृत्ति वही रही तो पारिवारिक जीवन सफल नहीं होगा। दोनों को ही स्नेह-पूर्वक इस बात के लिए प्रयत्नशील रहना होगा कि दोनों के दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुर्विचार, दुष्कर्म, दुर्भाव क्रमशः दूर होते जायँ तथा सद्गुण, सत्कर्म आदि का संचार होता जाय। दोनों को ही एक-दूसरे की मधु-मयी आलोचनाओं व प्रेरणाओं से अपना-अपना संस्कार करना होगा। इन बातों को न समझने के कारण पति प्रायः पत्नी को पीटने लग जाता है और पत्नी पिटती हुई भी क्रोधमयी तथा विषमयी वाणी से पति की छाती छेदती जाती है। जब एक वा दूसरा आये दिन क्रोध से उन्मत्त होकर दूसरे को देह वा वाणी से विद्ध करता रहता है, तब उनमें से एक दूसरे की हत्या वा आत्म-हत्या पर उद्यत हो जाता है। प्रायः सबल क्रुद्ध मनुष्य दूसरे की हत्या कर डालता है और निर्बल कुपित व्यक्ति आत्महत्या। कोई मनुष्य तब तक आत्महत्या नहीं करता जब तक उसका जीवन मरण से अधिक-दुःखदायी न बन जाय। दैहिक तथा आर्थिक बल की दृष्टि से पति प्रायः पत्नी की अपेक्षा प्रबल होता है। यही कारण है कि वह पत्नी की सामान्य भूलों पर भी लाल-पीला हो, उसे खोटी-खरी सुनाता तथा मारता-पीटता रहता है। ऐसा करके वह अपना क्रोध कुछ शान्त भले ही कर ले, पर घर के वातावरण को स्थायी रूप से कभी स्वस्थ, शान्त व प्रसन्न नहीं बना सकता। यही कारण है कि पतियों के क्रोध के कारण प्रायः पत्नियों को आत्महत्या करने पर विवश होना पड़ता है। १९७२ ई० में केवल दिल्ली में पारस्परिक अनबन के कारण ३२ पत्नियों तथा एक पति ने आत्महत्या की। पारिवारिक आत्म-हत्याओं में सास-ससुर का भी पर्याप्त हाथ रहता है। सास-ससुर केवल लड़की के ही दोषी नहीं होते, लड़के के भी होते हैं। १९७२ ई० के आँकड़ों से ज्ञात होता है कि केवल दिल्ली में जहाँ १२ बहुओं ने

अपनी ससुराल से तंग आकर आत्महत्या की, वहाँ २५ दामादों ने सास-ससुर आदि अपनी बहुओं तथा दामादों पर इतने कुपित होते हैं कि ये अत्यन्त दुःखित होकर क्रोध-वश अपना जीवन ही समाप्त कर देते हैं। वस्तुतः इन दुःखद घटनाओं का मुख्य कारण अज्ञान है। हमारे देश में परिणय के पश्चात् पत्नी को पति-गृह में रहना पड़ता है। प्रायः उसी घर में सास-ससुर, ननद-देवर आदि भी रहते हैं। जो स्नेह तथा लाड़-प्यार कन्या को मायके में मिलता था वह ससुराल में मिलना असम्भव है। पुत्री माता-पिता के तन से उत्पन्न होती है, अतः मायके का प्रेम सहज व अतुलनीय होता है। सास, ससुर आदि से उसका कोई रक्त-का सम्बन्ध नहीं होता। इसलिए उनसे उसका वैसे ही स्नेह की आशा रखना भूल है। तो भी कुलीनता, शिष्टता, मानवता आदि के नाते सास, ससुर आदि का पवित्र कर्तव्य है कि वे उनके घर के वातावरण से सर्वथा अपरिचित बहू की बहु-विध भूलों की उदारता से उपेक्षा करें। इसी प्रकार कुलीन, सुशिक्षित तथा समझदार बहू का भी कर्तव्य है कि वह सास-ससुर आदि का यथायोग्य सम्मान करती हुई उन से यथेष्ट स्नेह प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

एक और कारण से भी परिवार में प्रायः खट-पट रहा करती है। वह यह कि माता-पिता प्रायः यह आशा करते हैं कि हमारा पुत्र हम से विवाह के पश्चात् भी वैसा ही स्नेह रखे, जैसा विवाह के पूर्व रखता था, अपनी आय में से उतनी ही सहायता करता रहे, जितनी पहले करता था। हमारे विचारानुसार ऐसी आशा रखना उचित नहीं। यदि विवाह के पश्चात् पुत्र माता-पिता व भाई-बहिनों की सर्वथा उपेक्षा करता है तो वह भी अनुचित है। परन्तु उसके माता पिता को समझना चाहिए कि अब उनके पुत्र को अपने ही परिवार से नहीं, पत्नी के परिवार से भी प्रेम करना है। अब उसे एक ही परिवार का आतिथ्य-सत्कार नहीं करना है, पत्नी के सम्बन्धियों का भी स्वागत-सत्कार करना है। ऐसी स्थिति में पुत्र-द्वारा स्नेह तथा अर्थ के दान में कमी स्वाभाविक ही है और इस पर क्रुद्ध होना अनुचित है।

इसी प्रकार कन्या के माता-पिता को भी स्मरण रखना चाहिए कि उनके दामाद को केवल उनकी कन्या व अपनी सन्तान का ही पालन-पोषण नहीं करना है, अपितु अपने वृद्ध माता-पिता तथा बहिन-भाइयों आदि की भी

यथोचित सहायता करनी है। जो पति-पत्नी केवल आधुनिक विद्यालयों की शिक्षा से ही युक्त नहीं हैं, अपितु धर्म-ग्रन्थों व सत्संगों से भी लाभ उठाते रहते हैं, उनके लिए गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाना कठिन नहीं होता। परन्तु जो सव सम्वन्धियों में यथोचित संतुलन नहीं रख सकते, वे किसी एक ओर अधिक झुक कर दूसरे पक्ष को अपना विरोधी वना लेते हैं। उस खेद और क्रोध का परिणाम यह होता है कि कहीं वहुएँ और कहीं दामाद अपनी ससुराल से दुःखी और क्रुद्ध होकर, अपनी जीवन-लीला अकाल में ही समाप्त कर लोगों के उपहास व करुणा के पात्र वनते हैं।

विवाह सन्तान-प्राप्ति के लिए ही होता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है—"प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सी:" अर्थात् सन्तान का सूत्र मत तोड़ो। परन्त जब विवाह के पश्चात् भी सन्तान उत्पन्न नहीं होती तब क्रोध उत्पन्न होता है। उस क्रोध के अधीन होकर अनेक भोले-भाले लोग अज्ञानी पंडे-पुरोहित के"परामर्श"से, पड़ोसियों की निरीह सन्तान की वलि देवी-देवताओं पर चढ़ा दिया करते हैं कि अपने घर में सन्तान हो जाय। कभी-कभी जव क्रमशः कन्याएँ ही जन्म लेती हैं, वालक नहीं, तव भी कटुता पैदा हो जाती है। कारण कन्याओं से पराये वंश की वृद्धि होती है, अपने वंश की नहीं। अनेक घरों में सन्तान इतनी अधिक हो जाती है कि उनका पालन-पोषण भलीभाँति नहीं हो पाता और पति-पत्नी खिन्न और क्रुद्ध रहते हैं।

सफल गृहस्थी के लिए पर्याप्त धन अनिवार्य है। जिस परिवार में धन की कमी होती है, वहाँ क्रोध की कमी नहीं रहती। वेरोजगारी की दशा में तो अनेक पूरे परिवार ही निराश और क्रुद्ध हो कर आत्म-हत्या कर लेते हैं। जहाँ आय पर्याप्त नहीं होती, और व्यय में विवेक से काम नहीं लिया जाता, वहाँ भी क्रोध के अवसर उपजते ही रहते हैं। घर के कई सदस्य जव असावधानी के कारण कभी नल को खुले रहने देते हैं वा विजली व्यर्थ जलने देते हैं वा पंखे निरर्थक चलने देते हैं, तव गृहपति वा गृहपत्नी का क्रुद्ध होना स्वाभाविक ही है। वाल-वच्चों व अन्य सम्वधियों पर धन का अनुचित व्यय भी पारिवारिक क्रोध का कारण सिद्ध होता है।

स्वयं घर भी अनेक वार क्रोध का कारण वन जाता है। यदि परिवार वड़ा हो और घर छोटा, तो भी प्रायः क्रोध उत्पन्न होता रहता है। जब परि-

सदस्यों को उठने-बैठने, सोने-जागने, पढ़ने-लिखने आदि के लिए पर्याप्त एकान्त स्थान नहीं मिलता, तब अनायास ही खीझ उत्पन्न होती रहती है। जिस घर में प्रत्येक वस्तु का न निश्चित स्थान होता है, और न दैनिक कार्यों का निश्चित समय, वहाँ भी क्रोध प्रायः शान्ति-भंग करता ही रहता है। जहाँ घर साफ़-सुथरा तथा प्रत्येक वस्तु सुनिश्चित स्थान पर रखी जाती है, वहाँ क्रोध के अवसर अपेक्षाकृत कम ही उत्पन्न होते हैं।

## सामाजिक कारण

परिवार के सदस्यों का परस्पर रक्त का सम्बन्ध होता है, अतः वे एक-दूसरे के प्रति स्नेह वा सम्मान प्रदर्शित करने का यत्न करते हैं। वे एक दूसरे की अनुचित वाणी वा चेष्टा को भी कभी-कभी सह जाते हैं ताकि कटुता उत्पन्न न हो, शान्ति बनी ही रहे। परन्तु समाज के लोगों के साथ हमारा वैसा कोई सम्बन्ध नहीं होता। प्रत्येक अपने पुरुषार्थ से कमाता-खाता है, अतः कोई अपने को अ य से छोटा नहीं समझता, भले ही धन, विद्या, गुण आदि की दृष्टि से सब समान न हों। इसलिए परिवार की अपेक्षा समाज में क्रोध के अवसर अधिक सुलभ रहते हैं।

समाज का आरम्भ पड़ोस तथा गली-मुहल्ले से ही हो जाता है। सम्बन्धी तो प्रायः दूर-दूर वा दूसरे नगरों में निवास करते हैं, परन्तु पड़ोसी व गली-मुहल्ले के लोग दिन-रात हमारे समीप ही रहते हैं। अतः सुखी व शान्त जीवन के लिए पड़ोसियों का पारस्परिक प्रेम अनिवार्य है। इस पर भी कई कारणों से सौहार्द्र का स्थान क्रोध ले लेता है; परस्पर बोल-चाल ही बन्द नहीं हो जाती, मार-पीट की भी नौबत आ जाती है। उदाहरणार्थ, बच्चों के झगड़ों से बड़ों में झगड़ा होना, माँगी हुई वस्तु बिना कहे वा समय पर न लौटाना अथवा कुछ तोड़-फोड़-कर लौटाना, हमारे कोलाहल से पड़ोसियों को दुःख, अपने घर का कूड़ा-कर्कट पड़ोसियों के घर के सामने फेंकना वा स्वयं धूएँ से बचने के लिए सुलगती अँगीठी को पड़ोसी के घर के पास रख देना, छोटे-बच्चों का पड़ोसी के घर के पास मल-मूत्र विसर्जन, एक घर की खिड़की आदि का दूसरे घर के आंगन आदि में खुलना, पास-पड़ोस की बहू-बेटियों पर कुदृष्टि आदि।

समाज में जाति-पाति तथा छुआ-छूत की भावना भी क्रोध की जन्म-दात्री है। संयोगवश तथाकथित उच्च जातियों में उत्पन्न व्यक्ति अहंकारवश दूसरों को तुच्छ समझता हैं तथा उन्हें समान नागरिक अधिकार देने पर तैयार नहीं होते। इस से प्रेम का स्थान क्रोध ग्रहण कर लेता है और जातीय दंगों में सैकड़ों लोग के जान-माल की हानि हो जाती है।

समाज में लाखों गुरु होते हैं तथा करोड़ों शिष्य। शिष्यों को सुशिक्षित तथा सुसभ्य बनाना ही गुरु-जनों का प्रमुख कर्तव्य है। जो गुरु-जन इस पवित्र कार्य को प्रेम-पूर्वक करते हैं, वे पितृवत् पूज्य हैं। परन्तु जो स्व-कर्तव्य-पालन में प्रमाद करते हैं; वे शिष्यों के श्रद्धा-पात्र न बनकर उपेक्षा व क्रोध के ही पात्र बनते हैं। परन्तु सब-के-सब शिष्य भी सुशील नहीं होते। अनेक युवक-युवतियों को तो उनकी इच्छा के विपरीत ही शिक्षणालयों में भेजा जाता है। वे कक्षाओं में विलम्ब से आते हैं, सावधानता से पढ़ते-सुनते नहीं, काना-फूसी ही करते रहते हैं; बीच में से उठकर खिसक जाते हैं तथा पुस्तकें लाना अपना अपमान तथा कसूरेशान समझते हैं। ऐसे कुशिष्यों पर गुरुओं को क्रोध आये तो क्या आश्चर्य ! ऐसे अविवेकी विद्यार्थी अध्ययन-काल में भले ही प्रसन्न रह लें, परीक्षा परिणाम घोषित होने पर कभी तो खिन्न और लज्जित होते हैं और कभी क्रोधाधीन हो कर अपना काम ही तमाम कर लेते हैं। संसार की गाड़ी के सम्यक् संचालन के लिए स्त्री भी उतनी ही आवश्यक तथा सम्मान्य है जितना पुरुष; परन्तु दैहिक दुर्बलता के कारण, उसे अक्षम्य पुरुषों के हाथों असह्य वेदनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। वे तो परिस्थितियों की प्रति-कूलता के कारण दुर्जनों के कुसंकेतों, कुवचनों तथा कुचेष्टाओं को प्रायः पी जाती हैं, परन्तु कभी-कभी उनका अपमान समाज के वीर व्यक्तियों में क्रोध को उद्दीप्त कर देता है, जिससे कभी तो दुष्टों को उचित दंड मिल जाता है और कभी-कभी प्रचण्ड दंगों में अनेक निर्दोष लोगों को भी बहुविध हानि उठानी पडती है।

समाज के काम-चोर व्यक्ति खीझ तथा कोध के भारी कारण हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना कार्य प्रसन्न चित्त से तथा पूरी ईमानदारी से करे तो संसार स्वर्ग बन जाय, परन्तु धार्मिक-नैतिक शिक्षा के अभाव के कारण

ऐसा हो नहीं रहा। परिणामतः प्रायः प्रत्येक व्यक्ति चोर-सा बना हुआ है। प्रत्येक की इच्छा यह हो गयी है कि काम कम-से-कम करे और धन अधिक-से-अधिक बटोरे। इससे सभी खीझते और दाँत पीसते ही दिखाई देते हैं, आत्मिक आनन्द का सर्वथा अभाव हो गया है।

सामाजिक क्रोध का एक अन्य प्रमुख कारण अन्याय है। गाड़ी के जिस डिब्बे में ६० व्यक्तियों के बैठने का स्थान है, उस में ३० लेट कर जाना चाहते हैं और शेष को अन्दर घुसने से रोकने का यत्न करते हैं। बस में जिस सीट पर छः व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था है, उस पर यदि पाँच बैठे हों तो छठे का वहाँ स्वागत नहीं करते। जब वह अपना अधिकार जता कर बैठने का उद्योग करता है तो उस पर क्रुद्ध होते हैं। इसी प्रकार जो लोग दूध, टिकट आदि लेने में पंक्ति-भंग करने की निर्लज्जता दिखाते हैं वे भी क्रोध के जन्म-दाता ही हैं।

समाज में कभी-कभी भ्रान्ति से भी क्रोध उत्पन्न हो जाता है जो सर्वथा त्याज्य है। उदाहरणार्थ, अधिक भीड़-भड़क्के वाले स्थलों में दूर से आये हुए धक्के से कोई व्यक्ति गिर जाता है। उठने पर वह पास स्थित व्यक्ति पर बिगड़ कर बुरा-भला कहने लगता है वा हाथ उठा बैठता है। सच पूछिए तो उस के गिरने में उस समीपस्थ व्यक्ति का दोष नहीं होता, इसलिए वह तो क्षम्य ही माना जाएगा।

## आर्थिक कारण

जीवन लिए अर्थ ( धन ) अनिवार्य है। गृहस्थों की तो बात ही क्या; साधु-संन्यासियों का जीवन भी धन के बिना असम्भव हैं। भोजन, वस्त्र, औषध आदि के बिना उनका भी निर्वाह नहीं, और ये वस्तुएँ धन के बिना प्राप्य नहीं। प्रत्येक मनुष्य को आवश्कता-भर धन मिलता जाय और वह उस पर सन्तुष्ट हो जाय, तो क्रोध के अवसर कम ही उत्पन्न होंगे। परन्तु जैसा कि कठोपनिषद् में कहा गया है—'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः' मनुष्य धन से तृप्त नहीं होता। वह लोभ के अधीन होकर असीम संपत्ति के संग्रह की कामना करता है। उसका यह लोभ अनेक प्रकार से क्रोध उत्पन्न करता है। इसी बात को महर्षि वेदव्यास ने यों कहा है—

**लोभात् क्रोधः प्रभवति परदोषैरुदीर्यते।**
**क्षमया तिष्ठते राजन् क्षमया विनिवर्तते।**

( महाभारत, शान्तिपर्व, अ० १६३ )

अर्थात् क्रोध लोभ से तथा पराये दोषों से बढ़ता है। हे राजन्, वह क्षमा से रुक जाता है तथा सर्वथा शान्त भी हो जाता है।

लोभी मनुष्य धन-प्राप्ति के उद्देश्य से प्रत्येक प्रकार का पाप करने को तैयार हो जाता है। कुछ समय पूर्व आगरा के किसी समीपवर्ती गाँव के एक समृद्ध व्यक्ति ने सुना कि समीप ही कहीं एक दिवगंत डाकू का करोड़ों रुपयों का कोष भूमि में गड़ा पड़ा है। उसका पता पाने को, उसने प्रतिदिन एक-एक बकरा देवी को भेंट चढ़ाया। इस पर भी जब मनोरथ-सिद्धि न हुई तो उसने देवी की प्रसन्नता के लिए एक गड़रिये के बालक की बलि दे दी। ऐसे व्यक्ति जहाँ क्रोध में आकर बालकों की बलि देते हैं, वहाँ जनता तथा शासन के कोप-भाजन बनते ही हैं।

'महाभारत' में विदुरजी ने धृतराष्ट्र को वैर का प्रमुख कारण जुआ बताया है—

**द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम।**
**तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्॥**

( उद्योग पर्व, विदुरनीति, ५।१९। )

अर्थात् "इतिहास में देखते हैं कि यह जुआ मनुष्यों में वैर ( क्रोध ) उत्पन्न करता है। इसलिए बुद्धिमान् मानव को हँसी-मजाक में भी जुआ न खेलना चाहिए।" मनुष्य धन-प्राप्ति के लोभ से जुआ खेलता है, परन्तु प्रायः उसका परिणाम क्रोध व युद्ध ही होता है। महाभारत का युद्ध तथा जुएबाजों के लड़ाई-झगड़े इस कथन का स्पष्ट समर्थन करते हैं।

बेरोजगारी भुखमरी की जननी है तो भुखमरी क्रोध व हिंसा की। संस्कृत को प्रसिद्ध उक्ति है—

**बुभुक्षितः किं न करोति पापम्,**
**क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति।**

"भूखा मनुष्य कौन-सा पाप नहीं करता ?
निर्धन जन करुणाहीन हो जाते हैं।"

जो सौभाग्यशाली दिन-भर काम करते हैं, वे रात में सपरिवार सुख से विश्राम चाहते हैं। परन्तु जिन लोगों की आय का कोई निश्चित उपाय नहीं, वे साँझ पड़ते ही बगल में छुरे दबा कर निकल पड़ते हैं और सूने स्थानों पर इक्के-दुक्के को घायल कर घड़ी, नकदी वा गहने छीनकर नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं। इस प्रकान ये दोनों ही वर्ग प्रायः एक दूसरे पर दाँत पीसते रहते हैं।

यह वैर-विरोध निठल्लों और काम-काजी लोगों में ही नहीं चलता, अल्प-धनों और बहु-धनों में भी चलता है। मिल-मालिक, जमींदार आदि बहुत धनी होते हैं और श्रमिक, किसान आदि अल्पधनी। जैसे ज्ञान, बल, कद, रंग, रूप आदि की दृष्टि से सब लोग समान नहीं, वैसे ही धन की दृष्टि से भी भेद पाया जाता है। कुछ लोग धनवानों के घर में उत्पन्न होकर जन्म से तो सुख-सुविधा प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु पश्चात् आलस्य, प्रमाद, दुर्व्यसनों आदि में पड़कर दरिद्र हो जाते हैं। इसी प्रकार कुछ जन निर्धन कुलों में जन्म लेकर अपने उत्साह, परिश्रम आदि से वैभवशाली बन जाते हैं। पिता से समान संपत्ति प्राप्त करने वाले पुत्रों की दशा भी भविष्य में समान नहीं रहती। एक लड़का अपने सद्गुणों से उसी सम्पत्ति को कई गुना बढ़ा लेता है और दूसरा अपने दुर्गुणों के कारण प्राप्त संपदा से भी हाथ धो बैठता है। परन्तु गत शताब्दी से एक विचारधारा यह चली है कि गुण, योग्यता आदि में मनुष्य चाहे समान न भी हों तो भी धन की दृष्टि से तो सब समान होने ही चाहिए। यहाँ तक तो बात युक्ति-युक्त प्रतीत होती है कि प्रत्येक व्यक्ति को योग्यता, रोजगार आदि के समान अवसर मिलने चाहिए, परन्तु क्या प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक काम को अन्यों की सी कुशलता से कर सकेगा, यह प्रश्न विचारास्पद ही है। इस विचार-धारा ने संसार के मानवों को सहयोग नहीं, वैर-विरोध ही सिखाया है, जिसके कारण लाखों लोगों के प्राण गये हैं और भविष्य में भी जाने की सम्भावना है।

जब व्यापारी लोग अपने लोभ पर अंकुश नहीं रख पाते, तब, कुबेर बनने की कामना से, अनैतिक उपायों से ग्राहकों का शोषण आरम्भ कर देते हैं। वस्तुओं में मिलावट, जमाखोरी, चोरबाजारी आदि अनेक निन्दनीय साधनों द्वारा स्वयं समृद्ध तथा ग्राहकों को दरिद्र और रोगी बनाने पर तुल जाते हैं। ऐसी अवस्था में जनता भी क्रुद्ध होकर ऐसे लोगों के विरुद्ध

खड़ी हो जाती है और उन को उचित पाठ पढ़ाने का यत्न करती है। चोर, जेबकतरे, डाकू तथा लुटेरे धन के लोभ तथा आत्मरक्षा के लिए क्रोध की शरण लेते हैं। इन में से प्रथम दो लोभ-वश दूसरे के धन पर हाथ साफ करते हैं, परन्तु जब पकड़े जाने का भय हो तो क्रोध-वश पकड़ने वाले के प्राण-हरण तक के लिए उद्यत हो जाते हैं। डाकू और लुटेरे तो क्रोध तथा हिंसा करने में तनिक भी संकोच नहीं करते। धनी और शासक दोनों को ही इन चारों वर्गों पर क्रोध आता ही रहता है।

धन के समान भवन भी वैर-विरोध का एक कारण बन गये हैं। मकान-मालिक तथा किरायेदार भी परस्पर प्रेम-पूर्वक रहते दिखाई नहीं देते। वैर-विरोध तथा गाली-गलौज तो सामान्य हो गये हैं, और एक के हाथों दूसरे की हत्या भी असाधारण नहीं रही।

धन के कारण अपरिचित लोग ही परस्पर लड़ते-झगड़ते दिखाई नहीं देते, सगे भाइयों, बहिन-भाइयों तथा अन्य समीपी सम्बन्धियों में भी मुकदमे-बाज़ी होती रहती है। जब क्रोध इतने पर भी शान्त नहीं होता, तब कभी लाठियों के वार तथा कभी गोलियों के प्रहार से उसे शान्त करने का उद्योग किया जाता है। कुछ दिन पूर्व यह समाचार पढ़ने में आया कि दिल्ली में दो भाइयों ने अपने पिता के अन्याय-पूर्ण धन-विभाजन से कुपित होकर अपनी बहिन, बहनोई और दो भानजों पर पहले तेजाब डाल दिया और फिर गँड़ासों द्वारा उन्हें मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार चार व्यक्तियों का पूरा परिवार ही घड़ी-भर में क्रोध के कारण मौत का शिकार हो गया।

### राजनीतिक कारण

राजनीति के कारण जितना क्रोध और हिंसा होती है, सम्भवतः अन्य किसी कारण से नहीं। राजनीति का सम्बन्ध अपने देश की सुख-शान्ति से भी है और विदेशों से भी। निःसन्देह सुशिक्षा, धर्म-ग्रन्थ, सदुपदेश आदि साधन लोगों को सज्जन बनाने में सहयोग देते हैं, परन्तु अधिकतर लोग स्वार्थ-सिद्धि के लिए सामाजिक तथा राजनीतिक नियमों का उल्लंघन करते ही रहते हैं।

इसीलिए मनुजी ने कहा है—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥

(मनुस्मृति ७।१८)

"दण्ड समस्त प्रजा पर शासन करता है, दण्ड ही उसकी रक्षा करता है; दण्ड सोते हुए प्रजाजनों में जागता रहता हैं; इसलिए बुद्धिमान् लोग दण्ड को ही धर्म जानते हैं। शासन का सम्बन्ध चोरों, डाकुओं, लुटेरों, जेबकतरों, आदि से ही नहीं पड़ता, उन नियमभंजक सज्जनाभास दुर्जनों से भी पड़ता है, जो भोली-भाली प्रजा को अनेक प्रकार से ठगने में लगे रहते हैं। इसलिए शासक-वर्ग का क्रोध हर प्रकार के नियमभंजकों पर प्रज्वलित ही रहता है। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कई लोभी व प्रमादी राजाधिकारी अपना कर्तव्य-पालन पूर्णतया नहीं करते, जिससे चोर, डाकू आदियों की तो बन आती है और प्रजा-जनों पर आ बनती है। ऐसी स्थिति में प्रजा का क्रोध भड़क उठता है और वे संघटित हो कर क्रान्ति का बिगुल बजा देते हैं। उस क्रोधाग्नि में सहस्रों-लाखों अधिकारियों तथा प्रजा-जनों का भस्मीभूत होना साधारण सी बात है।

प्रजातंत्रीय देशों में अनेक राजनीतिक दल होते हैं, जो सत्तारूढ़ दल से सत्ता हथियाने के लिए सदा सचेष्ट रहते हैं। उनके अनुयायी भी प्रायः एक-दूसरे से वैर-विरोध रखते हैं, जो निर्वाचन के दिनों में मार-पीट के रूप में वा राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियों की हत्या के रूप में फूट पड़ता है। नगर-पालिकाओं, नगर-निगमों, विधायक सभाओं, संसद आदि में भी राजनीतिक विरोधी दल क्रोध में आकर अभद्र गाली-गलौज, कुर्सी-वृष्टि, मुक्केबाजी वा गोली-बारी तक कर दिया करते हैं।

जैसे गली-मुहल्ले के पड़ोसियों तथा एक ही पदार्थ के विक्रेता दो पड़ोसी दुकानदारों में सच्चे-झूठे कारणों से कुछ-न-कुछ खिचाव हो ही जाता है, वैसे ही प्रायः दो पड़ोसी देशों की परस्पर पूर्णतया नहीं पटती। इसी कारण सुप्त-जागृत क्रोध के कुछ-न-कुछ कारण बनते ही रहते हैं तथा दोनों की सेनाएँ सीमाओं के आर-पार सदा सन्नद्ध खड़ी ही रहती हैं। जैसे निर्बल व्यक्ति की निर्बलता ही कभी-कभी सबल के क्रोध का कारण बन जाती है, वैसे ही सबल

देश भी पड़ोसी निर्बल को सताने, लूटने वा हथियाने के लिए क्रोध का कोई-न-कोई कारण खोज ही निकालता है। साम्राज्यवादी देश प्रायः इसी उद्देश्य से निर्बल देशों पर आँख लगाये बैठे रहते हैं और अवसर पाते ही उन्हें दबोच लेते हैं। इस प्रकार अपने पाँव वहाँ पसार कर अपने अधिकार को स्थायी बनाने के लिए सदा सशस्त्र सैनिक तैयार रखते हैं और जब वह उनके चंगुल से मुक्त होने का उद्योग करता है तो जनरल डायर के समान क्रुद्ध होकर अनेक स्थानों पर 'जलियाँवाला बाग' बना डालते हैं। ऐसे पराधीन उपनिवेशों की जनता जब जागृत होती है, तब उस का कोप भी चिरकाल तक गुप्त नहीं रहता और उचित अवसर पाते ही जापान के ज्वालामुखियों के समान फूट कर विदेशी शासकों का सत्ता-नाश कर देता है।

स्मरण रहे कि राजनीतिक क्रोध जल-रेखा के समान शीघ्र लुप्त होने वाला नहीं होता। विभिन्न क्रुद्ध देशों के युद्ध जब आरम्भ हो जाते हैं तो अनेक वर्षों तक चलते ही रहते हैं। संयोग से विज्ञान ने शासकों को ऐटम बम, हाइड्रोजन बम, अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र आदि ऐसे ध्वंसक व मारक यंत्र दे दिये हैं जिनकी चपेट से कुछ ही दिनों में संसार-भर की ईंट-से-ईंट बजाई जा सकती है। पृथ्वी पर मानव के आविर्भाव से लेकर आज तक जितने युद्ध हुए हैं, यदि किसी प्रकार से उनसे होनेवाले नर-संहार व सम्पत्ति-विनाश का लेखा-जोखा लगाया जा सके, तो हमें निश्चय हो जायगा कि धन-जन की जितनी क्षति राजनीतिक क्रोध के कारणों से हुई, उतनी अन्य सभी प्रकार के क्रोध से न हुई होगी।

### धार्मिक कारण

महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन में लिखा है—

**"यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"**

अर्थात् जिस (आचरण) से लोक में उन्नति तथा परलोक में कल्याण हो, वह धर्म है। धर्म के इस लक्षण पर, परलोक को मानने वालों के सिवा, किसी को आक्षेप नहीं हो सकता। जो लोग परलोक में विश्वास नहीं रखते, उनका काम भी उक्त लक्षण में से 'निःश्रेयस (परलोक) को निकाल देने से चल सकता है।

प्रश्न यह होता है कि जब सभी धर्म धैर्य, क्षमा, मन का वशीकरण, चोरी न करना, स्वच्छता इन्द्रिय-निग्रह, विवेक, ज्ञान, सत्य, अक्रोध आदि सद्गुणों के ग्रहण पर सहमत हैं, तो फिर विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में कभी-कभी धार्मिक दंगे क्यों होते हैं और एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों से घृणा क्यों करते हैं। इतना नहीं, यह भी पूछा जा सकता है कि एक ही धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के अनुगामी भी कभी-कभी क्यों लड़ पडते हैं और परस्पर प्रेम-पूर्वक क्यों नहीं रह सकते ?

इन प्रश्नों के उत्तर तीन हैं—

( क ) आचार-विचार की असमानता।

( ख ) अहंकार तथा संकीर्णता।

( ग ) स्वधर्म प्रचार की उमंग।

इन पर संक्षेप से विचार कर लेना उचित होगा।

## आचार-विचार की असमानता

लुप्त धर्मों की चर्चा की यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। जो बारह धर्म विद्यमान हैं, वे ये हैं— १. हिन्दू २. यहूदी ३. शितो ४. जरनुश्ती, ५, दाओ ( ताओ ) ६. जैन ७. बौद्ध ८. कनफ्यूरा ९. ईसाई १०. इस्लाम ११. सिख १२. बहाई। ये सब धर्म एशिया के विभिन्न भागों में तथा विभिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न हुए, अतः इनमें आचार-विचार की सर्वथा समानता की आशा करना भूल है। जो लोग सभी धर्मों को समान कहते हैं, उन से हम सहमत नहीं हैं। परन्तु यह सत्य है कि उन में कुछ बातों में असमानता हुए भी, अनेक आचरण-सम्बन्धी बातों में समानता है।

अब यह देखना चाहिए कि क्रोध व झगड़ों के कारण प्रायः कौन-सी बातें बनती हैं। प्रथम ईश्वर को लीजिए। अधिकतर धर्म ईश्वर-विश्वासी हैं; परन्तु कुछ धर्म ईश्वर में विश्वास नहीं रखते, जैसे जैन और बौद्ध । जो लोग ईश्वर-विश्वासी हैं, वे भी ईश्वर-स्वरूप के विषय में सर्वथा समान विचार नहीं रखते। कोई कहते हैं, ईश्वर निराकार ही है और कोई उसे साकार और निराकार दोनों प्रकार का मानते हैं। जो साकार मानते हैं, उनके मत में ईश्वर मनुष्य वा अन्य जीवों का रूप धारण कर पृथ्वी पर अवतीर्ण होता

है तथा दुष्टों का नाश और धार्मिक जनों की रक्षा करता है। जो उसे निराकार मानते हैं, उनमें भी थोड़ा मत-भेद दिखाई देता है। कोई उसे चतुर्थ आकाश में सिंहासन पर विराजमान मानता हैं, कोई सातवें आकाश में और कोई उसे सर्व-व्यापक मानता है। इसके अतिरिक्त इन ईश्वर-विश्वासियों की पूजा-पद्धति में भी थोड़ा-बहुत भेद है ही। प्रत्येक धर्मानुयायी ईश्वर के अपने माने हुए स्वरूप और पूजा-पद्धति को ही सर्वोत्तम समझता है।

यहूदी, ईसाई, इस्लामादि जो धर्म यह नहीं मानते कि ईश्वर स्वयं मनुष्य आदि का रूप धारण कर धरा-धाम पर पधारतां है, वे प्राय: यह मानते हैं हैं कि वह अपने विशिष्ट व्यक्तियों के द्वारा मानव-कल्याण के लिए पैगाम (सन्देश) भेजता है। ऐसे लोग अवतार नहीं वल्कि पैगम्बर ( संदेशवाहक ) कहलाते हैं। सर्वश्री मूसा, ईसा, मुहम्मद आदि ऐसे ही पैगम्बर माने जाते हैं। जो इन्हें पैगम्वर नहीं मानता, इनकी बातों पर ईमान नहीं लाता, वह उस-उस धर्म का अनुयायी नहीं कहला सकता। पैगम्बरों के सम्बन्ध में एक स्मरणीय वात यह भी है कि प्राय: प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने तथा पूर्ववर्ती पैंगम्वरों को तो पैगम्बर मान लेते हैं, परन्तु परवर्ती पैगम्बरों को अपने धर्म का पैंगम्बर नहीं मानते। तात्पर्य यह है कि पैगम्बरी का सिलसिला अपने ही धर्म के पैगम्वर पर समाप्त कर देते हैं।

फिर भी यह माना जाता है कि प्रभु पवित्रात्मा ऋषि-मुनियों तथा पैगम्बरों के द्वारा लोगों तक अपना ज्ञान भेजता है, ताकि उसके प्रकाश में लोग चलें और धर्म-पथ से भ्रष्ट न हो जायँ। वेद इंजील ( पुराना तथा नया-धर्म-नियम ), कुरान आदि ऐसे ही ईश्वरीय ग्रन्थ माने जाते हैं। प्राय: ऐसा माना जाता है कि इन ग्रन्थों में दिया गया ज्ञान ही प्रभु ने प्रदान नहीं किया, वल्कि इनकी वाणी भी ईश्वर की ही वाणी है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने-अपने ही धर्मग्रन्थ में लिखित बातों को सत्य तथा सर्वोत्तम मानते हैं और अन्य धर्मग्रन्थों में लिखित बातों पर वैसी श्रद्धा नहीं रखते। यह भी भूलना न चाहिए कि सब धर्मग्रंथों की सब बातें सर्वथा समान नहीं हैं। उदाहरणार्थ, वाइबिल, कुरान आदि के अनुसार यह सृष्टि अल्लाह की प्रथम तथा अन्तिम सृष्टि है, परन्तु वेदों के अनुसार वह

र्तार सं॰ार का निर्माण व संहार अनादि काल से करता आया है तथा अनन्त ाल तक करता रहेगा।

आत्मा की सत्ता में प्रायः सभी धर्म विश्वास रखते हैं और परमात्मा ी प्राप्ति करना आत्मा का मुख्य लक्ष्य बताते हैं। परन्तु आत्मा के स्वरूप सम्बन्ध में भी सब के विचार समान नहीं है। कोई उसे परमात्मा का श मानता है तो कोई सर्वथा पृथक्। कोई उसे अनादि मानता है तो कोई ारम्भ वाली। कोई मुक्ति में भी उसे प्रभू से पृथक् रहने वाली बताते हैं ार कोई मोक्ष में उसका ईश्वर में लीन हो जाना ठीक समझते हैं।

पुनर्जन्म के विषय में भी मतभेद है। हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि कुछ धर्म त्मा का अनेक योनियों में जाना स्वीकार करते हैं, परन्तु यहूदी, ईसाई, लामादि धर्म उसका एक ही जन्म मानते हैं। इसी प्रकार मोक्ष, स्वर्ग, दि के विषय में भी कुछ-कुछ मतभेद है।

## ाचार-भेद

इसी प्रकार विभिन्य धर्मों में आचार-सम्बन्धी भेद भी दिखाई देता है। ाहरणार्थ, कोई धर्म एक समय में एक पुरुष को एक ही स्त्री से विवाह ने की इजाजत देता है और कोई धर्म अनेक स्त्रियों से। कोई धर्म तलाक पत्नी-परित्याग) की इजाजत देता है और कोई नहीं। कुछ धर्मों में सभी व-जन्तुओं का मांस खाने की इजाजत है, कुछ में कुछ निश्चित प्राणियों का ा कुछ धर्मों में मांस खाना सर्वथा निषिद्ध है। कुछ धर्मों में कुर्बानी (पशु- ठ) का विधान किया गया है तथा कुछ में निषेध। इस प्रकार सब धर्मों में चार के विषय में भी समानता नहीं है।

## ्कार तथा संकीर्णता

चूँकि विभिन्न धर्म प्रायः विभिन्न देशों, कालों तथा विविध परिस्थितियों उत्पन्न हुए इसलिए वे मुख्य रूप से उस-उस देश, काल व परिस्थिति के ए ही उपयुक्त थे। ये असम्भव नहीं कि प्रत्येक धर्म की कुछ बातें सब देशों र सब कालों के लिए भी उपयोगी हों। परन्तु जो जिस धर्म को मानने ा परिवार में उत्पन्न हो जाता है, उसे प्रायः अपना ही धर्म सर्वश्रेष्ठ प्रतीत ा है, क्योंकि बचपन से ही उस पर अपने धर्म की श्रेष्ठता के संस्कार

जनकों तथा अन्य सम्बन्धियों द्वारा डाले जाते हैं। इस कारण स्वभावत: ही प्रत्येक व्यक्ति में अपने धर्म की श्रेष्ठता के प्रति अनुचित गर्व उत्पन्न हो जाता है तथा दूसरे धर्मों के प्रति द्वेष वा उपेक्षा की भावना जागृत हो उठती है। इस अहंकार व तंगदिली के कारण भी अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति प्रीति का अभाव वा कमी हो जाती हैं तथा विधर्मियों के प्रति क्रोध शीघ्र ही उत्पन्न हो जाता है।

## ( ग ) स्व-धर्म-प्रचार की उमंग

जब लोगों को यह निश्चय करा दिया जाता है कि हमारा धर्म संसार का सर्वश्रेष्ठ धर्म है, उसे माने बिना संसार का लोक-परलोक में कल्याण नहीं तथा स्व-धर्म-प्रचार पुण्य कार्य है, तब उत्साही लोग स्व-स्व धर्म-प्रचार के लिए जोर-शोर से तैयार हो जाते हैं। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वे अपने धर्म के गुणों तथ। अन्य धर्मों के दोषों को प्रत्येक साधन से प्रचारित करते हैं तथा अपने धर्म के दोष व पराये धर्मों के गुण बड़ी सावधानी से छिपाते हैं। इस प्रकार विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में दूसरे धर्म के अनु-यायियों के प्रति उपेक्षा, द्वेष वा क्रोध का भाव जागृत हो जाता है, जो विशेष अवसरों पर, किसी निर्धनी द्वारा सामान्य-सी भी भूल हो जाने पर, भयंकर ज्वाला-मुखी का रूप धारण कर अपार धन-जन के सहार का कारण बन जाता है।

कभी-कभी किसी धर्म के कुछ चतुर स्वार्थी लोग भी, अपना कोई विशेष उद्देश्य सिद्ध करने के लिए, एक धर्म के अनुगामियों को विधर्मियों के प्रति उत्तेजित कर देते हैं। ऐसा प्राय: आर्थिक वा राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। ऐसे समय में 'धर्म संकट में' इत्यादि नारे बहुत जोर से लगाये जाते हैं, ताकि धर्म के नाम पर लोगों को क्रोधित कर, दंगे-फ़साद करवा, अपना उल्लू सीधा किया जा सके। ऐसा क्रोध पंचायतों, नगरपालिकाओं, विधायिकाओं तथा संसद के निर्वाचनों के समय प्राय: सर्वत्र सहज ही देखा जा सकता है। इस प्रकार धर्म का आश्रय ले कर अनेक कारणों से क्रोध जागृत कर दिया जाता है।

## मिश्रित कारण

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त अन्य अनेक बातों से भी क्रोध उत्पन्न होता है जैसे—देश, काल, रंग, भाषा आदि।

## देश

स्व-देश सामान्य भी हो तो भी निरन्तर निवास के कारण उसके प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है। परिणामतः प्रायः विदेशों के प्रति वैसा प्रेम नहीं होता। परन्तु किसी के सम्मुख उसके देश की निन्दा करेंगे तो वह झट तमतमा उठेगा। इसी प्रकार हम भी, जब कोई हमारे देश को बुरा-भला कहता है, गरम हो उठते हैं। प्रत्येक देश के अन्तर्गत अनेक प्रान्त होते हैं। उपर्युक्त कारण से ही प्रत्येक प्रान्त का निवासी अपने प्रान्त से विशेष प्रेम रखता है। जब किसी अन्य प्रान्त का निवासी हमारे संमुख हमारे प्रान्त के दोष दिखाने लगता है, तो भी हम लाल-पीले हो जाते हैं। इसी प्रकार हमारे देश, प्रान्त आदि से सम्बन्धित व्यक्तियों व वस्तुओं पर आक्षेप करने वाला भी हमारे क्रोध का पात्र बन जाता है।

## काल

मनुष्य कुछ ही वर्षों तक जगत् में जीवित रहता है और अनुभव करता है कि समय ही मेरा जीवन है। इसलिए यदि कोई अन्य व्यक्ति अपने प्रमाद से वा जान-बूझकर कोई ऐसा कार्य करता है, जिससे इसका समय नष्ट हो तो वह स्वभावतः उस पर क्रुद्ध हो उठता है। समय पर गहने न बनाने वाले सुनार, वस्त्र न सीने वाले दर्जी, समय पर न पहुँचने वाले बैंड तथा बरातें आदि इस कारण हमारे कोप वा खीझ का कारण बनती हैं। हमारे देश का इतिहास, हिन्दू-काल, मुस्लिम-काल, ब्रिटिश काल आदि में विभाजित किया गया है। यदि कोई व्यक्ति हिन्दू-काल के दोष दिखाने लगे तो हिन्दू को क्रोध आ जाता है। इसी प्रकार मुसलमानों व अंग्रेजों को भी।

## रंग

पृथ्वी के अनेक देशों के वासियों के रंग-रूप आदि में, जलवायु के भेद के कारण पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। कोई सांवले हैं तो कोई काले, कोई पीले तो कोई गोरे आदि। यद्यपि इस रंग-भेद के कारण कोई राग-द्वेष न होना

चाहिए, तो भी देखा जाता है कि कहीं-कहीं एक रंग के लोग दूसरे रंग वालों से द्वेष रखते हैं।

## भाषा

संसार में सैकड़ों भाषाएँ बोली जाती हैं। बड़े देशों में भी प्रान्तानुसार अनेक भाषाओं का व्यवहार होता है। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रान्त की भाषा का ही प्रयोग करता है और उससे उसका प्रेम भी हो जाता है। यद्यपि अनेक भाषाओं के ज्ञान से मनुष्य परस्पर समीप आते हैं, तथापि यह देखा जाता है कि यदि एक प्रान्त वालों को अन्य प्रान्त की भाषा सीखने पर विवश किया जाय तो वे कुपित हो दंगे–फसाद तक कर देते हैं।

## इतर प्राणी

यद्यपि मनुष्य अपनी जिह्वा के रस तथा पेट की पूर्ति के लिए आये दिन असंख्य प्राणियों के प्राण लेता है, तथापि कुछ प्राणियों से, विशेष कारणों से, उसका स्नेह हो जाता है। जब कोई अन्य मनुष्य उसके दया-पात्र प्राणी की हत्या करता है, तब वह उस मनुष्य तथा उसके सजातीयों को स्व-कोप का लक्ष्य बना डालता है। इसीलिए विशेष प्रदेशों में गौ, बन्दर, मोर आदि पशु-पक्षियों की हत्या निषिद्ध कर दी जाती है। आलसी व अड़ियल गधे, घोड़े आदि पालतू पशु भी मनुष्य के कोपभाजन बनते हैं और उन्हें रखने वाले लोग उन्हें गालियाँ देते तथा कोड़े मारते देखे जाते हैं।

## वाद्य

अनेक प्रकार के बाजों के विशेष स्वर भी मनुष्य में क्रोध को जन्म देते हैं। जब क्सेनोफेंटस मुरली की धुन बजाता था, तब महान् सिकन्दर का हाथ शस्त्र उठाने को उतावला हो उठता था। वीर योद्धा ढोल आदि की आवाज सुनकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। आज भी सैनिकों में युद्धोन्माद उत्पन्न करने के लिए बैंड-बाजा सेना के साथ रहता है।

इस प्रकार क्रोधोत्पादक कारणों का कोई अन्त नहीं है, न जाने कौन-सी स्थिति कब किसके क्रोध का कारण बन जाय। यहाँ तो उदाहरण के लिए ही कुछ कारण दिखा दिये गये हैं।

पञ्चम अध्याय

# महापुरुषों आदि में क्रोध

प्राय: यह समझा जाता है कि सामान्य मनुष्य तो काम-क्रोधादि के वश हो जाते हैं, परन्तु महापुरुष, ऋषि-मुनि, देवता आदि उन से सर्वथा शून्य, शान्त व गम्भीर होते हैं, कोई कुछ भी कहता रहे, कुछ भी करता रहे, उन्हें क्रोध नहीं आता। हम इस मत से सहमत नहीं हैं। हमारा विचार है कि महापुरुषों, ऋषि-मुनियों, पीर-पैगम्बरों, देवी-देवताओं आदि को भी परिस्थितिवश क्रोध आ ही जाता है। गत अध्याय में हम सामान्य मनुष्यों के क्रोध के कारणों पर कुछ प्रकाश डाल चुके हैं। प्रस्तुत अध्याय में देश-विदेश के महापुरुषों के क्रोध का विवेचन किया जायगा ताकि हम यह जान सकें कि उन्होंने किन-किन परिस्थितियों में क्रोध किया।

'रामायण' तथा 'महाभारत' भारत के प्राण हैं। इन वीरकाव्यों में प्रतिपादित शिक्षाएँ पग-पग पर हमारा पथ-प्रदर्शन करती हैं, गड्ढों में गिरने से बचाती हैं, श्रेयस्कर मार्गों पर चलाती हैं। पहले इन्हीं के प्रमुख पात्रों पर दृष्टि डाली जाय।

## वाल्मीकि का क्रोध

'रामायण' की रचना महाभारत से पहले हुई, इसलिए पहले उसी पर विचार करना उचित होगा। सर्वप्रथम 'रामायण' के रचयिता आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के वृत्त पर ही विचार कीजिये। वाल्मीकि पहले क्या थे? एक डाकू–क्रोध की मूर्ति, हिंसा के अवतार, साकार यमराज। उन्हें दूसरों की सम्पत्ति छीन कर संतोष होता था और प्राणहरण कर हर्ष। परन्तु कुछ पथिक महात्माओं की अल्पकालीन सुसंगति से उनमें ऐसा आश्चर्यजनक परिवर्तन आया कि वे दस्यु से महर्षि बन गये। मानवों का हत्यारा पक्षियों तक का प्रेमी बन गया। जब एक व्याध ने आकाश में उड़ते हुए प्रेमी क्रौंच युगल पर बाण चलाया, तब बाण–विद्ध क्रौंच तो चल बसा और क्रौंची चीं-

चीं कर उठी। यह दारुण दृश्य देख वाल्मीकि का हृदय विदीर्ण हो गया और उनके मुख से अनायास ही व्याध के प्रति यह शाप निकल गया —

**मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।**
**यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥**

( वाल्मीकि रामायण, १।२।१५ )

"हे व्याध, निषाद, चूँकि तुम ने प्रेम-मग्न क्रौञ्चयुगल में से एक का वध कर दिया है, इसलिए तुम्हें त्रिकाल में भी प्रतिष्ठा प्राप्त न हो।" वे क्रौंच महर्षि के प्रिय पालतू पक्षी न थे, तो भी महर्षि क्रोध-वश व्याध को शाप दे बैठे। कारण, सज्जन अपनी व सगे-सम्बन्धियों की ही क्षति पर क्रुद्ध नहीं होते, निर्दोष प्राणि-मात्र पर भी अत्याचार देखकर कुपित हो उठते हैं।

## राम का क्रोध

अब रामायण के प्रमुख पात्र श्रीराम के चरित पर दृष्टि-पात कीजिए। रामायण के अध्ययन से विदित होता कि श्रीराम धीर, गम्भीर, सहिष्णु, त्यागी तथा शान्त व्यक्ति थे, तनिक सी बात पर तुनक उठने वाले क्षत्रिय नहीं। इस पर भी जब उन्होंने देखा कि राक्षस, विश्वामित्र आदि ऋषियों के मना करने पर भी परोपकारमय यज्ञों में विघ्न डालने से बाज नहीं आते, तब उन्होंने कुपित होकर—

**तामापतन्तीं वेगेन विक्रान्तामशनीमिव।**
**शरेणोरसि विव्याध सा पपात ममार च ॥**

( वा० रा०, १।२६।२५।-६ )

''बिजली की तरह तेजी से टूट कर आक्रमण करती हुई उस ताड़का की छाती को तीर से छेद डाला जिससे गिरते ही वह मर गई।" वाल्मीकि लिखते हैं कि इसी प्रकार कुपित राम ने ताड़का के सहायक सुबाहु आदि राक्षसों का भी काम तमाम कर डाला। कहना न होगा कि यहाँ पर राम ने प्रजा के धार्मिक कृत्यों की रक्षा के उद्देश्य से क्रूर राक्षसों को स्व-क्रोध का लक्ष्य बनाया।

## परशुराम पर क्रोध

तत्पश्चात् श्रीराम ने मिथिला में जा; शिवजी का भारी-भरकम धनुष-भंग कर सीता को स्वार्द्धांगिनी बनाया। वे वापसी पर अभी मार्ग में ही थे कि

क्रोधावतार परशुराम कन्धे पर कुल्हाड़ा धारण किये आ धमके। उनके क्रोध का कारण था यह कि राम ने उनके श्रद्धेय इष्टदेव शिवजी का शरासन तोड़ डाला था और इस प्रकार उनका अपमान किया था। सोचा जाय तो राम इस विषय में निर्दोष थे। उन्होंने धनुष तोड़ा राजा जनक की प्रेरणा से, महर्षि विश्वामित्र की इजाज़त से। उन्होंने परशुराम को, ब्राह्मण होने के नाते मान्य मानकर अनुनय-विनय से ही शान्त करने का उद्योग किया; परन्तु परशुराम का क्रोध बढ़ता ही गया, पारा चढ़ता ही गया। उन्होंने राम का तिरस्कार करते हुए कहा कि यदि तू वस्तुतः वीर है तो मेरे वैष्णव धनुष का चिल्ला चढ़ा। इस पर विनम्र राम में भी आत्म-संमान की भावना जग उठी और वे बोले—

**वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव।**
**अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम्॥**
**इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य शरासनम्।**
**शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः॥**

(वा० रा०, १।७६।३-४)

"हे भृगुनन्दन, तू मुझे निर्वीर्य, अशक्त तथा क्षात्रधर्म से शून्य समझकर मेरा अपमान कर रहा है। ले, आज मेरा पराक्रम देख। यह कहकर क्रुद्ध राम ने क्षणभर में उस के धनुष पर चिल्ला चढ़ा दिया।"

श्रीराम की अपूर्व वीरता देखकर परशुराम का क्रोध हवा हो गया। वे सिर झुका, पीठ दिखा, महेन्द्र-पर्वत पर तप करने चल दिये। हमें तो यहाँ इतना ही समझना है कि स्व-इष्टदेव के तथा अपने अपमान से महापुरुषों में भी सहज ही क्रोध उत्पन्न हो जाता है।

## शूर्पणखा पर क्रोध

तत्पश्चात् श्रीराम माता-पिता की आज्ञा मान चौदह वर्षों के लिए वन में चले गये। वे वनवास के अन्तिम वर्ष में दंडकवन में एक दिन पर्णकुटीर में विराजमान थे कि राक्षसराज रावण की युवती कुमारी बहिन वन-विहार करती वहाँ आ पहुँची। राम आदि तीनों का परिचय पा और अपना परिचय दे, उसने राम से विवाह का प्रस्ताव किया। राम के साथ सीता थी हीं, इसलिए

उन्होंने इसे लक्ष्मण के पास भेज दिया लक्ष्मण इसकी बात सुनकर बोले—"स्वामी को छोड़, सेवक की स्त्री बनकर तुम्हें सुख कहाँ मिलेगा ? इसलिए श्रीराम से ही कहो, तुम्हें छोटी पत्नी बना लें। लक्ष्मण की बात सत्य समझकर वह राम के पास पहुँची। सीता को उनके समीप देख समझ गई कि मेरे मार्ग का काँटा यही है। इसलिए वह राम से बोली—

**अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम्।**
**त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम्॥**
**इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलात सदृशेक्षणा।**
**अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव॥**

( वा० रा०, अरण्य०, १८।१३-१७ )

"आज मैं आप के सामने ही इस मनुष्य-जातीय सीता को हड़प कर जाऊँगी और आप के साथ, सौत-रहित हो कर सुख से वन में विहार करूँगी। यह कह कर अंगार-तुल्य नेत्रों वाली अतिकुपित शूर्पणखा मृगनयनी जानकी पर ऐसे झपटी जैसे कोई बड़ा दुमदार तारा रोहिणी पर।" पत्नी पर इस विकट संकट को देखकर राम ने कुपित हो कर लक्ष्मण से कहा कि इस रूपगर्विता मदमत्त नारी को विरूप बना दो।

**इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः।**
**उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः॥**

( वा० रा०, अरण्य, १८।२१ )

"भाई का उक्त आदेश पाकर क्रुद्ध बली लक्ष्मण ने राम के सामने ही तलवार निकालकर उसके नाक-कान काट डाले।"

स्पष्ट है कि इस प्रसंग में शूर्पणखा को सीता पर कोध इस कारण आया कि वही उसकी कामपूर्ति के पथ का काँटा थी और राम-लक्ष्मण को शूर्पणखा पर इसलिए कि वह उनकी आत्मीय के प्राण लेने पर उद्यत हो गई थी। कई लोग कहा करते हैं कि राम-लक्ष्मण का यह कार्य आर्योचित नहीं था, परन्तु वे भूल जाते हैं कि प्राणलेवा के प्राण लेना कोई अपराध नहीं। यह तो उनकी उदारता ही समझिये कि उसका अंगच्छेद किया, ऐसी आततायिनियों का तो

प्राण-विच्छेद भी प्रशंसनीय कहा जा सकता है। शूर्पणखा का क्रोध देखकर भगवद्गीता के ये शब्द सहज ही स्मरण आ जाते हैं—

**संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ।**

( गोता, २।६२ )

"लगाव से काम उत्पन्न होता है और काम ( के अतृप्त रहने ) से क्रोध ।"

## सुग्रीव पर क्रोध

परिस्थितियों की समानता से राम तथा सुग्रीव सखा बन गये। राम माता-पिता के आदेश से वनवासी हुए थे, सुग्रीव भाई ( बालि ) के भय से। सीता को रावण ने बन्दी बना लिया था, सुग्रीव-पत्नी को बालि ने। दोनों ने परस्पर सहायता की प्रतिज्ञा की। राम ने प्रतिज्ञा पूरी की—बालि का वध कर सुग्रीव को सिंहासन पर आसीन कर दिया। राज्य तथा रमणी के सुख प्राप्त कर सुग्रीव सखा की सहायता करना भूल ही गया। इस पर राम ने कहा—

**उच्यतां गच्छ सुग्रीवस्त्वया वत्स महाबल ।**
**मम रोषस्य यद्रूपं ब्रूयाश्चैनमिदं वचः ॥**
**न च संकुचितः पन्था येन बाली हतो गतः ।**
**समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः ॥**

( वा० रा०, किष्किन्धा०, ३०।८१–२ )

"हे महाबली प्रिय लक्ष्मण, जाओ और सुग्रीव को मेरे रोष का रूप समझा दो। उसे मेरी ओर से कह देना कि मेरे द्वारा मारा हुआ बालि जिस मार्ग से परलोक गया है, वह मार्ग तंग नहीं है ( तुम भी उस पर भेजे जा सकते हो )। इसलिए प्रतिज्ञा का पालन करो, बालि का अनुगमन मत करो।"

कहना न होगा कि यहाँ सुग्रीव की कृतघ्नता राम के कोप का कारण बनी।

## समुद्र पर क्रोध

राम का संदेश सुन सुग्रीव सचेत हो गया। उसके आदेश से सीता की खोज हुई। हनुमान ने आकर खबर दी कि शोक-मग्न सीता अशोकवाटिका

में बन्दी के रूप में बिसूर रही हैं। श्रीराम दल-बल-सहित सागर तीर पर जा पहुँचे। तीन दिन तक नियमपूर्वक उसका पूजन किया परन्तु वह टस-से-मस न हुआ। इस पर राम लक्ष्मण से बोले—ससार शान्तिप्रिय, क्षमाशील, सरल तथा प्रियवादी व्यक्ति का तिरस्कार करता है तथा आत्मप्रशंसक, दुष्ट, ढीठ और दंडधारी का सत्कार—

**एवमुक्त्वा धनुष्पाणिः क्रोधविस्फारितेक्षणः।**
**बभूव रामो दुर्धर्षो युगान्ताग्निरिव ज्वलन्॥**
**संपीड्य च धनुर्घोरं कम्पयित्वा शनैर्जगत्।**
**मुमोच विशिखान् उग्रान् वज्रानिव शतक्रतुः॥**

(वा० रा०, युद्ध, २१।२५-६)

"यह कहकर राम ने धनुष उठाया। उनके नेत्र क्रोध से फैल गये और वे प्रलयकाल की अग्नि के समान असह्य हो उठे। उनके धनुष की घोर टंकार से संसार थर्रा उठा। उन्होंने ऐसे उग्र बाण चलाये जैसे कि इन्द्र स्ववज्र-प्रहार करता है।" परिणाम यथेष्ट निकला, समुद्र योजन-भर दूर खिसक गया। सार यह कि दुष्ट जब अनुनय-विनय से नहीं मानते तब श्रेष्ठों को क्रुद्ध होना ही पड़ता है।

## रावण पर क्रोध

वैसे तो युद्ध में योद्धाओं का क्रुद्ध होना स्वाभाविक ही है, परन्तु वहाँ भी जब किसी समीपी सम्बन्धी के प्राणों पर आ बनती है तब वह क्रोध उग्रतर हो उठता है। लंका के युद्ध में एक बार रावण ने ऐसी अमोघ शक्ति चलाई कि लक्ष्मण-सा विलक्षण वीर भी धरा पर गिर कर मूर्छित हो गया। यह दृश्य देख श्रीराम—

**स मुहूर्तमनुध्याय बाष्पव्याकुललोचनः।**
**बभूव संरब्धतरो युगान्त इव पावकः॥**

(वा० रा०, युद्ध०, १०१।३८)

"थोड़ी देर के लिए तो वे स्तब्ध से रह गये और उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। परन्तु शीघ्र ही क्रुद्ध होकर प्रलयकालीन अग्नि के समान दीख पड़ने लगे।"

सो सिद्ध है कि निकट सम्बन्धी पर पड़ी हुई विकट विपत्ति शान्त व्यक्ति को क्रुद्ध तथा क्रुद्ध को पावक-सा प्रचंड बना देती है ।

## लक्ष्मण का क्रोध

अब राम के भाइयों के क्रोध पर भी कुछ विचार कर लिया जाय । कैकेयी के अनुरोध पर तथा प्रतिज्ञा-भंग के भय से दशरथ को राम-वनवास की स्वीकृति देनी पड़ी । वह वंश-परम्परा यह थी कि राज्य का उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र ही होता है । किन्तु यदि बड़ा बेटा अयोग्य, अपग आदि हो तो छोटी संतान को भी राजा बनाया जा सकता है । यहाँ राम ज्येष्ठ भी थे, सुयोग्य भी थे और सुलक्षण भी । उन्हें राज्य से वंचित कर वनवास देना न्याय की नैया को मझदार में मग्न करना था, एक न्याय परम्परा के मूल पर कुठाराघात करना था । यदि राम पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर वन-वास अस्वीकार कर, राज्य पर अपना अधिकार कर लेते, तो भी उन्हें कोई दोष न दे सकता था । परन्तु उन्होंने वैसा नहीं किया । पिता की प्रतिष्ठा रखने के लिए उन्होंने राज्य-सुखों पर लात मारी और वन-दुःखों का आलिगन किया । लक्ष्मण यह अन्याय सहन न कर सके —

**तदा तु बद्ध्वा भ्रुकुटीं भ्रुवोर्मध्ये नरर्षभः ।**
**निशश्वास महासर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥**
**तस्य दुष्प्रतिवीक्षं तद्भ्रुकुटीसहितं तदा ।**
**बभौ क्रुद्धस्य सिंहस्य मुखस्य सदृशं मुखम् ॥**

( वा० रा०, अयोध्या, २३।२–३ )

"तब उस श्रेष्ठ नर (लक्ष्मण) के माथे पर बल पड़ गये । वह बिल में स्थित छेड़े हुए महासर्प के समान फुंकारने लगा । उसका तेवर-युक्त मुख उस समय ऐसा लगता था जैसे कुपित सिंह का मुख हो ।"

न लक्ष्मण राज्य से रहित किये गये थे, न वन में धकेले गये थे । परन्तु श्रद्धेय आत्मीय जन पर अन्याय क्रोध का कारण बनता ही है ।

## भरत का क्रोध

अब ज़रा भरत के चरित्र पर दृष्टि-पात कीजिये । वे साधारण राजकुमार होते तो हर्ष से ही भू-सुखों में रत हो जाते, कैकेयी के कृतज्ञ होते तथा

मन्थरा को माला-माल कर देते। परन्तु ननिहाल से लौटने पर जब उन्हें जान पड़ा कि मुझे राजा बनाने के लिए पिता को परलोकवास दिया गया है और भाई को वनवास, तब वे पतिघातिनी तथा पुत्र-निष्कासिनी निज जननी कैकेयी पर बुरी तरह बरसे—

**न त्वमश्वपतेः कन्या धर्मराजस्य धीमतः।**
**राक्षसी तत्र जातासि कुल प्रध्वंसिनी पितुः॥**
**कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता।**
**अङ्गारमुपगूह्य त्वां पिता मे नावबुद्धवान्॥**

( वा० रा०, अयोध्या-सर्ग ७३-४ )

"तू धीमान् धर्मराज राजा अश्वपति की पुत्री नहीं है। तू वहाँ पिता का वंश नाश करने वाली राक्षसी उत्पन्न हुई है। तू तो हमारे कुल के नाश के लिए प्रलय-रात्रि के समान आई है। मेरे पिताजी को पता नहीं चला कि वे एक अंगारी का आलिंगन कर रहे हैं। इस वंश का विनाश करके तू गर्भहत्या के पाप से लिप्त हो गई है। हे कैकेयी, तुझे परलोक में पति-लोक प्राप्त न हो, तुझे नरक में ही निवास नसीब हो।"

## शत्रुघ्न का क्रोध

जब सेवक समस्त अनर्थ की मूल मन्थरा को पकड़ कर शत्रुघ्न के पास ले आये, तब उन्हें इतना क्रोध आया कि उन के नेत्र ताँबे की तरह लाल हो गये। उन्होंने उसकी भर्त्सना ही नहीं की, उसे भूमि पर घसीटा भी। वे तो उसके प्राण ही निकाल लेते परन्तु भरत बोले—"यदि स्त्रियाँ अवध्य न होतीं और धार्मिक भाई राम की अप्रसन्नता का भय न होता, तो मैं इस दुष्ट पापिन कैकेयी तथा मन्थरा, दोनों को ही दुनिया से दफा कर देता।" यहाँ पर भरत तथा शत्रुघ्न के क्रोध का कारण वह अन्याय है, जो उनके श्रद्धेय सम्बन्धियों पर एक सम्बन्धी तथा सेविका द्वारा किया गया था।

## सीता का लक्ष्मण पर क्रोध

लक्ष्मण सीता को मातृवत् मानते थे और राम को पितृवत्। वे उनकी सेवा के लिए ही अपूर्व त्याग कर उनके साथ वन में गये थे। परन्तु परि-

स्थिति की विडम्बना देखिये कि उन्हीं लक्ष्मण को सीता ने क्रोध-वश ऐसी जली-कटी सुनाई कि लक्ष्मण को भी जल-भुन कर तथा क्रोधाधीन हो कर सीता को कटु शब्द कहने पड़े। बात यों हुई कि निज बहिन शूर्पणखा के अपमान का बदला लेने के लिए रावण ने सीता-हरण की योजना बनाई। मारीच सुवर्ण-हरिण का रूप धारण कर पर्णकुटी के पास विचरण करने लगा। पत्नी की प्रेरणा से राम उसे पकड़ने को दौड़े। पकड़ने में विफल रहने पर राम ने उसे बाण से विद्ध कर दिया। प्राण-त्याग से पूर्व वह राम की-सी ध्वनि में 'हे सीता, हे लक्ष्मण! कहकर चिल्लाया। ये शब्द सुन सीता धोखा गईं। पति पर विपत्ति जान अति विकल हो गई। उन्होंने लक्ष्मण को तुरन्त भाई की सहायता के लिए जाने को कहा। लक्ष्मण ने विजन वन में उन्हें अकेली छोड़कर जाना उचित न जाना। सीता को अपनी जान की उतनी परवाह न थी जितनी राम के प्राण की।

**तमुवाच ततस्तत्र कुपिता जनकात्मजा।**
**सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्॥**
**यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपत्स्यते।**
**इच्छसि त्वं विनश्यन्तं राम लक्ष्मण मत्कृते॥**

(वा० रा०, अरण्य० ४५।५—६)

तब गुस्से की मारी जनकदुलारी लक्ष्मण से बोली—"हे सुमित्रा के पुत्र, तू ऊपर से तो मित्र बना हुआ है परन्तु है वस्तुतः शत्रुः क्योंकि तू ऐसी अवस्था में भी राम की सहायता के लिए नहीं जाता है। हे लक्ष्मण, तेरी लालसा यह है कि राम नष्ट हो जायँ और तू मुझे प्राप्त कर ले।"

जिन लक्ष्मण की आँखें सदा सीता के चरणों पर ही झुकी रहती थीं; उन्हीं के चरित्र पर की गई इस चण्ड चोट ने लक्ष्मण का कलेजा कचोट लिया। निर्दोष पर दोष लगाना उसके दिल को दो-टूक करने से कम नहीं होता। सीता के वचन-बाणों से विद्ध होकर लक्ष्मण क्रुद्ध होकर बोले—

**विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा भेदकराः स्त्रियः।**
**न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे॥**
**न्यायवादी यथान्यायमुक्तोऽहं परुषं त्वया।**
**धिक् त्वामद्य प्रणश्य त्वं यन्मामेवं विशंवसे॥**

(वा० रा०, अरण्य ४५।३०—२)

"हे विदेहराजपुत्री जानकी, स्त्रियाँ धर्मविमुख, चंचल, तीक्ष्ण और फूट डालने वाली होती हैं। जो कठोर शब्द तूने मुझे कहे हैं, उन्हें मैं नहीं सह सकता हूँ। तू मुझ पर ऐसा सन्देह करती है, इसलिऐ तुझे धिक्कार है, तेरा नाश हो जाय।" इस घटना से सिद्ध होता है कि मनुष्य सीता के समान, भ्रम-वश अपने निर्दोष निकट सम्बन्धी पर भी क्रोध करने लगता है और तव वह निकट सम्बन्धी भी मिथ्या-दूषक पर क्रोध करने को विवश हो जाता है।

**सीता का रावण पर क्रोध**

जहाँ कामुक पुरुष को सती-साध्वी स्त्री पर इस कारण क्रोध आता है कि वह पातिव्रत का परित्याग कर मेरी मनःकामना क्यों पूर्ण नहीं करती, वहाँ पतिव्रता को व्यभिचारी पर इसलिए कि यह दुराचारी मेरे धर्म को नष्ट करने पर क्यों उद्यत है। 'रामायण' में, जब रावण सीता को अनुनय-विनय से स्व-वश करने में सफल न हो सका तब—

**एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः।**
**क्रोधसंरभसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत्॥**
**काम्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।**
**मम त्वां प्रातराशार्थमालभन्ते महानस॥**

(वा० रा०, सुन्दर० २२।७-९)

वह राक्षसराज क्रोध से लाल-पीला होकर बोला—"यदि तू दो मास मे मुझे अपना पति न मान लेगी तो मेरे रसोइये पाकशाला में तुझे काटकर मेरे लिए कलेवा प्रस्तुत कर देंगे।"

साधारण स्त्री होती तो इस प्रबल धमकी से कदली-दल की तरह काँप उठती, परन्तु वह वैसे ही अचल रहीं जैसे हवा में हिमाचल। स्वयं भीत त्रस्त होना तो दूर, उलटा उसने क्रुद्ध होकर रावण को ही इन शब्दों में फटकार दिया—

**इमे ते नयने क्रूरे विरूपे कृष्णपिंगले।**
**क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः॥**
**तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च।**
**कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा व्यवशीर्यते॥**

(वा० रा०, सुन्दर० २०।१८-९)

"हे अनार्य, मुझे ( कुदृष्टि से ) देखने वाले ये तेरे क्रूर, कुरूप तथा काले-तामड़े नेत्र भूमि पर क्यों नहीं गिर पड़ते ? मुझे धर्मात्मा राम की पत्नी तथा दशरथ की बहू को ऐसे शब्द कहते हुए तेरी जीभ क्यों नहीं सड़ जाती ?

### जटायु का क्रोध

इस प्रकार की सती स्त्री पर जब कोई बलात्कार करने का विचार करता है, तब निर्बल और वृद्ध व्यक्ति भी क्रुद्ध हुए बिना रह नहीं सकता। जब रावण सीता का अपहरण कर जंगल में से जा रहा था तब सीता की चीख-पुकार से सुप्त जटायु जाग उठा। उसने रावण को इस पाप-कर्म से रोका परन्तु उसके कानों पर जूँ तक न रेंगी। तब जटायु कुपित होकर बोला—

**वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सशरः कवची रथी।**
**तथाप्यादाय वैदेहीं कुशली न गमिष्यसि॥**
**युध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण।**
**शयिष्यसे हतो भूमौ यथापूर्वं खरस्तथा॥**

( वा० रा०, अरण्य० ५०।२१, २३ )

मैं बूढ़ा तू जवान; तेरे पास धनुष, बाण, कवच और रथ। तो भी ( मेरे रहते ) सीता को लेकर तू सकुशल न जा सकेगा। यदि तू वीर है तो तनिक रुक कर मुझसे युद्ध कर। जैसे पहले ( राम के हाथों ) खर मर गया था, वैसे ही तू ( मेरे हाथों ) मरकर रणांगन में शयन करेगा।" वृद्ध जटायु ने डटकर युद्ध किया। जहाँ वह स्वयं अतीव घायल हुआ, वहाँ उसने रावण को भी क्षत-विक्षत कर ही दिया। कुछ काल पश्चात् वह राम-लक्ष्मण को सीता-समाचार सुनाकर स्वर्ग सिधार गया और हम सबको बिना बोले स्त्री-संमान की रक्षा का पवित्र पाठ पढ़ाकर अपनी कीर्ति अमर कर गया। हनुमान् से सीता का समाचार प्राप्त कर सेना-सहित राम समुद्र-तीर पर जा पहुँचे। रावण ने मंत्रि-परिषद् बुलाकर भावी कार्य-क्रम पर विचार किया। अनेक मंत्रियों ने राम से युद्ध करने की राय दी। परन्तु विभीषण ने गम्भीरता-पूर्वक सोचकर यह सलाह दी कि हमें धन, रत्न, भूषण, वस्त्र आदि सहित सीता को लौटाकर सुख-पूर्वक रहना चाहिए, युद्ध अनुचित है। इस पर काल-प्रेरित रावण ने हितवादी भाई विभीषण को ये कठोर शब्द कहे—

**वसेत् सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च।**
**न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना॥**
**अन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयात् वाक्यमेतन्निशाचर।**
**अस्मिन् मुहूर्ते न भवेत्त्वां नु धिक्कुलपांसनम्॥**

(वा० रा०, युद्धकांड, अ० १६।२;१५)

"भले ही मनुष्य शत्रु के अथवा विषैले क्रुद्ध साँप के साथ रह जाय, परन्तु शत्रु-समर्थक मित्र के साथ कभी न रहे। हे विभीषण, यदि अन्य कोई ऐसे शब्द कहता तो मैं उसे एक क्षण भी जीवित न रहने देता, परन्तु हे कुल-कलंक, तुझे तो धिक्कार ही पर्याप्त है।"

धर्मात्मा विभीषण को पापी रावण से भली बात कहने के लिए बुरे शब्द सुनने पड़े। इसलिए वह चार साथियों सहित सभा से उठ खड़ा हुआ और—

**अब्रवीच्च तदा वाक्यं जातक्रोधो विभीषणः।**
**अन्तरिक्षगतः श्रीमान् भ्रातरं राक्षसाधिपम्॥**
**निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा न रोचते ते वचनं निशाचर।**
**परीतकाला हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम्॥**

(वा० रा०, युद्ध० १६।१७,२६)

क्रोध से युक्त होकर राक्षसेश्वर रावण से विभीषण ने कहा—"मैंने तेरे हित की कामना से जो शब्द कहे वे तुम्हें अच्छे नहीं लगे। जिनकी मृत्यु निकट होती है वे मित्रों के हितकारी वचन ग्रहण नहीं करते।"

इस घटना से यह सिद्ध होता है कि पापी को धर्मात्मा की हितकर शिक्षा से क्रोध आता है और तब धर्मात्मा को कभी बदले में कुछ क्रोध आ ही जाता है।

## कृष्ण का क्रोध

अब संक्षेप से महाभारत के कुछ पात्रों के क्रोध के सम्बन्ध में भी सोच लिया जाय। सर्वप्रथम कंस और कृष्ण का ही किस्सा लीजिये। कंस ने जब अपनी चचेरी बहिन देवकी का विवाह वसुदेव से किया, तब आकाशवाणी हुई कि तुम्हारी (कंस की) हत्या देवकी के पुत्र के हाथों होगी। इस बात पर विश्वास कर उसने देवकी तथा वसुदेव को कारागार में डाल दिया और

उनके छः शिशुओं को जनमते ही मरवा डाला । वसुदेव की सावधानी से सातवें शिशु कृष्ण बचा लिये गये और उनके स्थान पर नन्द की नवजात कन्या को कंस ने पत्थर पर पटकवा कर मरवा दिया । स्पष्ट है कि यहाँ भावी अनिष्ट से बचाव ही कंस के क्रोध का कारण था ।

कंस पर कृष्ण के क्रोध का कारण सहज ही समझा जा सकता है । होश सँभालने पर कृष्ण को विदित हुआ कि कंस प्रजारक्षक नहीं, प्रजापीड़क राजा है । इसने मेरे माता-पिता व अपने पिता को कैद कर रखा है । इसी ने मेरे अनेक भाइयों के प्राण लिये तथा ब्रजवासियों को घोर कष्ट दिये हैं । इसी बीच कंस को पता लग गया कि देवकी का पुत्र ( कृष्ण ) किसी प्रकार बच कर सुरक्षित है । तब उसने धनुर्यज्ञ के बहाने कृष्ण को अपने यहाँ बुलवा कर मार डालने की योजना बनाई । किन्तु कृष्ण उससे अधिक चतुर निकले । उन्होंने क्रोध में भरकर भरी-सभा में ही उसके सीने पर सवार होकर उसे यमलोक में भेज दिया । कहना न होगा कि यहाँ कंस के क्रूरकर्म ही कृष्ण के क्रोध के कारण बने ।

## कौरवों का क्रोध

महाभारत की प्रमुख घटना है कौरव-पाण्डव-युद्ध । इस युद्ध का कारण था कौरवों का पाण्डवों के प्रति वैर । वैर, क्रोध का अचार है, यह हम पीछे कह ही चुके हैं । सो देखना चाहिए की पाण्डवों के प्रति कौरवों के क्रोध का कारण क्या था ! बात यह थी कि कौरवों के पिता धृतराष्ट्र ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी जन्मान्ध होने के कारण पिता का राज्य न प्राप्त कर सके थे । इसलिए पाण्डवों के पिता पाण्डु राजा बने । संयोग से वे शीघ्र ही काल का कलेवा बन गये और पितृ-हीन पाण्डव कौरवों के साथ धृतराष्ट्र के पास ही रहने लगे । दुर्योधन आदि कौरव समझते थे कि बड़े हो कर पाण्डव स्व-पिता का राज्य माँगेंगे, इसलिए इन्हें यथाशीघ्र समाप्त करना ही श्रेयस्कर है । सो गुप्त वैर के कारण, उन्होंने पहले भीमसेन को विष दिया, फिर पाण्डवों को लाक्षा-गृह में जलाने का यत्न किया और तत्पश्चात् जुए में पराजित कर उन्हें वन में भेज दिया । पाण्डव धर्मात्मा थे; केवल पाँच गाँव मिलने पर भी शान्तिपूर्वक रहना चाहते थे; परन्तु कौरव तो उन्हें

सूई की नोक जितनी भी भूमि देने को तैयार न हुए। परिणामतः महाभारत का घोर युद्ध हुआ, अपार धन-जन की क्षति हुई तथा कौरव सर्वथा निर्मूल हो गये। कहना अनावश्यक है कि यहाँ दुर्योधन आदि का राज्य-लोभ ही उनके पाण्डवों के प्रति क्रोध का कारण बना।

### जरासन्ध का कृष्ण पर क्रोध

हम अभी ऊपर कह आये हैं कि क्रूर कंस का काम क्रान्तिकारी कृष्ण के हाथों तमाम हुआ था। परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं हो गई, आगे बढ़ी। कंस, मगध के महाराज जरासन्ध का जामाता था। कंस के वध से जरासन्ध की दो पुत्रियाँ—अस्ति तथा प्राप्ति विधवा हो गईं। इसलिये उसने यवनराज कालयवन की सहायता से मथुरा पर कई आक्रमण किये तथा कृष्ण को मथुरा छोड़ दूर द्वारका में जा बसने पर मजबूर कर दिया। कहना न होगा कि यहाँ पर जरासन्ध के क्रोध का कारण पुत्रियों के वैधव्य से उत्पन्न दुःख था।

### श्रीकृष्ण का शिशुपाल पर क्रोध

कृष्ण के हाथों कंस ही काल-कवलित नहीं हुआ था, शिशुपाल भी यम-लोक जा पहुँचा था। दमघोष और सुप्रभा का पुत्र शिशुपाल चेदिदेश ( बुन्देल-खंड तथा मध्यप्रदेश का कुछ भाग ) का नरेश था तथा श्रीकृष्ण का मौसेरा भाई था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जब भीष्म पितामह ने अग्रपूजा के लिए श्रीकृष्ण का नाम प्रस्तुत किया, तब इसके कलेजे पर साँप लोट गया। इस प्रस्ताव के लिए इसने भीष्म को ही बुरा-भला नहीं कहा, ईर्ष्या-वश कृष्ण को भी पानी पी-पी कर कोसा। सुप्रभा के अनुरोध पर श्रीकृष्ण ने यह वचन दिया हुआ था कि मैं इसके एक सौ अपराध तो क्षमा कर दूँगा, किन्तु अधिक नहीं। जब शिशुपाल ने भरी-सभा में अपनी जबान को किसी प्रकार भी लगाम न दी और यह कहा—

**क्लीवे दारक्रिया यादृगन्धे वा रूपदर्शनम्।**
**अराज्ञो राजवत् पूजा तथा ते मधुसूदन॥**

( संक्षिप्त महाभारत, पृ० ६८ )

"हे मधुसूदन, जैसे नपुंसक के लिए स्त्री बेकार होती है और अन्धे के लिए दर्पण, वैसे ही तुझ राज्यहीन के लिए यह राजा के समान पूजा।"

श्रीकृष्ण की क्षमा चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। यह शिशुपाल का ्क सौ एकवाँ अपराध था। इसे सुनकर श्रीकृष्ण बोले—

> शृण्वन्तु मे महीपाला येनैतत् क्षमितं मया।
> अपराधशतं क्षाम्यं मातुरस्यैव याचते॥
> एवमुक्त्वा यदुश्रेष्ठः चेदिराजस्य तत्क्षणात्।
> अपहरत् शिरः क्रुद्ध चक्रेणामित्रकर्षणः॥

( संक्षिप्त महाभारत, पृ० ७० )

"हे राजाओ, इसकी माता की याचना पर मैंने इसके सौ अपराध क्षमा ़र दिये हैं। यह कहकर यदुश्रेष्ठ शत्रुनाशक कृष्ण ने चेदिराज का सिर अपने ुदर्शनचक्र द्वारा काट डाला।"

स्पष्ट ही है कि यहाँ श्रीकृष्ण के क्रोध का कारण शिशुपाल के कटुवचन ़ी थे।

## ुधिष्ठिर का अर्जुन पर क्रोध

धर्मपुत्र युधिष्ठिर अत्यन्त सहनशील तथा शान्त व्यक्ति थे। दुर्योधन की ाभा में द्रौपदी के घोर अपमान पर भी इनका खून नहीं खौला था। परन्तु, ाहाभारत के युद्ध में, अर्जुन के जीते जी, कर्ण ने इन्हें क्षत-विक्षत कर दिया ौर ये घायल होकर शिविर में लौट आये। यह समाचार सुन अर्जुन इनका ुशल-समाचार पूछने शिविर में आया, तब युधिष्ठिर ने समझा कि अर्जुन कर्ण ो मार कर लौटा है। परन्तु जब इन्हें विदित हुआ कि अर्जुन कर्ण को मारे बना ही भीम को अकेला युद्ध-भूमि में छोड़ आया है, तब इन्होंने अर्जुन को ागोड़ा समझकर क्रोधवश उसकी भर-पेट भर्त्सना की—

> प्रयच्छान्यस्मै गाण्डीवमेतदद्य, त्वत्तो योऽस्त्रैरभ्यधिक वा नरेन्द्रः।
> धिग्गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्यमसंख्येयान् वाणगणाश्चं धिक् ते॥

( सं० म०, कर्णपर्व, पृ० ३४८ )

"आज इस अपने गाण्डीव धनुष को किसी ऐसे राजा को दे दो जो कि अस्त्रविद्या में तुम से अधिक कुशल हो। तुम्हारे गाण्डीव को धिक्कार है, ाहु-बल को धिक्कार है तथा अगण्य बाण-समूहों को धिक्कार है।"

## अर्जुन का क्रोध

अर्जुन, ज्येष्ठ भ्राता युधिष्टिर का बहुत सम्मान किया करता था, परन्तु जब युधिष्ठिर ने उसे तथा उसके धनुष को यों धिक्कारा, तब उसने क्रुद्ध होकर भाई की कन्धरा काटने को खड्ग खींच लिया। जब कृष्ण ने इस उग्र क्रोध का कारण पूछा तो अर्जुन क्रुद्ध पक्षी के समान फुँकारता हुआ बोला—

**अन्यस्मै देहि गाण्डीवमिति मां योऽभिचोदयेत्।**
**भिन्द्यामहं तस्य शिर इत्युपांशुव्रतं मम॥**

(सं० म०, ८।२५०)

"यह मेरा व्रत है कि जो कोई मुझे मेरा धनुष किसी दूसरे को दे डालने को कहेगा, मैं उसका सिर फोड़ दूँगा।"

अर्जुन को किसी प्रकार शान्त न होते देख कृष्ण बोले—"संसार में सम्मान्य मानव का जब तक सम्मान है, तभी तक उसे जीवित जानना चाहिए। सम्मान की समाप्ति पर उसे जीते हुऐ भी मृत ही मानना चाहिए। इसलिए तू युधिष्ठिर को 'तू तू' कहकर पुकार। इस प्रकार वह मानो मर ही जायगा।"

यह बात अर्जुन को उचित जंची और वह क्रुद्धावस्था में ही यों कहने लगा—अरे राजन्, तू जुआरी है, तेरे ही कारण हमारे राज्य का नाश हुआ है तथा हम पर भारी विपत्ति पड़ी हैं। अरे अभागे, तू अपने क्रूर वचनों से हमें और पीड़ा मत पहुँचा। कहना न होगा कि यहाँ युधिष्ठिर के क्रोध का कारण तो उनका असह्य कायिक कष्ट और भ्रान्ति थी तथा अर्जुन के कोप का हेतु उसका तथा उसके धनुष का तिरस्कार।

## द्रौपदी का क्रोध

जुआ खेल कर तथा द्रौपदी को हारकर युधिष्ठिर ने इतनी भारी भूल की कि उसके भयंकर परिणाम पांचाली तथा पांचों पाण्डवों को भुगतने पड़े। दुर्योधन के आदेश से दुःशासन ने रजस्वला व एकवस्त्रा द्रौपदी के केश भरी सभा में खींचे, उसने इसे भूमि पर घसीटा तथा नग्न करने का यत्न किया। दुर्योधन की दुष्टता तो इस सीमा तक पहुँच चुकी थी कि उसने द्रौपदी को अपनी जाँघ पर बैठने का संकेत किया। इस अपमान को द्रौपदी सहन न कर सकी और ललकार उठी—

**धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां धर्मस्तथा क्षत्रविदां च वृत्तम् ।**
**यत्र त्वनीतां कुरुधर्मवेलां प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम् ।।**

( सं० म०, पृ० ७८ )

"सब सभासद् कुरुओं की धर्म-मर्यादा के उल्लंघन को चुपचाप देख रहे हैं। निश्चय ही भरतवंशियों का धर्म तथा क्षत्रियों का चरित्र नष्ट हो चुका है। तुम सबको धिक्कार हो।" कहना न होगा कि यहाँ द्रौपदी के क्रोध का कारण था कौरव-कृत अपना अपमान तथा सभासदों की धर्मविमुखता।

### भीम का क्रोध

जुए में हारे, मन मारे, सारे पाण्डव तो मिट्टी के माधव बने बैठे रहे, परन्तु भीमसेन कोप से तिलमिला उठे—"हे युधिष्ठिर, जुआरी भी अपनी दुराचारी स्त्रियों को दाँव पर नहीं लगाते। आज तेरे ही कारण पांचाली पाण्डवों को प्राप्त करके भी क्रूर, क्षुद्र तथा अशिष्ट कौरवों द्वारा कष्ट पा रही है। अरे सहदेव, जरा आग ले आ ताकि मैं इस युधिष्ठिर के बाजुओं को जला डालूँ ( जिससे फिर यह कभी जुआ न खेल सके )।"

( सं० म०, पृ० ७९ )

भीम को केवल भाई युधिष्ठिर पर ही क्रोध नहीं आया, दुःशासन तथा दुर्योधन भी उसके कोप-भाजन बने। उसने भरी-सभा में हाथ में हाथ दबाकर, फड़कते हुए ओठों से कहा—

**अस्य पापस्य दुर्बुद्धेर्भारतापसदस्य च ।**
**न पिबेयं बलाद्वक्षोभित्त्वा चेद्रुधिरं युधि ।**
**पितामहानां पूर्वेषां नाहं गतिमवाप्नुयाम् ।**

( सं० म०, पृ० ८० )

"यदि मैं युद्ध में इस मूर्ख, पापी, नीच भरतवंशी दुःशासन की छाती फाड़कर इसका लहू न पीऊँ तो मुझे परलोक में अपने पूज्य पितरों की गति प्राप्त न हो।"

इसी प्रकार उसने युद्ध में दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की भी प्रतिज्ञा की और भावी युद्ध में दोनों प्रतिज्ञाएँ पूरी कीं। स्पष्ट है कि यहाँ भीम के क्रोध का कारण था युधिष्ठिर की द्यूत-कीड़ा, सभासदों की धर्मविमुखता, दुःशासन तथा दुर्योधन का निर्लज्ज व्यवहार।

## पाण्डवों का जयद्रथ पर क्रोध

वनवास-काल में जब द्रौपदी-सहित पाण्डव काम्यक वन में थे, तब एक दिन दुर्योधन का बहनोई सिन्धु-नरेश जयद्रथ उसी प्रदेश में आ पहुँचा। पांचों पाण्डव शिकार को गये हुए थे और कुटी में पांचाली सीता-सदृश अकेली ही थी। उसके अनूप रूप को देखकर वह स्व-सुध-बुध खो बैठा और प्रणय-याचना करने लगा। द्रौपदी ने उसकी दुर्भावना पर उसे बहुत लज्जित किया परन्तु "कामार्तानां न भयं न लज्जा" के अनुसार उसे शर्म कहाँ! जब द्रौपदी उसकी रानी बनने को उद्यत न हुई तो वह उसे उठा, रथ में बिठा, चलता बना। आखेट से लौटे हुए पाण्डवों ने जयद्रथ का तुरन्त पीछा किया। जयद्रथ के अनेक सैनिक मारे गये तथा वह स्वयं द्रौपदी को छोड़, दुम दबा भाग खड़ा हुआ। उस समय कुपित भीम बोला—

**न हि मोक्ष्यते जीवन् मूढः सैन्धविको नृपः।**
**पातालसंस्थोऽपि यदि शक्रोऽस्य सारथिः॥**

"यदि यह मूढ़ सिन्धुनरेश पाताल में भी छिप जाय और इन्द्र भी इसका सारथि हो तो भी मैं इसे जीवित न छोड़ूंगा। यह सुन दयालु युधिष्ठिर बोले—नहीं-नहीं, उसे जान से न मारना, नहीं तो गान्धारी-पुत्री दुःशला विधवा हो जायगी। इस पर दुःखी तथा कुपित द्रौपदी ने भीम-अर्जुन से कहा—

**कर्तव्यं चेत् प्रियं मह्यं वध्यः स पुरुषाधमः।**
**सैन्धवापसदः पापो दुर्मतिः कुलपांसनः॥**

(सं० म०, वनपर्व, पृ० १६७)

"यदि तुम मेरा अभीष्ट करना चाहते हो तो उस नीच, पापी, मूढ़, कुल-कलंक सिन्धुनरेश का वध कर दो।" इस पर भीमार्जुन ने जयद्रथ की बुरी गत बनाई और उसका सिर मूँड़ दिया। कहना न होगा कि यहाँ पांडवों के क्रोध का कारण स्त्री-अपहरण था तथा द्रौपदी के कोप का हेतु निज अपहरण।

## द्रौपदी का क्रोध

वनवास का अन्तिम वर्ष पाण्डवों ने वेष बदल कर मत्स्यदेश के राजा विराट् के पास व्यतीत किया था। विराट् का साला, सेनापति कीचक वहाँ सेविका सैरन्ध्री के रूप में रहती हुई द्रौपदी के रूप-लावण्य पर लट्टू हो गया।

जब द्रौपदी ने उसे दुत्कारा तब वह उस पर बुरी तरह बिगड़ा। द्रौपदी अपनी लज्जा-रक्षा के लिए राजसभा में दौड़ी गई, परन्तु उस दुष्ट ने वहाँ जाकर भी उसे लातों से मारा। पाण्डवों ने उस समय मौन रहना ही उचित माना। इस पर कुपित द्रौपदी रात को भीमसेन से बोली—

**उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ किं शेषे भीमसेना यथा मृतः!**
**नामृतस्य हि पापीयान् भार्यामालभ्य जीवति॥**
**तं चेज्जीवन्तमादित्यः प्रातरभ्युदयिष्यति।**
**विषमालोड्य पास्यामि मा कीचकवशं गमम्॥**

(सं० म०, विराट्पर्व,)

"अरे भीमसेन, उठ-उठ! क्या मृतक के समान सो रहा है? वह मनुष्य जीवित नहीं, मृत है जिसकी स्त्री को कोई दूसरा छूकर जीवित रहता है। यदि सूर्योदय पर भी कीचक जीवित रहा है तो मैं विष घोलकर पी जाऊँगी, परन्तु उसके वश में कदापि न आऊँगी।"

जब कीचक अपनी कुचाल से बाज़ न आया तो द्रौपदी उसे बहका कर एकान्त स्थान में ले गई और वहाँ स्त्री वेषधारी भीम ने उसे भूमि पर पटक कर जान से मार दिया और उसके शव को भस्म कर दिया। स्पष्ट ही है कि यहाँ द्रौपदी और भीमसेन के कीचक पर क्रोध का कारण था—कीचक की द्रौपदी के साथ व्यभिचार की इच्छा। इस प्रकार परदाराभिगमन क्रोध के मुख्य कारणों में से एक है।

### अश्वत्थामा का क्रोध

अश्वत्थामा, द्रोणाचार्य तथा कृपी का वीर पुत्र था। महाभारत-युद्ध के अन्तिम दिन वह क्षत-विक्षत दुर्योधन को देखने के लिए गया था। इसे इस बात पर अत्यन्त क्रोध था कि इसके पिता द्रोणाचार्य, भीष्म, दुर्योधन आदि का वध छल से किया गया। इसलिए इसने सुप्त पाण्डवों को प्राण-विहीन करने का संकल्प किया। जब कृपाचार्य ने उसे इस कुत्सित कर्म से दूर रहने की सलाह दी, तब यह कुपित होकर बोला—

**पितृहन्तॄनहं हत्वा पांचालान् निशि सौप्तिके।**
**कामं कीटः पतंगो वा जन्म प्राप्य भवामि वै॥**

(सं० म०, सौप्तिकपर्व पृ० ४००)

"जिन पांचलों ने मेरे पिता को छल से मारा है, मैं भी उन्हें रात को सुप्तावस्था में ही मार डालूंगा। इससे मुझे कीट-पतंगे का जन्म भी मिले तो भी कोई चिन्ता नहीं।" उसने कोपवश अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। धृष्टद्युम्न, शिखंडी तथा द्रौपद्री के पाँचों पुत्र सुप्तावस्था में ही मार डाले। स्पष्ट है कि अश्वत्थामा के क्रोध का कारण कपट-कृत पितृ-वध था।

## भीमार्जुन का क्रोध

यदि अश्वत्थामा के कोप का कारण पितृवध था तो भीमार्जुन के क्रोध कारण पुत्रवध। द्रौपदी का पुत्र-विलाप सुनकर भीमार्जुन आपे से बाहर हो गये। वे गुरु-पुत्र अश्वत्थामा का काम तमाम करने दौड़े। अश्वत्थामा गंगा तीर पर व्यासजी के पास जा पहुँचा था। कृष्ण तथा अर्जुन भी वहाँ जा पहुँचे। अश्वत्थामा ने परमास्त्र उठा लिया तो अर्जुन ने ब्रह्मशिरा अस्त्र। तब महर्षि व्यास बोले—"जहाँ परमास्त्र द्वारा ब्रह्मशिरा अस्त्र रोका जाता है वहाँ बारह बरस तक मेह नहीं बरसता। इसलिए हे अश्वत्थामा, तू राष्ट्र की तथा इनकी रक्षा कर तथा अपने सिर की मणि इन्हें दे दे ताकि ये भी तेरे प्राणों को क्षमा कर दें।"

इस प्रकार व्यासजी की बुद्धिमत्ता से राष्ट्रसंकट टल गया। यहाँ पांडवों के कोप का कारण था पुत्रहत्या।

## ऋषियों आदि का क्रोध

ऋषि-मुनि ज्ञानी ही नहीं होते, तपस्वी, सदाचारी तथा परोपकारी भी होते हैं। इसलिए उनसे आशा की जाती है कि उन्हें कभी क्रोध न आयेगा। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि किसी भी मनुष्य को सिद्धि सहसा प्राप्त नहीं होती। मनुष्य क्रमशः ही दोष-त्याग कर पूर्णता प्राप्त करता है। हम नीचे कुछ उदाहरणों द्वारा यही बात स्पष्ट करने का यत्न करेंगे।

## विश्वामित्र और वसिष्ठ

हिन्दुओं के प्रख्यात महर्षि विश्वामित्र क्षत्रियवशी गाधिराज के पुत्र थे, परन्तु पीछे क्रमिक तपस्या द्वारा ब्रह्मर्षि बन गये थे। एक बार ये सेना-सहित महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में गये। वसिष्ठ ने इनका अपनी कामधेनु की सहायता से अनुपम अतिथि—सत्कार किया। यह देख विश्वामित्र ने काम-

धेनु ले जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु वसिष्ठ न माने। विश्वामित्र ने कामधेनु को छीनने का यत्न किया, परन्तु वसिष्ठ के आदेश से कामधेनु ने भारी सेना उत्पन्न कर दी, जिससे विश्वामित्र की सेना के छक्के छूट गये। पिता की पराजय देख विश्वामित्र के पुत्रों ने वसिष्ठ पर आक्रमण कर दिया, परन्तु कुपित वसिष्ठ के शाप से वे राख बन गये। हार से लज्जित विश्वामित्र ने वन में शिवजी की आराधना कर धनुर्वेद में अधिक निपुणता प्राप्त की और क्रोध में भर कर पुनः वसिष्ठ पर हल्ला बोल दिया, परन्तु वसिष्ठ के ब्रह्मदंड से वे पुनः पराजित हुए। तत्पश्चात् वे पुनः तप में मग्न होकर ब्रह्मा के वर से ब्रह्मर्षि बन गये। इस पर देवराज इंद्र ने उन के उग्रतर तप में विघ्न डालने के लिए रम्भा नामक अप्सरा भेजी। इस पर ऋषि शान्त न रह सके और उन्होंने क्रुद्ध होकर स्व-शाप से रम्भा को शिला बना डाला।

**दुर्वासा**

ये अत्रि मुनि तथा अनसूया के पुत्र थे और और्व कन्या कन्दली के पति। अपने क्रोधी स्वभाव के कारण ये भारतीय साहित्य में विशेष 'विख्यात' हैं। एक बार ये घूमते-फ़िरते महर्षि कण्व के आश्रम में जा पहुँचे। कण्व आश्रम में न थे और शकुन्तला दुष्यन्त की स्मृति में खोई बैठी थी। इस कारण दुर्वासा को भिक्षा के लिए द्वार पर खड़ा रहना पड़ा और उनके आतिथ्य-सत्कार में विलंब हो गया। तब क्रुद्ध दुर्वासा ने शकुन्तला को यह शाप दिया कि जिसकी स्मृति में खोकर तुम ने अतिथि-सेवा में प्रमाद किया, वह, भेंट होने पर तुम्हें भूल जायगा। इनका शाप सत्य सिद्ध हुआ। जब शकुन्तला दुष्यन्त-सभा में पहुँची तब दुष्यन्त उसे पहचान न सका, परन्तु पीछे खोई अँगूठी के मिलने पर पहचान गया।

एक बार दुर्वासा गरम खीर खा रहे थे। उन्होंने उस खीर का कुछ अंश श्रीकृष्ण को स्व-सम्पूर्ण शरीर पर मल लेने को कहा। श्रीकृष्ण ने वैसा ही किया, परन्तु ब्राह्मण की जूठन चरणों पर लगाना उचित न माना। इस पर कुपित होकर दुर्वासा बोले—"तुमने हमारी जूठन समग्र तन पर लगाई, इसलिए वह अभेद्य होगा, परन्तु पाँव पर नहीं लगाई, इस कारण वह अच्छेद्य न होगा।" यही कारण था कि श्रीकृष्ण का स्वर्गवास पाँव में तीर लगने से हुआ था, न कि किसी अन्य अंग पर।

## अगस्त्य

महर्षि अगस्त्य का पहला नाम 'मान' था, परन्तु विन्ध्याचल का गर्व खर्व करने के कारण बाद में ये अगस्त्य नाम से विख्यात हुए। जब राजा नहुष अपने तप, यज्ञ, स्वाध्याय आदि के कारण इन्द्र–पदवी को प्राप्त हुए, तब उन्हें अहंकार हो गया। आकाश में उनके रथ को जब सहस्र ऋषि खींच रहे थे, तब उन्होंने महर्षि अगस्त्य को पाँव की ठोकर मार कर 'सर्प-सर्प' अर्थात् 'चल-चल' कहा। इस पर क्रुद्ध महर्षि ने भी उसे सर्प होकर गिर जाने का शाप दिया। बहुत मिन्नत करने पर अगस्त्य बोले—तुम अपने वंश के राजा युधिष्टिर की कृपा से शाप-मुक्त होगे। स्वर्ग से गिर कर नहुष दस सहस्र वर्ष तक पृथ्वी पर सर्प बनकर पड़े रहे और अन्त में युधिष्ठिर की कृपा से शाप-मुक्त होकर पुनः स्वर्ग में चले गये।

## हज़रत मूसा का क्रोध

आज से लगभग साढ़े तीन सहस्र वर्ष पूर्व मिस्र देश में इसरायली लोग शरणार्थियों के रूप में रहते थे। वहाँ एक यहूदी परिवार में पिता अमराम तथा माता योथेवेद से बालक मूसा का जन्म हुआ। तत्कालीन राजा के आदेश से सब यहूदी नवजात बालक नील नदी में प्रवाहित कर दिये जाते थे, क्योंकि राजा को किसी ने बता दिया था कि कोई इसरायली ही मिस्र का नाश करेगा। सो मूसा को टोकरी में बंद कर नदी में बहा दिया गया, परन्तु स्नानार्थ नदी पर गई हुई राजकुमारी ने उसे बचा लिया और पालन-पोषण के लिए उसे दाई को सौंप दिया, जो संयोग-वश मूसा की माँ ही थी। मूसा राजकुमार के तुल्य प्रासाद में पलता रहा। जब होश सँभाला तब विदित हुआ कि मिस्री लोग इसरायिलियों पर अमानवीय अत्याचार करते हैं। एक बार उसने देखा कि एक मिस्री एक यहूदी को बुरी तरह पीट रहा है। यह अत्याचार देख मूसा को ऐसा क्रोध आया कि उसने उसी कोड़े की मार से उस मिस्री को मार ही दिया। तब उसके शव को रेत में दबा मूसा वहाँ से भय-वश भाग गया। यही मूसा कुछ वर्षों के बाद प्रभु महोवा ( ईश्वर ) का पैगम्बर तथा यहूदी धर्म का महान् गुरु बना। मूसा के अन्तिम ४० वर्ष स्वधर्मप्रचार तथा राज्य-विस्तार के लिए युद्ध में ही व्यतीत हुए।

## महात्मा ज़रतुश्त

ज़रतुश्ती धर्म के संस्थापक महात्मा ज़रतुश्त ने लगभग ढाई सहस्र वर्ष पूर्व संसार के लोगों को 'सद्‌विचार, सद्‌वचन तथा सत्कर्म का महान् उपदेश दिया। परन्तु धर्म-प्रचार के लिए क्रोध का वे भी परित्याग न कर सके। उनकी जीवनी में लिखा है कि शाह गश्ताशप ने, चुग़लखोरों की बातों में आकर, ज़रतुश्त को कारागार में डाल दिया। उन्हीं दिनों बादशाह का प्रिय घोड़ा इतना रुग्ण हो गया कि उसकी चारों टाँगें सिमट कर पेट से जा लगीं। बादशाह को प्रतीत हुआ कि यह निर्दोष ज़रतुश्त को कैद करने का कुपरिणाम है। उसने ज़रतुश्त को कैद से मुक्त कर उससे घोड़े को स्वस्थ करने की प्रार्थना की। ज़रतुश्त ने चार शर्तें रखीं। प्रथम घोड़े की एक टाँग ठीक हो जाने पर बादशाह मेरा ( ज़रतुश्ती ) धर्म स्वीकार करें; दूसरी टाँग ठीक होने पर राजकुमार अस्फंदयार इस धर्म के प्रचार के लिए धर्म-युद्ध में लग जाय, तीसरी टाँग ठीक होने पर रानी भी इस धर्म में दीक्षित हो जायँ; चौथी टाँग ठीक होने पर उन लोगों को दंड दिया जाय जिन्होंने बादशाह को मेरे विरुद्ध बहकाया था। शाह ने शर्तें स्वीकार कर लीं और घोड़ा स्वस्थ हो गया। परन्तु ध्यान देने की बात यह है महात्मा ज़रतुश्त धर्म-प्रचारार्थ युद्ध करने तथा विरोधियों को दंड में क्रोध को अनुचित न समझते थे।

## महात्मा ईसा

ईसाई धर्म के संस्थापक महात्मा ईसा दया तथा क्षमा की मूर्ति माने जाते हैं परन्तु उनकी जीवनी के अध्ययन से विदित होता है कि कई अवसरों पर वे भी क्रोध के अधीन हो गये। एक बार वे अपने शिष्यों-सहित नाव में बैठकर झील पार कर थे कि भारी तूफ़ान से नाव डगमगाने लगी। शिष्यों ने अतिव्याकुल होकर ईसा से अपने बचाव की प्रार्थना की। तब ईसा बोले—"हे अल्प विश्वासियो, क्यों डरते हो ? तब उसने उठकर आँधी व पानी को डाँटा और सब शान्त हो गया।"

( नया धर्मनियम, मत्ती ८।२६-७ )

जब ईसा ने एक अन्धे-गूँगे को अच्छा कर दिया, तब फ़रीसियों ने कहा कि यह ( ईसा ) शैतान की सहायता से ही ऐसा कर सका है। इस पर ईसा

ने उनकी बात का प्रतिवाद करने के पश्चात् कहा—"हे साँप के बच्चो, तुम बुरे होकर कैसे अच्छी बात कह सकते हो ? क्योंकि जो मन में भरा होता है वही मुँह पर आता है।"

( नया धर्मनियम, मत्ती १२।३४ )

उक्त घटनाओं से सिद्ध है कि महात्मा ईसा ने कुपित होकर ही आँधी-पानी को डाँटा तथा फ़रीसियों को फटकारा।

## हज़रत मुहम्मद

इस्लाम के संस्थापक हज़रत मुहम्मद की जीवनी में उनकी सुशीलता, उदारता, न्याय-प्रियता आदि की अनेक घटनाएँ मिलती हैं। तो भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वे कई अवसरों पर क्रोध तथा असहिष्णुता के वश में हो गये। यथा, जब उन्होंने मक्का में धर्म-प्रचार आरम्भ कर कुछ लोगों को इस्लाम में दीक्षित कर लिया, तब एक दिन सफ़ा-नामक पहाड़ी पर चढ़ कर लोगों को यों सम्बोधित किया—"मैं तुम्हें एक अल्लाह की दासता की ओर बुलाता हूँ और मूर्तिपूजा से बचाता हूँ और साथ ही तुम्हें यह भी बताये देता हूँ कि अगर तुम ने मेरी बात न सुनी तो मैं तुम्हें एक बहुत कठोर और भयानक यातना से डराता हूँ।" कहना न होगा कि इस वाक्य का उत्तरार्द्ध क्रोध को स्पष्ट ही प्रकट कर रहा है। सब जानते हैं कि मक्का-वासियों के अत्याचारों से पीड़ित हो हज़रत मुहम्मद को मदीने में शरण लेनी पड़ी थी। वहाँ उन्होंने स्व-शक्ति बढ़ा कर काफिरों से कई युद्ध किए। अन्त में दस सहस्र सैनिकों सहित उन्होंने मदीने पर आक्रमण किया। वहाँ। जहाँ उन्होंने कुछ लोगों को क्षमा भी कर दिया, वहाँ कुछ की हत्या भी करा दी। काबे में प्रविष्ट होते ही प्रथम आदेश यह दिया कि यहाँ की ३६० मूर्तियाँ फिंकवा दी जायँ तथा दीवारों पर बने देवी-देवताओं के चित्र मिटा दिये जायँ। इस घटना से उनके क्रोध व असहिष्णुता का समर्थन होता है।

## ब्रह्माजी

हिन्दुओं के त्रिदेवों में ब्रह्मा का प्रथम स्थान है, विष्णु का द्वितीय तथा शिव का तृतीय। उचित अवसर उपस्थित होने पर ये तीनों ही देवता कुपित होते दिखाई देते हैं। ब्रह्माजी ने नारद आदि अपने मानस-पुत्रों को सृष्टि-

रचना की आज्ञा दी । नारद ने सोचा, इस काम में लग गये तो ईश्वर-ध्यान
ों विघ्न पड़ेगा । इसलिए उन्होंने पिता की बात न मानी । इस पर ब्रह्मा ने
कुपित होकर नारद को शाप दिया और नारद गन्धमादन पर्वत पर गन्धर्व-
योनि में उत्पन्न हुए । एक अन्य अवसर पर नारद स्व-संयम खो बैठे । तब
ब्रह्मा ने क्रुद्ध होकर उन्हें पुनः शाप दिया, जिससे उन्हें गन्धर्व-शरीर त्याग
कर मनुष्य-शरीर ग्रहण करना पड़ा ।

( ब्रह्मवैवर्त पुराण )

**विष्णुजी**

विष्णु का नाम मधुसूदन इसी कारण पड़ा कि उन्होंने मधु नाम के क्रूर
दैत्य का वध किया था । एक बार अपने भाई कैटभ को साथ ले मधु, ब्रह्मा-
जी को समाप्त करने पर उद्यत हो गया । यह देखकर विष्णुजी कुपित हो
गये । उन्होंने ब्रह्मा को बचाने के लिए इसका संहार कर दिया ।

कश्यप तथा दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु ने तपोबल द्वारा स्वर्ग का राजा
बन, देवताओं को स्वर्ग से बाहर भगा दिया । यह तो विष्णु का कट्टर विरोधी
था परन्तु इसका पुत्र प्रह्लाद विष्णु का परमभक्त । हिरण्यकशिपु ने अपने
शत्रु के मित्र स्वपुत्र प्रह्लाद का प्राणान्त करने के अनेक उपाय किये जो
विफल न हुए । अन्त में विष्णुजी ने कुपित होकर स्वभक्त की रक्षा के लिए
हिरण्यकशिपु का काम तमाम कर डाला ।

**शिवजी**

ब्रह्मा का कार्य है सृष्टि-रचना, विष्णु का उसे धारण करना तथा शिव
का उसका सहार करना । शिवजी का क्रोध उनके त्रिपुरारि नाम से ही स्पष्ट
है, जिसकी कथा इस प्रकार है । तारक असुर के तीन पुत्र थे—तारकाक्ष,
कमलाक्ष तथा विद्युन्माली । तीनों ने तप द्वारा यह वर पाया था कि वे तीनों
स्वतंत्र नगरों में रहेंगे; सहस्र वर्षों के पश्चात् वे नगर परस्पर मिलेंगे । उस
समय जो व्यक्ति बाण मार कर उस नगर का नाश करेगा, वही इनके वध में
समर्थ होगा । सो मयदानव ने इनके लिए स्वर्ग में सोने का, अन्तरिक्ष में चाँदी
का तथा पृथ्वी पर लोहे का नगर बनाया । तारकाक्ष के पुत्र हरि ने ब्रह्मा से
यह वर पाया कि मेरे नगर में खोदे हुए सरोवर में जो शस्त्र-हत मनुष्य

स्नान करे वह पुनः जी उठे। यह वर पाकर दानव देवताओं को दुःख देने लगे। वरदाता ब्रह्मा के साथ दुःखी देवता शिव की शरण में गये। शिव रथी बने और ब्रह्मा सारथी। ज्योंही तीनपुर मिले, क्रुद्ध शिव ने बाण से उनका विनाश कर दिया तथा असुरों को दग्ध कर पश्चिमी सागर में फेंक दिया।

काम-दहन की कथा भी शिवजी के कोप को प्रकट करती है। देवता तारकासुर के हाथों दुःखी थे, परन्तु उसका वध तो पार्वती के पुत्र के हाथों ही सम्भव था। तपोमग्न शिवजी विवाह से विमुख थे। इसलिए देवताओं ने योजना बनाई कि कामदेव शिवजी का मन पार्वती की ओर प्रेरित करें, ताकि उनके पुत्र से तारक-वध हो सके। वसन्त ऋतु में कामदेव के बाणों से जब शिवजी का मन विचलित होने लगा तो उन्होंने कुपित होकर अपने मस्तक के तृतीय नेत्र से निर्गत अग्नि द्वारा कामदेव को दग्ध कर डाला।

## ईश्वर का क्रोध

हम ऊपर देख चुके हैं कि जीव-जन्तु, साधारण मनुष्य, महापुरुष, ऋषि-मुनि, पीर पैगम्बर और देवी-देवता सभी कभी-न-कभी क्रोध करते ही हैं। अब अन्त में यह भी देख लेना चाहिए कि ईश्वर भी क्रोध करता है वा नहीं। इस विषय में अपनी ओर से कुछ भी कहना, 'छोटा मुँह बड़ी बात' होगी। इतना तो सर्वविदित है कि ईश्वर-विश्वासी धर्म ईश्वर को कर्म-फल-दाता तथा न्याय-कारी मानते हैं। क्या सुकर्मों का फल देते समय प्रभु तुष्ट होता है तथा कुकर्मों का फल देते समय कष्ट ? क्या उसमें हर्ष और क्रोध जैसे मनोविकार उत्पन्न होते हैं ? यदि होते हैं तो क्या उसे निर्विकार कहा जा सकता है ? इन प्रश्नों का उत्तर देना सहज नहीं है। वस्तुतः देखा जाय तो परमेश्वर के स्वरूप व गुणों का बखान इन्सान के ज्ञान से बाहर की बात है। तो भी प्रायः माना यह जाता है कि विभिन्न धर्मों के ग्रंथों का ज्ञान ईश्वर-प्रदत्त है। इसलिए हम तो इतना ही कर सकते हैं कि उन ग्रन्थों के वचनों का अनुवाद प्रस्तुत कर दें।

**मा नो वधाय हत्नवे, जिहीडानस्य रीरधः।**
**मा हृणानस्य मन्यवे ॥** ( ऋग्वेद १।२५।२ )

'हे भगवन्, हम तेरी आज्ञाओं का उल्लंघन कर बैठते हैं। तू मार-मार कर हमारा कचूमर न निकाल। अप्रसन्न होकर हम पर क्रोध मत कर।"

**तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।**
**बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि ॥**
**मन्युरसि मन्युं मयि धेहि, सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥**

( यजुर्वेद १९।९ )

अर्थ—हे भगवन्, तू तेज है, मुझे तेज दे । तू वीरता है, मुझे वीरता दे । तू बल है, मुझे बल दे । तू कान्ति है, मुझ में कान्ति दे । तू क्रोध है, मुझे क्रोध दे । तू साहस है, मुझे साहस दे ।

उपर्युक्त मंत्रों से विदित होता है कि जहाँ हम भूल हो जाने पर प्रभु के क्रोध से बचना चाहते हैं, वहाँ उस क्रोध स्वरूप से ( दुष्ट-नाश के लिए ) क्रोध की याचना भी करते हैं ।

यहूदियों के परमेश्वर यहोवा के क्रोध का उल्लेख अपने स्थलों पर हुआ है । पुराने धर्मनियम की 'उत्पत्ति' पुस्तक के तृतीय अध्याय में लिखा है कि परमात्मा ने अदन की वाटिका में आदम तथा हव्वा को एक विशेष वृक्ष का फल खाने से मना किया । परन्तु सर्प ( शैतान ) की प्रेरणा से दोनों ने वह फल खा लिया, जिससे परमेश्वर ने कुपित होकर आदम को तो यह शाप दिया कि तू अपने माथे के पसीने की रोटी खाया करेगा तथा हव्वा को यह कि तू सन्तति को कष्ट-पूर्वक जन्म दिया करेगी तथा पति के अधीन रहेगी ।

जब सुलेमान बादशाह ने, यहोवा के आदेश के विरुद्ध अन्य जातियों के देवताओं के मन्दिर बनवाना आरम्भ कर दिया, "तब यहोवा ने सुलेमान पर क्रोध किया, क्योंकि उसका मन इसरायिल के परमेश्वर यहोवा से फिर गया था । इस कारण मैं ( यहोवा ) राज्य को निश्चय ही तुझसे छीन कर तेरे एक कर्मचारी को दे दूँगा ।"

( पुराना धर्मनियम, १ राजा, ११ अध्याय )

ईसाइयों का परमेश्वर भी कभी-कभी क्रोध कर बैठता है, जैसा कि 'नया धर्मनियम' के निम्नलिखित स्थलों से विदित होता है ।

"परमेश्वर का क्रोध तो उन लोगों की सब अभक्ति और अधर्म पर स्वर्ग से प्रकट होता है, जो सत्य को अधर्म से दबाये रखते हैं ।" ( रोमियो १।१८ )

"जब उस (बपतिस्मा-दाता यूहन्ना ) ने अनेक फरीसियों और सदूकियों

को बपतिस्मा के लिए अपने पास आते देखा तो उन से कहा— 'हे साँप के बच्चो, तुम्हें किस ने जता दिया कि ( ईश्वर के ) आने वाले क्रोध से भागो ?"
( मत्ती ३।७ )

कुरान शरीफ के अनुसार जहाँ अल्लाह रहमान व रहीम ( कृपालु व दयालु ) है, वहाँ वह पापियों पर क्रोध भी करता है। पापियों को दण्ड देने के लिए ही उसने दोज़ख ( नरक ) में घोर यातनाओं की व्यवस्था कर रखी। कुरान में निर्बल स्त्रियों, पुरुषों व बच्चों पर अत्याचार करने वालों से लड़ने की प्रेरणा की गई। जहाँ इन आज्ञाओं से अल्लाह के कोप का परोक्ष संकेत मिलता है, वहाँ निम्नलिखित आयतों में अल्लाह के कोप का साक्षात् उल्लेख भी उपलब्ध होता है।

"कहो: वह इसका सामर्थ्य रखता है कि तुम पर तुम्हारे ऊपर से या तुम्हारे पाँव के नीचे से कोई यातना भेज दे, या तुम्हें टोलियों में बाँट कर परस्पर भिड़ा दे और एक को दूसरे से लड़ा कर आपस की लड़ाई का मजा चखा दे।"
( कुरान ६।६५ )

"तुम से वही बात कही जा रही है जो पूर्ववर्ती रसूलों से कही जा चुकी है। निःसन्देह तुम्हारा 'रब' क्षमाशील भी है और दुःखदायक दण्ड का दाता भी।"
( कुरान ४१।४३ )

"निस्सन्देह तुम्हारे 'रब' की पकड़ बड़ी सख्त है।" ( कुरान ८५।१२ )

## जीव-जन्तुओं तथा मनुष्यों के क्रोध-कारणों में अन्तर

तृतीय अध्याय में जीव-जन्तुओं के क्रोध-कारणों पर प्रकाश डाला गया है और चतुर्थ तथा पञ्चम अध्याय में मनुष्यों के। दोनों की तुलना करने पर विदित होता है कि मनुष्य भी प्रायः उन सभी कारणों से कुपित हो उठता है, जिन से पशु-पक्षी आदि। उदाहरणार्थ, भूख-प्यास आदि से व्याकुल होने पर, प्राण सम्बन्धी व निवास के नाशक पर, भार-रूप सम्बन्धी पर, अभीष्ट की अप्राप्ति आदि पर जीव-जन्तु व मनुष्य दोनों ही कुपित हो उठते हैं। परन्तु कहीं-कहीं असमानता भी है। उदाहरणार्थ, साँप केंचुल उतारने के बाद कुपित रहता है, परन्तु मनुष्य में यह क्रिया न होने से इस प्रकार का क्रोध असम्भव है।

इसके विपरीत ऐसे कारण तो असंख्य हैं, जिनसे मनुष्य तो कुपित हो

उठते हैं, परन्तु पशु-पक्षी नहीं। इसका कारण यह है कि पशु-पक्षी आदि तो प्रायः प्राकृत अवस्था में ही जीवन-यापन कर रहे हैं, परन्तु मनुष्य ने बुद्धि-विकास के कारण नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न कर ली हैं। वस्त्र-परिवर्तन के समय तथा वस्त्रों के न्यूनाधिक व ऋतु-विपरीत होने के कारण मानव-शिशु तो कुपित हो उठते हैं, परन्तु वस्त्रों का प्रयोग न करने के कारण जीव-जन्तुओं में इन कारणों से क्रोध उत्पन्न नहीं होता। अध्यापकों तथा शिष्यों में अनेक कारणों से क्रोध उत्पन्न होता है, जैसा कि पीछे दिखा चुके हैं। परन्तु पठन-पाठन, परीक्षा-परिणाम आदि से कोई सम्बन्ध न होने के कारण, जीव-जन्तुओं में इन कारणों से क्रोध नहीं उठता। गाली-गलौज, पिशुनता आदि के कारण मनुष्य परस्पर क्रोध करते हैं, परन्तु पशु-पक्षी ऐसी बातों पर कुपित नहीं होते। विवाह-जनित कुटुम्ब-प्रथा मनुष्यों में ही दिखाई देती है। पशु-पक्षियों में निश्चित परिवार नहीं होता, इसलिए उनमें एक के व्यभिचार करने पर दूसरा उस पर कोप नहीं करता। सन्तान न होने पर अथवा कन्याएँ ही उत्पन्न होने पर प्रायः घरों में जो कटुता आ जाती है, वह इतर प्राणियों में दिखाई नहीं देती। सास-बहू, ससुर-दामादादि में क्रोध तो उत्पन्न होता है, परन्तु जीव-जन्तुओं में ऐसा देखा-सुना नहीं जाता। कन्याओं व बहू-बेटियों पर कुदृष्टि आदि के कारण मनुष्यों में तो अनेक कलह-क्लेश उत्पन्न होते हैं, परन्तु जीव-जन्तु इन बातों से ऊपर हैं। छुआ-छूत, वर्ण-भेद, जाति-पांति, रंग-भेद, पंक्ति-भेद आदि के कारण मनुष्यों में कभी-कभी सिर-फुटौवल होती रहती है, परन्तु पशु-पक्षियों में नहीं। दाय भाग, जुआबाजी, मकान-भाड़ा आदि के कारण होने वाला क्रोध भी जीव-जन्तुओं में दिखाई नहीं देता। साम्यवाद, पूँजीवाद, प्रजातन्त्र तथा तानाशाही और राजनीतिक गुटों में पाये जाने वाले वैमनस्य व क्रोध से भी जीव-जन्तु दूर हैं। धार्मिक क्षेत्र पशु-पक्षियों का विषय नहीं है। ईश्वर का अस्तित्व, मूर्ति-पूजा, परलोक, पुनर्जन्म, ईश्वरीय ज्ञान, धार्मिक शास्त्रार्थादि के कारण भी जीव-जन्तु परस्पर खून-खराबा नहीं करते। तात्पर्य यह कि मनुष्य का जीवन जितना अधिक विकसित, व्यापक और जटिल बनता जाता है उतने ही क्रोध के नये-नये कारण भी उपजते जाते हैं।

षष्ठ अध्याय

# क्रोध के परिणाम

जिहि मन में उद्भव भयो, जिहि बल जग में सूर।
तिहि निसि दिन जारत अहो, दुसह कोप-गति क्रूर॥
दुसह कोप-गति क्रूर, बड़ो कृतघन जग मों है।
प्रथम दहत है आप, बहुरि दाहत सब को है॥
बरनै 'दीनदयाल' कोष ! तू सुनि सब जन तें।
अजस होत जनि दहै, भयो उद्भव जिहि मन तें॥

हिन्दी के सुप्रसिद्ध नीति-कवि बाबा दीनदयाल गिरि ( १८५७-१९१५ वि० ) ने क्रोध को दूसरों का दाहक ही नहीं कहा, उसी मन को जलाने वाला भी कहा है जिसमें वह उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह कि क्रोध के परिणाम दूसरों के क्रोध-भाजनों को ही नहीं, स्वयं क्रोधी को भी भुगतने पड़ते हैं। दूसरों की बात तो बाद में करेंगे, पहले यह देख लें कि क्रोधावस्था में क्रोधी के शरीर तथा मन में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं।

## क्रोध में शारीरिक परिवर्तन

जब मन शान्त होता है, तब शरीर के सब अंग अपना-अपना कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न करते हैं और मनुष्य स्वास्थ्य का स्वर्गिक सुख भोगता है। परंतु क्रोध के उपजते ही मन में ही नहीं, तन में भी हलचल मच जाती है। परिणाम यह होता है कि विभिन्न अंगों की सामान्य स्वस्थ क्रिया समाप्त हो जाती है और उनमें परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर के विभिन्न अंग सर्वथा पृथक्-पृथक् नहीं हैं, परस्पर सम्बद्ध हैं; इसलिए क्रोधादि प्रत्येक प्रबल भाव का प्रभाव निस्सन्देह समूचे शरीर पर पड़ता ही है। तो भी, हम यहाँ स्थानाभाव के कारण, केवल कुछ ही परिवर्तनों का उल्लेख करेंगे।

क्रोध के कारण रक्त-संचार में अन्तर पड़ जाता है और परिणाम-स्वरूप सिर दुखने लगता है। कुछ लोगों को तो मिरगी के दौरे भी पड़ते देखे गये हैं।

कोप से मुख केवल लाल ही नहीं होता, विकृत एवं भयंकर भी हो जाता है। आँखें रक्त-वर्ण हो जाती हैं तथा पुतलियाँ फैल जाती हैं। श्वास-गति तीव्र हो जाती है तथा कभी-कभार दमे का भी आक्रमण हो जाता है। ओठ सूखते ही नहीं, फड़कने भी लगते हैं। जिह्वा पर नियन्त्रण नहीं रहता। क्रोधी व्यक्ति कभी तो बोल ही नहीं सकता, कभी असम्बद्ध वाक्य बोलता है तथा कभी अनाप-शनाप बकने लगता है। शान्त होने पर उसे विश्वास तक नहीं आता कि उसके मुख से ऐसे दुर्वचन निकले होंगे! मुख में लार सूख जाती है तथा जीभ मुख में छत से जा चिपकती है। हृदय की धड़कन तीव्र हो जाती है तथा उसमें जलन अनुभव होती है। क्रुद्ध व्यक्ति का रक्त-चाप ( ब्लडप्रेशर ) बढ़ जाता है जिससे कभी-कभी मस्तिष्क की रक्त-वाहिनी ( Blood Vessel ) फट जाती है वा दिल का दौरा पड़ जाता है। क्रोध शान्त होने पर रक्त-चाप नीचे आ जाता है। रक्त-शर्करा ( Blood Sugar ) की मात्रा बढ़ जाती है, रक्त का जमाव ( Coagulation ) तेजी से होने लगता है तथा रक्ताणुओं ( Red Blood Corpuscles ) की वृद्धि हो जाती है। पेशियाँ तन जाती हैं तथा फड़कने लगती हैं। त्वचा पर पसीना अधिक आने लगता है तथा रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्रोध की अवस्था में कुछ लोगों को पेट-दर्द आरम्भ हो जाता है और कुछ को वमन ( कै )। भूख का नाश तो प्रायः सब के अनुभव की बात है। कुपित व्यक्ति के मूत्र में शक्कर आ जाती है जिसे सांवेगिक मूत्र शर्करा ( Emotional Glycosuria ) कहते हैं।

## पाचन पर प्रभाव

'क्रोध, भय आदि संवेगों का प्राणियों की शारीरिक क्रियाओं पर प्रभाव'—इस विषय पर पश्चिमी विद्वानों ने अनेक ज्ञानवर्द्धक तथा आश्चर्यजनक परीक्षण किये हैं। उदाहरणार्थ, एक बिल्ली कुत्ते के सम्मुख लाई गई, जिसके कारण कुत्ता क्रोध से लाल-पीला हो गया। तत्पश्चात् बिल्ली को वहाँ से हटा दिया गया और परिणाम-स्वरूप कुत्ता शान्त हो गया। उस कुत्ते को पाँच मिनट तक 'कापटिक भोजन' ( Sham feeding ) दिया गया। यद्यपि वह कुत्ता भूखा रखा गया था तो भी उस भोजन के कारण कोई उल्लेखनीय आमाशय-यूष ( Gastric Juice ) उत्पन्न नहीं हुआ। बीस मिनट में जो केवल नौ घन सेंटीमीटर रस उत्पन्न हुआ उसमें भी श्लेष्मा ( म्यूकस ) की

मात्रा अधिक थी। शान्त अवस्था में पाँच मिनट तक दिये गये 'कापटिक भोजन' से ६६.७ घन सेंटीमीटर रस उत्पन्न हुआ था। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि क्रोध की अवस्था में आमाशय ( Stomach ) बहुत ही कम काम करता है और उस अवस्था में भक्षित भोजन भली-भांति हजम नहीं होता। इसी प्रकार यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि पाचन-क्रिया में सहायक सर्वकिण्व-यूष ( Pancreatic Juice ) की उत्पत्ति रुक जाती है तथा जिगर द्वारा उत्पादित पित्त नामक रस ( बाइल ) की मात्रा भी निश्चय ही न्यून हो जाती है।[1] इसी प्रकार के अन्य परीक्षणों से वैज्ञानिक इस सुनिश्चित परिणाम पर पहुँचे हैं कि क्रोधादि संवेगों की अवस्था में न केवल उपर्युक्त ग्रंथियों से रस-स्राव ही रुक जाता है, वल्कि आमाशय, छोटी तथा बड़ी आँतों की वे चेष्टाएँ भी बन्द हो जाती हैं, जिनके बिना भोजन हजम ही नहीं होता। जैसे ये परीक्षण छोटे प्राणियों पर सत्य सिद्ध हुए हैं, वैसे ही मनुष्यों पर भी। इसलिए कहने की आवश्यकता ही नहीं कि क्रोध, भय, शोक, चिन्ता आदि की अवस्था में पेट में फेंका गया भोजन पत्थर की तरह पड़ा रहता है, हजम न होने के कारण शरीर का अंग नहीं बनता।

## रक्त व मूत्र में शक्कर की वृद्धि

सामान्य रूप से रक्त में शक्कर की मात्रा ०.०६ से ०.१ प्रतिशत रहती है तथा गुर्दे इसके निकास को रोकने में समर्थ होते हैं। परन्तु यदि यह मात्रा बढ़कर ०.१८ प्रतिशत तक जा पहुँचे तब वह मूत्र के साथ निकलने लगती है और इस रोग को मूत्रशर्करा ( ग्लाइकोसूरिया ) कहते हैं। भारी शोक तथा दीर्घ चिन्ता, बहुमूत्रता ( डायबिटीज़ ) के प्रसिद्ध कारण हैं। यह देखा गया है कि बहुमूत्रता के रोगी जब कुपित वा भीत होते हैं, तब उनके मूत्र में शक्कर बढ़ जाती है, जिसे 'सांवेगिक मूत्रशर्करा' कहते हैं।

क्रोधादि संवेगों के कारण ग्लाइकोसूरिया स्वस्थ पशुओं तथा मनुष्यों को भी हो जाता है। उदाहरणार्थ, पिंजरों में बन्द तीन स्वस्थ बिल्लियों का एक क्रुद्ध कुत्ते से आध घंटे तक 'कापटिक युद्ध' (शैम फाइट ) कराया गया। कुपित

---

१. डब्ल्यू० वी० कैननः बाडिली चेंजेज़ इन पेन, हंगर, फियर एंड रेज, पृ० १०, ११, १४।

कुत्ता आध घंटे तक भौंकता रहा और बिल्लियाँ भय वा क्रोध के कारण पीठ उभारती, दाँत दिखाती तथा गुर्राती रहीं। अब जब उनके मूत्र का परीक्षण किया गया तो उसमें शक्कर सामान्य से अधिक पाई गई।

मनुष्यों पर किये गये परीक्षण भी इन परिणामों की पुष्टि करते हैं। उदाहरणार्थ, एक मेडिकल कालेज के नौ विद्यार्थियों का मूत्र उनकी पढ़ाई की परीक्षा से पूर्व सामान्य था। परीक्षा में कठिन प्रश्न-पत्र के उत्तर लिखने के पश्चात् जब उनकी मूत्र-परीक्षा की गई तो चार छात्रों के मूत्र में शक्कर पाई गई। सरल प्रश्न-पत्र के उत्तर देने के पश्चात् केवल एक विद्यार्थी के मूत्र में शक्कर देखी गई। सो सिद्ध है कि क्रोधादि संवेगों की दशा में मनुष्य के रक्त व मूत्र में शक्कर की मात्रा बढ़ जाती है।

## रक्ताणु वृद्धि

हमारे पेट में स्थित तिल्ली ( Spleen ) रक्ताणुओं का भण्डार है। जब यह सिकुड़ती है तब रक्ताणु इसमें में निकल कर रक्त में प्रविष्ट हो जाते हैं। क्रोधादि संवेगों की दशा में तिल्ली सिकुड़ती है, जिससे रक्त में रक्ताणुओं की सख्या बढ़ जाती है। इसे सांवेगिक रक्ताणु-वृद्धि ( Emotional Polycythemia ) कहते हैं। १८ विभिन्न प्राणियों पर किये गये २१ परीक्षणों से पता चला कि संवेगों की स्थिति में रक्ताणुओं की वृद्धि की मध्यमा ( औसत ) २७ प्रतिशत थी। संवेग के पाँच मिनट बाद रक्ताणु-संख्या में पर्याप्त कमी हो गई तथा आध घण्टे के बाद संख्या पहले ( शान्तिकाल के ) स्तर पर पहुँच गई।

## शारीरिक परिवर्तनों की उपयोगिता

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या उपर्युक्त परिवर्तनों का कुछ उपयोग भी है? वैज्ञानिकों ने इस विषय पर भी विचार किया है और उनके विचारों का सार संक्षेप से प्रकट करना रोचकता से रिक्त न होगा।

## शक्ति-वृद्धि

क्रोधादि संवेगों की दशा में हमारी उपवृक्क ग्रंथियों से ( Adrenal Glands) जो उपवृक्की ( Adrenine ) निकलती है, वह जिगर के द्वारा रक्त में पर्याप्त शर्करा पहुँचाती है। खून को हृदय, फेफड़ों, केन्द्रीय स्नायु-संस्थान

( Central Nervous System ) तथा बाहुओं और टाँगों में पहुँचाने में सहायता देती है, पेशियों की थकान के प्रभाव को शीघ्र दूर करती है तथा खून को शीघ्र जमने के योग्य बनाती है। परिणाम यह होता है कि उपवृक्की के निकास के दस सेकेंड के अन्दर ही हृदय की गति तीव्र हो जाती है तथा अल्पकालीन संवेग के बाद तीन से छह मिनट के अन्दर ही रक्तशर्करा २० से ३० प्रतिशत बढ़ जाती है। क्रोध संवेग का सीधा सम्बन्ध लड़ाकू प्रवृत्ति से है और लड़ाई की अवस्था में बाजुओं, टाँगों आदि की पेशियों की तीव्र तथा प्रबल चेष्टा आवश्यक होती है। पेशियों की प्रबल चेष्टाओं के लिए रक्तशर्करा का महत्त्व स्वतःसिद्ध है। यही कारण है कि क्रुद्धावस्था में मनुष्य अपने आप को सामान्य अवस्था से कहीं अधिक शक्तिशाली अनुभव करता है।

## शरीर की स्वच्छता

युद्धावस्था में पेशियों की क्रिया से जो गंदा मादा (Metabolites) बनता है, उसे जलाने के लिए ओषजन (Oxygen) की आवश्यकता होती है। उसके जलने के बाद बनने वाली कार्बनिकाम्लवाति (Carbonic Acid Gas) को शरीर से शीघ्र निकालना भी अत्यन्त आवश्यक होता है। ओषजन को पहुँजाना तथा कार्बनिकाम्लवाति को निकालना—ये दोनों कार्य लहू के रक्ताणुओं ( Red Blood Corpuscles ) को ही करने होते हैं। हृदय की तीव्र धड़कन से रक्त-संचार तीव्र हो जाता है और रक्ताणु फेफड़ों तथा युद्धलीन अंगों में अधिक चक्कर काटते हैं। इसके अतिरिक्त, जैसा कि पहले कह भी चुके हैं, तिल्ली भी संचित रक्ताणुओं को उस दशा में लहू में समाविष्ट कर देती है।

क्रोध युद्ध की तैयारी है और युद्ध में शरीर का पयाप्त व्यायाम होता है। व्यायाम की दशा में शरीर को अन्दर से स्वच्छ रखने के लिए पर्याप्त ओषजन की आवश्यक़ता होती है। यही कारण है कि व्यायाम तथा लड़ाई के समय श्वास-गति तीव्र हो जाती है ताकि फेफड़ों से गन्दी वायु दूर होती रहे और ताज़ा ओषजन-युक्त वायु अंदर पहुँचती रहे।

## रक्त-जमाव में सहायता

क्रोध, युद्ध की पूर्वावस्था है। यही कारण है कि कई बार क्रुद्ध व्यक्ति

ो दूसरा व्यक्ति यह कहता सुना जाता है—"क्या लड़ने की इच्छा है ?" द्ध में घाव लगने की, रक्त बहने की सम्भावना रहती ही है। यही कारण कि घाव लगने तथा क्रोधादि संवेग की दशा में उपवृक्की ( Adrenine ) त्पन्न हो जाती है जिस के प्रभाव से खून के शीघ्र जमाव में सहायता ालती है। यदि प्रकृति ऐसा प्रबन्ध न करे तो साधारण घावों से भी इतना क्त-स्राव हो जाय कि प्राणी प्राणों से ही हाथ धो बैठें।

## ाकार की भयंकरता

इसी प्रकार मुख तथा आँखों की लाली, माथे पर बल, दाँत पीसना, मुख ी विकृति, रोंगटे खड़े होना, मुट्ठियाँ बन्द होना आदि ऐसे लक्षण हैं जिन क्रुद्ध व्यक्ति का व्यक्तित्व भयंकर हो जाता है। यह सब इसलिए होता है क शत्रु कुपित मनुष्य के आकार-प्रकार से ही इतना भीत-त्रस्त हो जाय कि ड़ने का साहस ही न करे तथा दुम दबाकर भाग जाय।

## न पर प्रभाव

मन का मुख्य कार्य सोच-विचार करना है। क्रोध का मन पर अधिकार ते ही प्रायः सोच-विचार की शक्ति का संहार हो जाता है। उस अवस्था क्रुद्ध व्यक्ति सोच नहीं सकता कि क्या कहना चाहिए और क्या नहीं, क्या रना चाहिए और क्या नहीं। इसी को संमोह की अवस्था कहते हैं। स्मरण रना भी मन की क्रिया है। मैं कौन हूँ, क्या हूँ तथा कितना सबल वा निर्बल ; मेरा विरोधी कौन है, क्या है तथा कितना सशक्त वा निःशक्त है; इसने तीत में मेरा कोई उपकार भी किया है वा नहीं; इत्यादि बातों की स्मृति ा चेतना स्वस्थ अवस्था में बराबर बनी रहती है। परन्तु क्रोध का आवेश ोते ही मनुष्य यह सब कुछ भूल जाता है। इसी को 'स्मृति-भ्रंश' कहते हैं। ामोह तथा स्मृति-भ्रंश के कारण मनुष्य की निश्चय करने की शक्ति नष्ट ो जाती है, 'जिसे बुद्धिनाश' कहा गया है। इस शक्ति के क्षय के कारण नुष्य ऐसे कार्य कर बैठता हैं जो नहीं करने चाहिए। उनका परिणाम मनुष्य ा नाश है। इसी बात को श्रीकृष्ण ने अर्जुन से इन शब्दों में संक्षेपतः हा है—

**क्रोधावद् भवति संमोहः, संमोहात् स्मृतिविभ्रमः ।**
**स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ।।**

( भगवद्गीता २।६३ )

क्रोध के परिणाम-स्वरूप अल्पकालीन गाली-गलौज व मार-पीट ही नहीं होती, मन में और कुविचार भी घर कर लेते हैं, जो दीर्घकाल तक मनुष्य को दुःखी करते रहते हैं । हो सकता है, दुःखदायी व्यक्ति हम से बलवान् हो और इसलिए प्रत्यक्ष रूप से हम उसे हानि न पहुँचा सकें । परिणामतः हमारे मन में उसके प्रति द्रोह की भावना उत्पन्न हो जायगी, और हम ऐसे अवसर की खोज में रहेंगे, जिसके द्वारा हम उसे क्लेशित कर स्वयं संतुष्ट हो सकें। जब तक ऐसा अवसर नहीं आयगा, हमारा मन द्रोह से दग्ध होता रहेगा। क्रोध, ईर्ष्या तथा असूया का भी जन्मदाता है । जब तक हम अपने अपकारी से बदला नहीं ले लेते वा उसे क्षमा नहीं कर देते, तब तक हमारे मन में शान्ति नहीं होती । इसका परिणाम यह होता है कि उसकी प्रत्येक प्रकार की प्रगति हमारे दिल को दग्ध करती रहती है। उसकी अट्टालिका, उसकी ख्याति, उसका ऐश्वर्य, उसकी सन्तति की विद्वत्ता व गुणवत्ता आदि सैकड़ों बातें हमें ईर्ष्या की आग में जलाती रहती हैं और हम मन-ही-मन कहते हैं—हाय ! ये वस्तुएँ हमारे पास क्यों नहीं हैं ? असूया में हम पराये गुण सह नहीं सकते, उनमें दोष ढूंढ़ने का यत्न करते हैं । यदि वह धनी है तो हम कहते हैं, उसने जमाखोरी व चोरबाजारी से पैसा इकट्ठा किया है । यदि उसका बच्चा परीक्षा में प्रथम आया है तो हम कहते हैं—अनुचित उपायों का आश्रय लिया होगा; वैसे तो उसकी बुद्धि को हम जानते हैं, जितनी है, इत्यादि । मनुजी ने क्रोध से उत्पन्न होने वाले आठ दोषों में उक्त तीनों—द्रोह, ईर्ष्या, असूया—का भी उल्लेख यों किया है—

**पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्याऽसूयाऽर्थदूषणम् ।**
**वाग्दण्डजं च पारुष्यम् क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ।।**

( मनुस्मृति ७।४८ )

अर्थात् क्रोध से आठ दोष उत्पन्न होते हैं—चुगलखोरी, हिंसा, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, धन-नाश, वाणी तथा दण्ड की कठोरता । क्रोध का मनुष्य के

मन पर कितना कुप्रभाव पड़ता है, इसका उल्लेख संस्कृत के कवि कृष्ण मिश्र ने 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक में स्वयं क्रोध नाम के पात्र द्वारा कराया है—

**अन्धीकरोमि भुवनं बधिरी करोमि,**
**धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि।**
**कृत्यं न पश्यति न येन हित शृणोति,**
**धीमानधीतमपि न प्रतिसंदधाति ॥ (२।२९)**

( क्रोध कहता है ) 'मैं लोक को अन्धा कर देता हूँ। बहिरा बना देता हूँ। चेतनायुक्त धीर व्यक्ति को भी ऐसा जड़ बना डालता हूँ कि न वह अपने कर्तव्य को देखता है और न अपने भले की बात सुनता है। यदि वह विद्वान् भी हो तो भी अपना पढ़ा-लिखा सब भूल जाता है।" यहाँ तक कि क्रोध के आवेश में कभी-कभी अपनी ही जान पर खेल जाता है।

## क्रोध का अन्यों पर प्रभाव

क्रोध, क्रोधी की काया तथा मन में क्या-क्या परिवर्तन कर देता है, यह हम अभी देख चुके हैं। यदि कुपित मनुष्य निज कोप मन में ही गुप्त रखे वा आत्म-हत्या कर ले, तो इससे दूसरों की कोई विशेष हानि नहीं होती। परन्तु ऐसा प्रायः होता नहीं; क्योंकि संवेग इतने प्रबल होते हैं कि चिरकाल तक दबते नहीं, देर वा सबेर किसी-न-किसी प्रकार से फूट ही पड़ते हैं और तब दूसरों को भी दुःखी किये बिना नहीं रहते।

दूसरों को यह दुःख प्रायः निम्नलिखित रीतियों से पहुँचता है—१. वाणी द्वारा २. मार-पीट द्वारा ३. हत्या-द्वारा ४. अन्य अपराधों द्वारा।

### १. वाणी-द्वारा

हम ऊपर कह चुके हैं कि क्रुद्ध व्यक्ति की वाणी वश में नहीं रहती। वह जिस व्यक्ति से किसी भी प्रकार का दुःख पा चुका होता है, उसके प्रति अनुचित शब्दों का प्रयोग करता है। वह उस पर मिथ्या कलंक लगाता है, जली-कटी सुनाता है, डाँटता-डपटता है और अश्लील गालियाँ तक देता है। यह बात नहीं कि वाणी के ये बाण एक ही तरफ से चलते हों। विरोधी व्यक्ति यदि सहनशील न हो तो दो का जबाब चार से और ईंट का उत्तर पत्थर से

देता है। वाणी द्वारा कोप की यह अभिव्यक्ति छोटों का निर्दलों के प्रति ही नहीं बड़ों और सबलों के प्रति भी की जाती है। यह प्रायः देखा ही जाता है कि जब बड़े व प्रबल लड़के छोटों व निर्बलों को पीटते हैं, तब छोटे व निर्बल बच्चे भी बड़ों को जली-भुनी सुनाकर निज दिल की जलन पर जल छिड़कने का यत्न करते ही हैं। महर्षि वाल्मीकि ने भी क्रोध के परिणामों का उल्लेख करते हुए यही बात इन शब्दों में कही है—

**क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः, क्रुद्धो हन्याद् गुरुनपि।**
**क्रुद्ध परुषया वाचा नरः साधून् अधिक्षिपेत्॥**

( वा० रामायण, सुंदरकांड, ५५।५ )

"कौन क्रोधी पाप नहीं करता? क्रुद्ध व्यक्ति तो गुरु-जनों की भी हत्या कर देता है। कुपित मनुष्य अपनी कड़ुवी वाणी से सज्जनों का भी तिरस्कार कर देता है।"

असत्य, कड़ुवी व अश्लील वाणी द्वारा संसार में कितने अनर्थ हुए होते हैं वा होंगे, इसका विवरण देना पुस्तक का कलेवर ही बढ़ाना है। क्रोध-जनित कटु वाणी द्वारा हम निकट सम्बन्धियों व मित्रों से विगाड़ कर बैठते हैं, पड़ोसियों को रुष्ट कर देते हैं तथा अन्य सामाजिक जनों के स्नेह व सद्भाव से वंचित हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि जिन लोगों के सहयोग से हमारी जीवन-यात्रा सुखद हो सकती थी, उन्हें हम अपने से दूर कर देते हैं। फलतः, जीवन में हमें कोई सच्चा यार–मददगार दिखाई नहीं देता।

सहनशीलता के अभाव तथा क्रोधी स्वभाव के कारण साधारण सी बात गृहस्थी की सुख-शान्ति में कैसे दियासलाई लगाती है, इस बात को रीति-कालीन हिन्दी-कवि लक्ष्मीवल्लभ ने एक रोचक पद्य में यों प्रस्तुत किया है—

**कहा भोजन आज तो खारो भयो,**
**अधिको तुम लौन धुं काहे कु डारो।**
**बात सुनै तै सुनी ह्वै लगी,**
**हम नांहि करैं तुम्हहीं ज सँवारो॥**

धिग् पापन तूँ हम तूँ ज कहे,
धिग पापी है तूँ तेरो बाप हत्यारो।
'राज' कहै कलहो दिन को,
तिन तो गृह को मुह कीजयै कारो ॥[1]

(सवैया बावनी, २३)

"पति बोला—आज तुम ने नमक इतना क्यों डाल दिया है ! सारा भोजन खारा हो गया है। पति की बात सुन पत्नी भुन गई और बोली—हम नहीं बनाया करेंगी, स्वयं ही पका लिया करो। पति का भी पारा चढ़ गया और बोला—तुझ पापिन को धिक्कार है जो हमें ऐसा कहती है। पत्नी बोली—पापी तू है, धिक्कार तुझे है, तेरा पिता भी हत्यारा है। 'राजकवि' (लक्ष्मीवल्लभ) कहते हैं, जिन घरों में आये दिन ऐसे कलह होते हैं, उनका तो मुँह काला कर देना चाहिए।"

## २. मार-पीट द्वारा

जब अपराधी का अपराध असाधारण होता है, तब केवल कठोर वचन कहने से क्रोधी को शान्ति नहीं मिलती। उसका जी चाहता है, इस दुष्ट को अधिक दंड देना चाहिए, ताकि पुनः इस प्रकार का अपराध वा पाप न करें। इसलिए जहाँ वह वाणी से बाण-वर्षा करता जाता है, वहाँ मुक्कों व ठोकरों से भी उसकी खबर लेता है। कटु वचन वा अश्लील गालियाँ अपराधी का अपमान व हृदय-वेधन तो करती हैं, परन्तु उसे कोई कायिक कष्ट नहीं पहुँचाती। उसे दैहिक दुःख देने को घूँसों, लातों व डंडों का प्रयोग किया जाता है। यदि अपराधी निर्बल हो तो अपमान के घूँट पी तथा लात-मुक्कों की मार खा जाता है, परन्तु यदि सबल हो तो वह भी वाणी व हाँथ-पाँव का निःसंकोच प्रयोग करने लगता है। इस प्रकार क्रोध मार-पीट का रूप धारण कर लेता है, जिसमें कभी तो अपराधी (पीड़क) और कभी पीड़ित व्यक्ति को न्यून वा अधिक कष्ट भुगतना पड़ता है।

## ३. हत्या द्वारा

यदि अपराधी वा पीड़क व्यक्ति का अपराध बहुत ही घोर, घृणित वा जघन्य हो तो पीड़ित व्यक्ति की व्यथा न गाली-गलौज से शान्त होती है न

१. "हिन्दी में नीति काव्य का विकास", पृ० ४६७।

मार-पीट से। तव तो उसकी कामना यही होती है कि ऐसे पापी के प्राण लेकर पृथ्वी का भार हलका कर दिया जाय। यदि क्रोध और भी उग्र हो तो उस पापी के परिवार के सारे ही सदस्यों का सफाया करने की लालसा प्रबल हो उठती है। ऐसी क्रोध-जन्य पापि-हत्याओं के समाचार आये दिन समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिलते ही रहते हैं। कभी किसी चोर-डाकू को पकड़ कर जनता ही यम-लोक पहुँचा देती है; कभी बच्चों के अपहरणकर्ताओं को लोग तत्काल प्रेत-पुरी पहुँचा देते हैं, और कभी-कभी कन्याओं को सताने वाले गुण्डों को वीर ग्रामीण जन जीवित ही जला डालते हैं। आवश्यक नहीं कि ऐसा उग्र क्रोध चोर, डाकू आदि पर ही आये। सामान्य घरों में भी कभी-कभी ऐसे अवसर उपस्थित हो जाते हैं, जब किसी एक सदस्य की भूल से मनुष्य मानसिक संतुलन खोकर सभी सदोष व निर्दोष सदस्यों का सफाया कर डालता है। क्रोधी व्यक्ति की उस समय की मानसिक स्थिति का वर्णन कवि कृष्ण मिश्र ने इन शब्दों में किया है—

**केयं माता पिशाची क इव ही जनको भ्रातरः केऽत्र कीटाः,**
**वध्योऽयं बन्धुवर्गः कुटिलविटसुहृच्चेष्टिता ज्ञातयोऽपि।**
**आगर्भं यावदेषां कुलमिदमखिलं नैव निःशेषयामि,**
**स्फूर्जन्तः क्रोधवह्नेर्न दधति विरतिं तावदंग स्फुलिंगाः॥**

(प्रबोध चन्द्रोदय नाटक २।३३)

"यह माता कैसी पिशाची है! पिता कितना दुष्ट है! ये भाई कैसे कीड़े हैं! यह बन्धु-जन तो वध के योग्य हैं। ये अपनी बिरादरी के लोग तो अत्यन्त लंपट हैं। जब तक मैं इन सबके कुल को, इनके गर्भस्थ बालकों सहित, नष्ट नहीं कर डालता, तब तक मेरे शरीर में जलती हुई क्रोधाग्नि की चिनगारियाँ शान्त नहीं होगी।"

माता-पिता। बहिन-भाई, गुरु-आचार्य कितने ही प्रिय क्यों न हों, प्राणों से अधिक प्यारे तो नहीं होते। जब क्रोधान्ध व्यक्ति अपने प्राण तक लेने को तुल जाता है तब भला दूसरों की चिन्ता क्या करेगा! इसी बात को एक संस्कृत-कवि ने यों कहा है—

**हिंस्यात् क्रोधादवध्यांस्तु वध्यान् संपूजयीत च।**
**आत्मानमपि च क्रुद्धः प्रेषयेद् यमसादनम्॥**

"क्रुद्ध मनुष्य क्रोध-वश होकर अवध्यों का वध कर डालता है और वध्यों की (भविष्य में बदला लेने के लिए वर्तमान में) पूजा भी करता है और तो और, कुपित व्यक्ति अपने आपको भी यमलोक में पहुँचा देता है।"

क्रोधी द्वारा यह हत्या घोर-पापियों तथा अपराधियों तक ही सीमित नहीं रहती। जब वे अपने विरोधी की साक्षात् हत्या करने में अपने को असमर्थ पाते तब उन्हें दुःख पहुँचाने के लिए उसके किसी निरीह व निर्दोष बच्चे आदि की हत्या कर देते हैं वा अपने पास-पड़ोस के किसी बच्चे की हत्या कर उस हत्या के अपराध में अपने विरोधी को फँसाने का उद्योग भी करते हैं। ऐसी निन्दनीय घटनाओं के समाचार भी अनेक बार अखबारों में पढ़ने को मिलते ही हैं।

### ८. अन्य अपराधों द्वारा

दुःखदायी से प्रतिशोध लेना क्रोध का उद्देश्य है। वह बदला कुवचन, ताड़न तथा हनन द्वारा ही नहीं, अन्य उपायों से भी लिया जा सकता है। उदाहरणार्थ, दो पड़ोसियों का परस्पर वैर है। वे सुशिक्षित होने के कारण, हत्या करना तो दूर, कुवचन तथा मार-पीट का भी आश्रय नहीं लेते। हो सकता है कि उनमें से कोई एक किसी-न-किसी रूप से दूसरे को दुःख देने का उपाय ढूँढ़ता रहे। यदि एक पड़ोसी कोई कार्य विधिविरुद्ध कर रहा हो तो दूसरा गुप्त रूप से पुलिस को सूचित कर दे वा उसकी पत्नी, कन्या आदि का किसी अन्य द्वारा अपमान करा दे, आदि-आदि।

## शासकों के कोप के परिणाम

बल और क्रोध का सम्बन्ध घनिष्ठ हैं। प्रायः सबल प्राणी निर्बल पर क्रोध करता है और निर्बल जैसे-तैसे अपनी जान बचाने का उद्योग। परन्तु यदि सबल, निर्बल पर अकारण ही क्रोध करता रहे, तो निर्बल भी अपने सहायकों की सहायता से, सबल को सीधा करने के लिए सचेष्ट हो ही उठता है। शासकों के पास भारी सेनाएँ तथा असंख्य शस्त्रास्त्र होते हैं। अतः वे उनकी सहायता से अपनी प्रजा पर भी शासन करते हैं और विदेशी शक्तियों से स्व-राज्य की रक्षा वा निर्बल पड़ोसियों का राज्य हड़पने के लिए लोहा लेने को सदा सक्रिय रहते हैं।

यदि शासक सदाचारी व प्रजाहितैषी हो और प्रजा अनुशासनप्रिय तो शासन सुचारु रूप से चलता है और राजा-प्रजा दोनों सुखी रहते हैं। किन्तु यदि शासक दुराचारी, स्वार्थी और प्रजापीड़क हो वा प्रजा उद्दण्ड, अनुशासनहीन और अपराधप्रिय हो तो दोनों को एक दूसरे पर क्रोध आता रहता है। ऐसी दशा में प्रायः तो शासक अपनी सबल सैन्य-शक्ति के द्वारा, प्रजा-जनों को पीड़ित करता रहता है और कभी-कभी प्रजा-जन सशस्त्र क्रान्ति द्वारा राजवंश को ही निर्मूल कर देते हैं।

इससे भी भयंकर क्रोध की विध्वंसक लीला वहाँ देखी जाती है; जहाँ दो वा अधिक देशों के शासक क्रोध-वश परस्पर युद्ध छेड़ देते हैं। ऐसे युद्धों में लाखों युवक सैनिक प्राणों से हाथ धो बैठते हैं, असंख्य स्त्रियाँ सौभाग्यहीन हो जाती हैं तथा अगणित बच्चे अनाथ रह जाते हैं। इनके अतिरिक्त जो सम्पत्ति स्वाहा होती है, उसका ठीक-ठीक मूल्य आँकना असम्भव ही होता है।

पृथ्वी पर मनुष्य के आविर्भाव से लेकर आजतक राजाओं के क्रोध से धन-जन की जितनी क्षति हुई, उसकी गणना करना टेढ़ी खीर है। तो भी हम इतिहास के कुछ नृशंस राजाओं के क्रोध के कुपरिणामों का वर्णन करने से पहले कन्फ्यूशस और वृद्धा का वह किस्सा प्रस्तुत करना चाहते हैं जिससे शासकों के अत्याचार की अच्छी झलक मिल जाती है।

### कन्फ्यूशस व वृद्धा

जब चीन का महर्षि कन्फ्यूशस अपने पितृ-राज्य 'ली' की दुरवस्था से दुःखी होकर पड़ोसी राज्य 'त्सी' को जा रहा था, तो मार्ग में शून्य पर्वतश्रेणी में उसे एक रोती हुई वृद्धा मिली। कारण पूछे जाने पर उसने कन्फ्यूशस को बताया "एक चीते ने क्रमशः मेरे ससुर, पति व इकलौते पुत्र को मार डाला है।" जब कन्फ्यूशस ने इतना कष्ट सहने पर भी वहाँ पड़ी रहने का कारण पूछा तो वह बोली—"अत्याचारी शासन की अपेक्षा हिंस्र पशुओं में रहना कहीं अच्छा है।" वृद्धा के वचन सुन कन्फ्यूशस शिष्यों से बोला—"इस गुरु की बात गाँठ बाँध लो कि अत्याचारी शासन चीते से अधिक भीषण होता है।"

### श्री त्रिपृष्ठ वासुदेव

एक बार राजा त्रिपृष्ठ वासुदेव की सभा में कुछ ऐसे गवैये उपस्थित हुए जो गान-विद्या में गन्धर्वों के भी कान काटते थे। राजा उनके मधुर गान पर ऐसा मुग्ध हुआ कि उसने प्रसन्न होकर उन्हें निहाल व माला-माल कर दिया।

एक बार जब राजा स्व-शयनागार में सोने लगा, तब उसने अपने शयनागार के सेवक को आज्ञा दी कि जब मैं सो जाऊँ तो इन गवैयों को वापस भेज देना। नौकर ने 'बहुत अच्छा जी' तो कह दिया, परन्तु स्वयं उनके गान पर ऐसा मुग्ध हो गया कि स्वामी के सो जाने पर भी उनके गीत सुनता ही रहा। कुछ काल बाद जब राजा की आँख खुली तो संगीत पूर्ववत् जारी था। राजा ने कारण पूछा तो सेवक ने सच-सच बता दिया। राजा को क्रोध तो बहुत आया परन्तु उस समय वह शांत रहा।

अगले दिन जब राजा सभा में सिंहासन पर आसीन हुआ, तब पूर्व रात्रि की घटना स्मरण आ गई। हो तो सेवक और उल्लंघन करे स्वामी की आज्ञा का, यह ध्यान आते ही उसका क्रोध उद्दीप्त हो उठा। उसने सेवकों को आज्ञा दी कि शयनागार के सेवक के कानों में पिघला हुआ सीसा और ताँबा डाला जाय क्योंकि उसने कर्ण-रस के वश होकर मेरे आदेश की अवहेलना की थी। ऐसा ही किया गया और सेवक असह्य पीड़ा झेलता हुआ संसार से चल बसा।

राजा के क्रोध के कारण सेवक को साधारण अपराध-वश प्राणों से हाथ धोने पड़े। परन्तु राजा की आत्मा को भी, इस क्रोध का फल तब भुगतना पड़ा, जब वह बाद में भगवान महावीर स्वामी की काया में आई। तब एक किसान ने उनके कानों में लकड़ी के कील ठोंके जिससे उन्हें अपार वेदना सहन करनी पड़ी।

## साइरस का नदी पर क्रोध

क्रोधान्ध व्यक्ति चेतन पदार्थों को ही अपना लक्ष्य नहीं बनाता, जड़ वस्तुओं पर भी गुस्सा उतार कर विवेकी लोगों के परिहास का पात्र बनता है। ईरान के सम्राट् साइरस ( ई० पू० छठी शती ) ने बेबिलोन पर आक्रमण के समय ऐसा ही किया था। पथ में पड़ने वाली गाइंडस नदी के प्रवाह में उसके रथ का एक श्वेत घोड़ा बह गया। कुपित सम्राट् ने बेबिलोन की विजय का विचार वहीं छोड़, दरिया को दंडित करने का दृढ़ संकल्प कर लिया और सारी सेना की शक्ति को नदी को सुखाने में लगा दिया। उसने नदी के प्रवाह को ३६० छोटी-छोटी धाराओं में विभाजित तो कर दिया परन्तु उसने वह समय व अवसर खो दिया जो समर में विजय पाने के लिए सुवर्ण से कम कीमती नहीं होता।

## कैम्बाइसस द्वारा स्व-सैनिक-वध

ईरान के राजा साइरस के पुत्र, कैम्बाइसस ( शासन ५२९-५२२ ई. पू. ) के क्रोध का क्या कहना ! उसने कुपित होकर सीरिया देश की समस्त प्रजा के नासिका-छेदन का आदेश दे दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप वह देश 'नक-कटों का देश' नाम से प्रसिद्ध हो गया। सम्भवतः आप यह कहें कि उसने तो उन पर करुणा ही की, क्योंकि उसके व्यापक संहार का आदेश नहीं दिया, तो यह सत्य नहीं। कारण, वह नये-नये प्रकार के क्रूर दंड देकर एक अनोखे आनन्द का अनुभव करता था।

इसी शासन ने इथिओपिया पर इस कारण आक्रमण कर दिया था कि वहाँ के वासियों ने इसकी दासता बाहु फैलाकर नहीं, केवल मुख से बोलकर स्वीकार की थी। उसी आक्रमण के दुर्गम मार्गों में जब सैनिकों की खाद्य सामग्री समाप्त हो गई तब इसने प्रत्येक दसवें सैनिक का वध करा सेना को उसे खाने का आदेश दिया, परन्तु अपने सरस व बढ़िया खान-पान में कोई न्यूनता न आने दी।

## हिप्पियास द्वारा हितैषियों की हत्या

यूनान के एथेंस नगर का राजा हिप्पियास ( ई० पू० छठी शती ) अत्यन्त क्रूर था। एक व्यक्ति ने उसके प्राण लेने का दृढ़ संकल्प किया, परन्तु दुर्भाग्य-वश लक्ष्य-पूर्ति से पूर्व ही पकड़ लिया गया। तब क्रुद्ध हिप्पियास ने उसे अपने साथियों के नाम बताने के लिए अनेक असह्य कष्ट दिये। इस पर उसने हिप्पियास के उन घनिष्ठ मित्रों के नाम झूठ-मूठ ले दिये, जो हिप्पियास के सच्चे हितैषी थे और वहाँ पर उपस्थित भी थे। वह जिस-जिस की ओर संकेत करता था, हिप्पियास उसी क्षण उस-उसकी हत्या करवाता जाता था। अन्त में जब हिप्पियास ने और किसी का भी नाम पूछा तो वह बोला—"अब अकेले आप ही रहते हैं। शेष तो एक भी ऐसा रहीं रहा जो आपके कुशल की कुछ भी कामना करता हो।" हिप्पियास के कोप का परिणाम यह निकला कि विवेक-विहीन होकर उसने अपने सब सच्चे हितैषियों का वध करा दिया।

## सिकन्दर द्वारा स्व-मित्रघात

सिकन्दर जब ईरान में था, तब उसके पास यूनान के बहुत ही बढ़िया

फल पहुँचाये गये। उन्हें देखने तथा खाने के लिए उसने अपने बाल-सखा क्लाइटस को तत्काल बुलवा भेजा। क्लाइटस देवताओं को भेड़ों की बलि चढ़ाने जा रहा था, परन्तु सखा का सन्देश सुन तुरन्त उसके पास जा पहुँचा। सह-भोज के पश्चात् सब लोगों ने खूब मदिरा-पान किया। कुछ लोगों ने वहाँ ऐसी कविताओं का गाना आरम्भ कर दिया जिनमें 'असभ्य' लोगों द्वारा पराजित कुछ यूनानी सेनापतियों की हँसी उड़ाई गई थी। उपस्थित वृद्ध लोगों ने उन कविताओं के रचयिताओं व गायकों की निन्दा की, किन्तु सिकन्दर तथा अन्य युवकों ने गायकों को बढ़ावा दिया। क्लाइटस पराजित यूनानी सरदारों की यह निन्दा सह न सका और उसने खिल्ली उड़ाने वालों की अपेक्षा उन्हें अधिक योग्य बताया। इस पर जब सिकन्दर ने क्लाइटस पर कायरता का आरोप लगाया तब क्लाइटस ने कहा—"जब देव-पुत्र ( सिकन्दर ) स्पिथ्रीडेटीज़ की तलवार से भाग रहे थे, तब इसी कायर ने आपकी प्राण-रक्षा की थी। यह मकदूनियन लोगों के बलिदान का ही परिणाम है कि आप सम्राट् बन गये हैं तथा अपने को फ़िलिप का पुत्र न मानकर एमन देवता का पुत्र कहते फिरते हैं।"

अपने मित्र के मुख से इस प्रकार के वचन सुन सिकन्दर क्रोधोन्मत्त हो गया। उसने एक सेब उठा क्लाइटस पर दे मारा और आस-पास स्व-खड्ग को खोजने लगा। क्लाइटस के मित्र उसे बाहर ले गये, परन्तु वह दूसरे द्वार से पुनः अंदर आकर उसी कविता की कुछ पंक्तियाँ व्यंग्यपूर्वक पढ़ने लगा। सिकन्दर यह सह न सका। उसने उछल कर एक सैनिक से बर्छी छीनी तथा क्षण-मात्र में क्लाइटस के सीने के पार कर दी। क्लाइटस के चीख़ मार कर गिरते-मरते ही सिकन्दर के होश ठिकाने आ गये। उसने क्लाइटस की काया से बर्छी खींच कर अपने कंठ में चुभोनी चाही कि अंग-रक्षकों ने हाथ पकड़ लिया। सारी रात व अगला संपूर्ण दिन वह अपने क्रोधजनित पाप पर आँसू बहाता रहा और जीवन-भर स्वमित्रघात पर पश्चात्ताप करता रहा।

## शिह द्वारा विद्वानों का वध

चीन-वंश का संस्थापक चीनी सम्राट् शिहह्वंग-ती प्राचीन ग्रंथों का प्रबल विरोधी था। वह चीन का नव-निर्माण अपने ही विचारों के अनुसार करना

चाहता था। ई० पू० २१३ में उसके आदेश से सब प्राचीन ग्रंथ जला डाले गये; बचे केवल वे ही जिन्हें स्वयं उसने छाँटा था और जिनमें उसके पूर्वजों का विवरण था। उसने ४६० विद्वानों को इस कारण जीवित ही भूमि में गड़वा दिया कि उन्होंने अपनी मूल्यवान पांडुलिपियाँ देने से इनकार किया था। तत्पश्चात् जिन लोगों के पास प्रतिषिद्ध पुस्तकें पाई गईं; उन्हें चीन की बड़ी दीवार पर दासों के रूप में कार्य करने पर विवश कर दिया गया।

## ग्नायुस पाइसो

सीरिया के राज्यपाल पाइसो ( प्रथम शती ई० ) ने एक बार एक सैनिक को इस कारण मृत्युदंड दिया कि वह छुट्टी के पश्चात् एक साथी के बिना ही लौटा था। पाइसो ने उस पर आरोप यह लगाया कि तुमने उसे मार दिया है। जब उस सैनिक ने स्व-साथी ढूँढ़ने के लिए कुछ मुहलत माँगी तो उसने 'न' कर दी। जब दुर्ग के बाहर उसे मृत्यु-दंड देने लगे, तब ठीक उसी समय संयोगवश उसका लुप्त सखा वहाँ उपस्थित हो गया। इस पर फाँसी देने वाला अधिकारी दोनों मित्रों को लेकर पाइसो के पास पहुँचा, ताकि निरपराध सैनिक को मुक्त कर दिया जाय। परन्तु क्रुद्ध पाइसो ने इसे अपने आदेश का उल्लंघन मान, दोनों सैनिकों को मौत के घाट उतारने की आज्ञा दे दी। इससे अधिक अन्याय क्या हो सकता था? परन्तु कुपित पाइसो का इतने से ही परितोष नहीं हुआ। उसने उस अधिकारी का भी वध करवा दिया जो निर्दोष सैनिक को मुक्त करवाने के लिए पाइसो के पास पहुँचा था। दूसरे सैनिक पर दोष यह लगाया गया कि वह प्रथम के दंड का कारण बना था। इस प्रकार वह एक अविवेकी शासक के क्रोध के कारण तीन निरपराध पुरुषों को प्राणों से हाथ धोने पड़े।

## चंगेज़ खाँ

'चंगेज़ खा' ( ११५५–१२२७ ई० ) नाम से इस भ्रम की संभावना है कि वह कोई चंगा मुसलमान बादशाह हुआ होगा, परन्तु सत्य मूल के सर्वथा विपरीत है। वह मंगोल ( मुगल ) जाति का निरक्षर तथा निष्ठुर सम्राट् था। उसे संसार का 'क्रूरतम व्यक्ति' तथा 'खुदा का कहर' भी कहा जाता है। उसका विस्तृत विवरण उसके रोमांचकारी-चरितों में देखा जा सकता है। यहाँ

' उसके क्रोध की एक झाँकी मात्र प्रस्तुत की जा रही है, जिससे अनुमान हो
के कि किसी क्रोधी शासक की विवेकहीनता से संसार की कितनी भारी क्षति
सकती है।

चंगेज़ खाँ ने चीन, मंचूरिया, कोरिया, रूस आदि पर अधिकार कर
या था। तत्पश्चात् निम्नलिखित घटना ने उसे पश्चिम की ओर बढ़कर
ण-सागर तक पर आधिपत्य जमाने का अवसर दे दिया। उन दिनों सुसमृद्ध
ता राज्य की राजधानी तमगज़ को चंगेज़ खाँ ने चार वर्ष तक घेरा डाल
: जीत लिया। उस युद्ध में इतना अधिक नर-सहार हुआ कि इतिहास-
ाओं के अनुसार वर्ष-भर पशु-पक्षी उन्हीं का आहार करते रहे तथा साठ
स्र कन्याओं ने स्व-संमान-रक्षा के लिए आत्महत्या कर ली। खारिजम के
सक सुलतान मुहम्मद ने अपना दूत चंगेज़ खाँ के पास भेजा। चंगेज़ खाँ ने
का उचित स्वागत-सत्कार किया तथा सुलतान से मित्रता के लिए बहुमूल्य
हार भेजे। तत्पश्चात् चंगेज़ ने स्वदूत के साथ सोना, चाँदी, रेशम आदि से
हुए पाँच सौ ऊँट व्यापार के लिए खारिज़म राज्य में भेजे। लोभवश
तान मुहम्मद ने उन व्यापारियों तथा ऊँट हाँकने वालों को मरवा कर सब
त्ति हथिया ली। दैवरक्षित एक ऊँटवान ने जैसे-तैसे वापस पहुँचकर सब
ान्त चंगेज़ को सुनाया। इस विश्वास-घात से चंगेज़ की क्रोधाग्नि धधक उठी
र उसने असीम सैन्य-संग्रह कर खारिजम साम्राज्य को सर्वथा समाप्त करने
लिए १२१९ में कूच कर दिया। अनेक वर्षों तक वह युद्ध चलता रहा। दस
ख से अधिक की जनसंख्या वाला नगर बुखारा जलाकर राख कर दिया
ा। राजधानी समरकन्द तहस-नहस कर दी गई। दस लाख की आबादी में से
ास सहस्र लोग ही बच सके। इसी प्रकार हिरात, बलख़ आदि नगरों का
न ही शेष रहा। करोड़ों मनुष्य मार डाले गये तथा कला-कौशल व सभ्यता
अमूल्य रचनाएँ मिट्टी में मिला दी गईं। अशिया नामक दुर्ग के घेरे के समय
माता ने अपने मृत पुत्र का सूखा मांस ढाई सौ मोहरों में बेचा। दैव की
ला देखिये कि सिकन्दर के समान, यह क्रूरतम मानव भी सकुशल स्व-
ाधानी में पहुँच न पाया और मार्ग में ही काल के गाल में समा गया।

## ाकू खाँ ( १३वीं शती ई० )

उपर्युक्त चंगेज़ खाँ के पश्चात् उसका पुत्र ओगताई, 'खान महान्' बना।

वह तो पिता की अपेक्षा दयालु व शान्तिप्रिय था, परन्तु उसके पुत्र 'खान महान्' मंगू के शासन-काल में विजय व विनाश की लहर पुनः चल पड़ी। मंगू का भाई हलाकू ईरान का राज्यपाल था। उसने अपने दूत भेजकर बग़दाद के खलीफ़ा को फ़टकारा कि यदि तुमने पुनः वचन-भंग किया तो राज्य से हाथ धो बैठोगे। न केवल ख़लीफ़ा ने उस चेतावनी की कोई चिन्ता न की, बल्कि बगदादी लोगों ने मंगू के दूतों का अपमान भी कर दिया। इस दुर्व्यवहार से हलाकू का लहू उबल पड़ा और उसने ४० दिनों के घेरे के बाद बग़दाद पर अधिकार कर ख़लीफ़ा व उसके बन्धु-बान्धवों का वध कर दिया। उसका क्रोध यहीं समाप्त नहीं हुआ। कई सप्ताहों की मार-काट में १५ लाख नागरिक हलाक कर दिये गये तथा पाँच शताब्दियो में संगृहीत सब सम्पत्ति लूट ली गई। इसी प्रकार बग़दाद को ही नहीं, एलप्पो, एडिस्सा और अन्य नगरों की ईंट बजा दी गई।

## राजा चार्ल्स

स्पेन का राजा चार्ल्स ( १६ शती ई० ) रोमन कैथोलिक ईसाई था। जब लूथर के सुधारवादी विचारों से प्रभावित होकर प्रोटेस्टेंटों ने कैथोलिक धर्म का परित्याग आरम्भ कर दिया, तब चार्ल्स के क्रोध का पारा आकाश को छूने लगा। वह प्रोटेस्टेंटों को खोज-खोज कर कारा में डालने लगा, फाँसी पर चढ़ाने लगा, जीवित जलाने लगा तथा खौलते तेल में उबालने लगा। उन्हें पीड़ित करने के लिए नये-नये आविष्कार किये गये और उनके द्वारा प्रोटेस्टेंटों को ऐसी व इतनी वेदनाएँ दी गईं कि उन्हें विस्तार से लिखते हुए कलम का का कलेजा भी काँप उठता है।

## नादिरशाह

नादिर कुली खान का जन्म ईरान के खुरासान नामक स्थान में सन् १६८७ में भेड़-चर्म से टोपियाँ तथा चोंगे बनाने वाले एक कारीगर के घर में हुआ था। बड़ा होने पर यह लुटेरा बन गया तथा अपने साथियों की सहायता से १७३६ ई० में ईरान का बादशाह बन बैठा। शीघ्र ही इसने अफ़गानिस्तान पर अधिकार कर लिया तत्पश्चात् १७३९ ई० में भारत पर हल्ला बोल दिया। बीस सहस्र मुगल सैनिकों के हत होने पर मुहम्मदशाह ने हार स्वीकार कर

ली। करनाल के युद्ध में विजयी होकर नादिरशाह शान से दिल्ली में प्रविष्ट हुआ और लाल किले के अंदर दीवाने-खास के पास ठहरा। संग्रामों में तो सहस्रों सैनिकों का संहार हुआ ही करता है, परन्तु एक व्यक्ति के क्रोध से किस प्रकार निर्दोष तथा निहत्थे लाखों नागरिकों का संहार कर दिया जाता है, यही यहाँ दिखाना हमारा अभीष्ट है।

एक दिन नादिरशाह के कुछ सैनिकों ने अन्न-विक्रेताओं को नाम-मात्र मूल्य पर अनाज देने पर इतना विवश कर दिया कि दुकानदारों की उनसे मुठ-भेड़ हो गई। उसी समय किसी ने बे-पर की उड़ा दी कि नादिरशाह मर गया है, जिससे नगर में गड़बड़ी मच गई। उस समय उचित तो यह था कि नादिरशाह उक्त घटना की छान-बीन कर दोषियों को दंड देता, परन्तु उसने जोश से होश खोकर निहत्थे नागरिकों के कत्ले-आम का आदेश दे दिया। प्रातः ९ से दोपहर २ बजे तक नादिरशाह के क्रूर सैनिकों ने एक लाख बीस सहस्र नागरिकों को तलवार की धार से मौत के घाट उतार दिया। प्रजाजनों के गगन-भेदी हाहाकार से दुःखित मुहम्मद शाह ने जब अपने कुछ विश्वसनीय दरबारियों द्वारा नादिरशाह से यह नर-संहार रोकने की दीनता-पूर्वक प्रार्थना की तब उस निर्दय के दिल में दया का उदय हुआ। किन्तु लूट-खसूट तब भी जारी रही और नादिरशाह ७० करोड़ रुपये लेकर भारत से विदा हुआ। अन्तिम दिनों में वह पागल होकर ईरानी प्रजा पर भी अँधेर करने लगा और एक घातक के वार से प्रेतपुरी को सिधार गया। इसी घोर तथा घृणित घटना के कारण आज भी अत्याचार को 'नादिरशाही' नाम से पुकारते हैं।

## दो महायुद्ध

संयोग से हम ऐसी (बीसवीं) शती में विद्यमान हैं जिसने मानवीय इतिहास के दो अत्यन्त संहारक संग्रामों को देखा है। वे इतने अर्वाचीन हैं कि उनका विस्तृत विवरण देना अनुचित प्रतीत होता है। तो भी इतना उल्लेख तो आवश्यक ही है कि प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८ ई०) में ९०,६५००० और द्वितीय महायुद्ध में (१९३९-४५ ई०) १,२४,४८००० वीर जवान काल के गाल में समा गये। जो घायल व अपंग हुए उनकी संख्या इनसे कहीं अधिक है। जो युवतियाँ सदा के लिए सौभाग्य से और जो बच्चे सर्वदा के लिए पितृ-

स्नेह से वंचित हो गये, उनकी हृदय-व्यथा को वही अनुभव कर सकते हैं, जिन पर आ बनी थी। उक्त हानि के अतिरिक्त जो सम्पत्ति उन नौ वर्षों में मिट्टी में मिल गई उसके मूल्य का तो अनुमान चित्र-गुप्त ही लगा सकते हैं।

## याह्या खाँ और टिक्का खाँ

१९४७ से १९७१ ई० तक पूर्वी बंगाल पाकिस्तान का एक प्रान्त रहा। इस अवधि में पश्चिमी पाकिस्तानियों ने पूर्वी बंगाल का इतना शोषण किया कि वहाँ के वासी स्वतंत्र होने के लिए व्याकुल हो उठे। पाकिस्तानी शासकों ने वहाँ के लोगों की उचित शिकायतों को दूर करने के बजाय, दमन की नीति का आश्रय लिया। ऊपर से वे पूर्वी पाकिस्तान के सर्वप्रिय नेता शेख़ मुजीब से सुलह-सफ़ाई की बातें करते रहे, परन्तु अन्दर-ही अन्दर उन्होंने असीम सैनिक सामग्री वहाँ भेज दी, ताकि बंगाली पाकिस्तानियों को अविस्मरणीय सबक सिखाया जा सके। उन्होंने शेख को बन्दी बना पश्चिमी पाकिस्तान भेज दिया तथा निहत्थी जनता का नाम-निशान मिटाने के लिए नर-संहार आरम्भ कर दिया। पाकिस्तान के राष्ट्रपति याह्या खाँ के आदेश से जनरल टिक्काँ ख़ाँ ने वहाँ ऐसे अमानुषिक अत्याचार किये कि परलोकवासी चंगेज़ खाँ और हलाकू खाँ की आत्माएँ भी उनसे हार मान गईं। इस दमन-चक्र में लगभग तीस लाख लोग मृत्यु का ग्रास बने, सहस्रों युवती कन्याओं तथा महिलाओं के सतीत्व नष्ट किये गये तथा अनेक नगरों की अरबों रुपयों की सम्पत्ति स्वाहा कर दी गई। परन्तु याह्या खाँ और टिक्का खाँ के क्रोध का परिणाम उनकी आशा के विपरीत निकला। करोड़ों वीर बंगालियों के विद्रोह का सामना पाकिस्तानी सेना कहाँ तक कर सकती थी! निदान, टिक्का खाँ दुम दबा कर पाकिस्तान भाग गया और पूर्वी बंगाल, बँगलादेश के नाम से एक नवीन स्वतंत्र राष्ट्र बन गया।

## क्रोध के सुपरिणाम

क्रोध के कुपरिणामों के उल्लेख के पश्चात् अब संक्षेप में यह भी देख लेना चाहिए कि क्रोध के कभी सुपरिणाम भी होते हैं वा नहीं। पीछे 'क्रोध'-शीर्षक अध्याय में हमने 'उचित क्रोध' का भी कुछ वर्णन किया। यदि उस पर पुनः दृष्टि डाल ली जाय तो यहाँ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं रहती।

आदर्श समाज तो वह है जिसमें सब लोग सुशिक्षित, धार्मिक, न्यायप्रिय व अनुशासन-प्रिय हों। प्रत्येक व्यक्ति अपना दायित्व भी समझे और अधिकार भी। प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने कार्य में ईमानदारी से लगा रहे और दूसरे पर कोई अन्याय वा अत्याचार न करे। परन्तु ऐसा समाज कभी रहा भी है, इसमें सन्देह है। प्रायः तो संसार के सभी प्राचीन ग्रन्थों में राग-द्वेष की घटनाएँ भी मिलती हैं और लड़ाई-भिड़ाई के प्रसंग भी। अलबत्ता, उपनिषद् में वर्णन आता है कि राजा अश्वपति ने सीने पर हाथ रखकर यह कहने का साहस किया था—

**न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।**
**नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥**

( छान्दोग्योपनिषद् ५।११।५ )

"मेरे राज्य में न कोई चोर है, न कंजूस और न शराबी। न कोई यज्ञहीन है, न विद्याहीन, न व्यभिचारी, व्यभिचारिणी तो कहाँ ?"

यदि यह सत्य है तो सचमुच स्तुत्य है। परन्तु यह भी तो देखना होगा कि वह राज्य कितना लम्बा-चौड़ा था और उसकी जन-संख्या कितनी थी। शेष भारत-भूमि वा भूमि पर उसी काल में कोई चोरी, डाका, अत्याचार, व्यभिचार आदि कुकर्म होते थे वा नहीं ? यदि होते थे तो क्या प्रजा-जन उनका विरोध करते थे वा नहीं ? क्या राजा उन अपराधियों को दण्डित करते थे वा नहीं ? वस्तुतः देखा जाय तो राजदण्ड राज-क्रोध का ही दूसरा नाम है। शास्त्रों में ठीक कहा है कि राज-दण्ड के विना तो बलवान् निर्बलों को वेसे ही खा जायँगे, जैसे वड़ी मछली छोटी मछली को। आज भी तो मुट्ठी-भर गुण्डे सहस्रों सभ्य नागरिकों की जिन्दगी हराम किये रखते हैं। भूतकाल तथा वर्तमान का इतिहास इस बात की घोषणा कर रहा है कि जिन लोगों ने क्रोध का सर्वथा त्याग कर दिया, उनका नाम-निशान जहान से मिट गया। यदि वे जीवित भी रहे तो मृतकों के तुल्य, दासों के समान। यदि राम क्रोध न करते तो क्या सीता का लौटना सम्भव था ? यदि पाण्डव शस्त्र न उठाते तो क्या खोया हुआ वैभव पा सकते थे ? यदि महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी व गुरु गोविन्दसिंह कोप न करते तो क्या उन-उन समयों में लोग

सम्मान-पूर्वक रह सकते थे ? यदि अनेक सशस्त्र गुप्त क्रान्तियाँ तथा सैनिक रोष प्रकट न होते तो क्या अंग्रेज शासकों का बिस्तर भारत से गोल होता ? यदि भारतीय सैनिक समय पर कश्मीर न पहुँचते तो क्या बचा-खुचा कश्मीर भी पाकिस्तान के अधीन न हो जाता ? यदि हम क्रोध न करेंगे तो क्या पाकिस्तान व चीन द्वारा हथियाये हुए भूभाग वापस मिल जायँगे ? कितने वर्षों तक हम प्रतीक्षा करते रहे कि पुर्तगाली हमारा प्रदेश छोड़कर वापस चले जाएँ; पर क्या सशस्त्र आक्रमण के बिना उनके कानों पर जूँ रेंगी ? यदि प्रथम महायुद्ध में मित्र राष्ट्र मिल कर जर्मन कैसर का मुकाबला न करते तो क्या सारा यूरोप जर्मनी के अधीन न हो जाता ? यदि द्वितीय महायुद्ध मे अनेक राष्ट्र संघटित हो जर्मनी, इटली व जापान से लोहा न लेते तो क्या तीनों देशों के तानाशाह सम्पूर्ण पृथ्वी को पाँव तले न रौंद देते ? विधवाओं के बच्चे क्यों बिगड़ जाते हैं ? पिताओं के क्रोध के न होने से। शिक्षणालयों के छात्र क्यों बिगड़ जाते हैं ? गुरुओं के कोप के अभाव से। प्रजा क्यों अनुशासनहीन हो जाती है ? दंड के अभाव से। हमारे उक्त कथन का तात्पर्य यह कदापि नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति परशुराम का अवतार बन जाय या बात करने से पूर्व लात जमाये। भाव इतना ही है कि स्वयं भी शान्ति-पूर्वक जीना चाहिए तथा दूसरों को भी जीवित रहने देना चाहिए। परन्तु यदि दूसरा हमें शान्त समझकर आक्रान्त करना चाहे तो हमें भी आत्मरक्षार्थ विवेक-पूर्वक कोप करने का जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त ही है।

सप्तम अध्याय

# क्रोध-विजय के उपाय

**यो मित्रं मधुनो विकार करणे संत्रास-संपादने,**
**सर्पस्य प्रतिबिम्बमङ्गदहने सप्तार्चिष: सोदर: ।**
**चैतन्यस्य निषूदने विषतरो सब्रह्मचारी चिरम्,**
**स क्रोध: कुशलाभिलाषकुशलैर्निर्मूल उन्मूल्यताम् ।।**

( सोमप्रभाचार्य : सूक्तमुक्तावली, ४५ )

उपर्युक्त पद्य में जैनाचार्य सोमप्रभ कहते हैं कि जो क्रोध विकार उत्पन्न रने में सुरा के समान है, भय उपजाने में सर्प के सदृश है, देह को दग्ध ने में आग का सगा भाई है, प्राण-हरण करने में विष-वृक्ष के तुल्य है, निज ल-मंगल के अभिलाषी लोगों को चाहिए कि उस क्रोध को जड़ से उखाड़ हैं। आचार्य के कथन का तात्पर्य इतना ही है कि जबतक क्रोध के कारणों दूर न किया जायगा, ऊपर-ऊपर से ही लीपा-पोती की जायगी, तब तक वह :-पुन: उत्पन्न होकर उपद्रव मचाता ही रहेगा। यही कारण है कि हमने क्रोध कारणों व परिणामों पर पीछे पर्याप्त विस्तार से प्रकाश डाला है। यदि । कारणों को दूर करने के लिए हम जी-जान से जुट जायँ तथा कोप के ांचकारी कुपरिणामों से सावधान हो जायँ, तो कोई कारण नहीं कि कोप पर हावी हो जाय वा हम उसे पछाड़ न सकें। इस प्रकार यद्यपि उन ्यायों के अध्ययन से प्राज्ञ पाठकों को क्रोध-विजय के लिए सुपर्याप्त संकेत ा ही गये होंगे, तो भी संक्षेप में कुछ ऐसे प्रमुख उपायों का उल्लेख उचित ता है, जिन्हें अपनाने से क्रोध को वश करने में अवश्य सहायता मिलेगी।

वे उपाय ये हैं—१. सुदृढ़ संकल्प २. विवेक ३. दैनिकी-लेखन ४. स्वास्थ्य इच्छा-संयम ६. प्रभु-भक्ति ७. अहिंसा और प्रेम ८. उदारता ९. सहन-लता १०. क्षमा ११. दया १२. नम्रता १३. वाणी-संयम १४. शरीर-संयम ५. विलम्ब १६. सत्संग १७. मित्रों से सहायता १८. ललित कलाएँ ९. तपस्वी जीवन २०. क्रोधपात्र का ध्यान २१. मुकदमेबाजी का त्याग

२२. ईर्ष्या-त्याग २३. उपेक्षा-वृत्ति २४. शान्त-वृत्ति २५. पश्चात्ताप व प्रायश्चित्त।

### १. सुदृढ़ संकल्प

क्रोध मन का रोग' है और उससे मुक्ति पाने के लिए मन का सबल सहयोग अनिवार्य है। वह सहयोग एक प्रकार का नहीं, अनेक प्रकार का है। सुदृढ़ संकल्प उसका प्रथम प्रकार है। संकल्प-शक्ति के महत्त्व को सुशिक्षित पाठक सम्यक् समझते हैं, इसलिए उसका विस्तार व्यर्थ है। तो भी प्रबुद्ध पाठक को पुन: स्मरण करा दें कि जब तक हम क्रोध पर विजय पाने का सुदृढ़ संकल्प न कर लेंगे, तब तक लक्ष्य-सिद्धि में समर्थ न हो सकेंगे। इसलिए क्रोध-विजय के इच्छुक पाठक को चाहिए कि वह दृढ़ निश्चय करे कि मैं अपने इस दोष को दूर कर के ही रहूँगा। इस निश्चय को वह प्रातः उठते समय, दिन में जब-जब अवकाश मिले तथा रात्रि को शयन से पूर्व दोहराये। केवल दोहराये ही नहीं, मन में विश्वास भी रखे कि इस मानसिक संग्राम में मैं शीघ्र ही विजय प्राप्त कर लूँगा। परन्तु स्मरण रहे कि यह संकल्प शान्त-गम्भीर आस्था-युक्त मन से लेना चाहिए, मुट्ठी बाँधकर दाँत पीसते हुए नहीं। यदि हमने सच्चे हृदय से यह संकल्प ले लिया तो हमारी स्थिति उस पहलवान के समान हो जायगी, जो लंगर-लँगोटा कस कर, विजय के विश्वास से युक्त होकर, अखाड़े में उतरने को अग्रसर होता है। इस संदर्भ में किसी प्राचीन विद्वान् का प्रस्तुत पद्य पर्याप्त प्रेरणा-प्रद सिद्ध होगा—

**आत्मैव यदि नात्मानमहितेभ्यो निवारयेत्।**
**कोऽन्यो हिततरस्तस्माद् य एनं विनिवारयेत्॥**

(व्याख्यानमाला, पृ० १७)

अर्थात् यदि मनुष्य स्वयं ही अपने आप को अमंगलों से न रोके, सो उस से अधिक उसका हितैषी दूसरा कौन है, जो उसे उनसे रोकेगा? महात्मा बुद्ध ने भी लगभग यही बात निम्नांकित गाथा में कही है—

**अत्ता ही अत्तनो नाथो, अत्ता ही अत्तनो गति।**
**तस्मा सञ्जमयत्तानं अस्सं भद्रं व वाणिजो॥**

(धम्मपद २१)

"( हे मनुष्य ), आत्मा ही आत्मा का स्वामी है, आत्मा ही आत्मा की गति है। इसलिए आत्मा को ऐसे वश में रखो जैसे भले घोड़े को बनिया।"

## २. विवेक

किसी प्राचीन विद्वान् का वचन है—

**यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं प्रज्ञया प्रतिबाधते।**
**तेजस्विनं तं विद्वांसो मन्यन्ते तत्त्वदर्शिनः॥**

( व्याख्यानमाला, पृ० १५ )

"जो पैदा हुए क्रोध को विवेक से रोक लेता है, उसे ही तत्त्वदर्शी विद्वान् तेजस्वी मानते हैं।" भाव यह कि सामान्य शत्रु को जीतने वाले योद्धा की अपेक्षा विवेक द्वारा क्रोध का विजेता अधिक वीर है। आप कह सकते हैं, श्लोक भी पढ़ लिया, भाव भी समझ लिया, परन्तु यह पल्ले नहीं पड़ा कि विवेक से क्रोध को जीतें कैसे? उत्तर यह है कि प्रभु ने प्रत्येक स्त्री-पुरुष को प्रज्ञा ( विचार-विवेक की शक्ति ) प्रदान की हुई है। धन-सम्पत्ति आदि की अपेक्षा ईश्वर का यह वर कहीं वरिष्ठ है, परन्तु सामान्य लोग उसका अपेक्षित सदुपयोग नहीं करते, इस कारण कष्ट-क्लेशों से जूझते हुए ही जीवन-यापन करते रहते हैं। परन्तु, जो उसका सदुपयोग करने में समर्थ होते हैं, निःसन्देह उनका जीवन अपेक्षाकृत अधिक सुखी व शान्त होता है। पश्चिम के प्राचीन विद्वान सिसरो ( १०६-४३ ई० पू० ) की सूक्ति है—"क्रोध का प्रयोग वही करता है जो विवेक का प्रयोग नहीं कर सकता।" मध्यकालीन हिन्दी कवि जगनिक ने भी 'आल्ह खड' में विवेक को क्रोध कम करने का साधन बताया है—

**ज्ञान घटै ठग चोर की संगति, रोष घटै मन के समुझाय।**
**पाप घटै कछु पुन्य करे, अरु रोग घटै कछु औषधि खाय॥**

( असली आल्ह खड, पृ० ५८४ )

दोनों मनीषियों के कथन का सार यह है कि विवेक के उपयोग से, मन को समझाने से, क्रोध से बचा भी जा सकता है और उसे कमज़ोर भी किया जा सकता है। यदि आप पूछें 'कैसे' तो उत्तर होगा ऐसे—

मान लीजिये कि कोई व्यक्ति क्रोधी भी है और आत्म-सुधार का इच्छुक भी। उसे ( कापी-कलम लेकर ) एकान्त में शान्त-मन से बैठ जाना चाहिए

और यों विचार करना चाहिए। मैं प्राय: क्यों कुढ़ता-खीझता रहता हूँ ? परिवार के सदस्य, पड़ोसी, सहयोगी तथा अन्य मिलने-जुलने वाले मुझे देखकर क्यों प्रसन्न नहीं होते ? मैं किन-किन कारणों से किन-किन पर क्रोध करता हूँ ? क्या मैं केवल ऊँचा बोलकर ही चुप हो जाता हूँ वा मेरे मुख से अश्लील शब्द भी निकलते हैं ? जीवन में मैंने कितनी बार हाथापाई की है और किन कारणों से ? अपनी क्रोधीवृत्ति के कारण मुझे क्या क्या हानियाँ उठानी पड़ी हैं ? क्या मैं यह आशा तो नहीं करता कि संसार के सब लोग सदाचारी, निर्दोष तथा मेरे विचारों के अनुसार आचरण करने वाले हों ? क्या मेरा क्रोध मेरे स्वास्थ्य, कामकाज तथा मिलने-जुलने वालों पर कुप्रभाव तो नहीं डाल रहा ? क्या मुझे उचित अवसरों पर, उचित मात्रा में ही क्रोध आता है वा मैं तनिक-सी बात पर तुनक कर लाल-पीला हो उठता हूँ ? किन-किन बातों पर मै इतना क्रुद्ध हो उठता हूँ कि मेरी मुट्ठियाँ बँध जाती हैं वा दाँत पिसने लगते हैं ? किन लोगों पर मुझे इतना क्रोध आता है कि मैं उन्हें मृत्यु-दंड के योग्य समझता हूँ ? अपने क्रोध के कारण मैं किन-किन संकटों में पड़ सकता हूँ ? मुझ पर आने वाले उन संकटों का मेरे भावी जीवन वा बाल-बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ सकता है ?

प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार विचार करने से स्व-क्रोध-सम्बन्धी लम्बी सूची तैयार कर सकता है। ऐसे प्रश्न ही नहीं, उनके उत्तर भी लिखने चाहिए और उन उत्तरों के प्रकाश में स्व-संशोधन करने का दृढ़ संकल्प करना चाहिए। यदि क्रोधी व्यक्ति अपने आप इस प्रकार अपना मनोविश्लेषण ( Psycho-analysis ) न कर सके तो उसे किसी मनोविश्लेषण से सहायता लेने में संकोच न करना चाहिए।

### ३. दैनिकी-लेखन

स्व-संशोधन का संकल्प लेने से ही अभीष्ट सिद्धि नहीं होगी। हमें प्रतिदिन प्रात: अपने-आप से प्रतिज्ञा करनी होगी कि आज हम क्रोध नहीं करेंगे और प्रति-रात्रि अपनी दैनिकी ( डायरी ) में लिखना होगा कि आज हमने किन-किन पर क्यों-क्यों वा कितना क्रोध किया। पढ़ने-सुनने में यह कार्य कठिन नहीं लगता, परन्तु दैनिकी-लेखन कार्य में पर्याप्त धैर्य की आवश्यकता होती

। इस प्रकार सत्य-सत्य लिखी हुई दैनिकी की प्रति सप्ताह व प्रति मास ाँच करनी चाहिए। यदि साप्ताहिक व मासिक दैनिकी-निरीक्षण से पता ले कि हमारे क्रोध की मात्रा क्रमशः कम हो रही है तो हमें सन्तुष्ट होना ाहिए, नहीं तो आत्म-सुधार के संकल्प को और भी दृढ़ बनाकर इस कार्य-म में धैर्य से जुटे रहना चाहिए।

• स्वास्थ्य

प्रायः यही समझा जाता है कि रोग शरीर का विकार है और क्रोध मन , इसलिए शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य से कोई सम्बन्ध नहीं। न्तु बात ऐसी नहीं है; मन शरीर को प्रभावित करता है और शरीर मन । पीछे, 'क्रोध के परिणाम' शीर्षक अध्याय में, हम यह देख चुके हैं कि धादि संवेग शरीर पर क्या-क्या प्रभाव डालते हैं। यहाँ संक्षेपतः यह देख ा चाहिए कि शरीर के रोग मन को भी कैसे रोगी बना देते हैं। धैर्य मन गुण है और रोग शरीर का दोष। हम घरों में प्रायः देखते हैं कि धीर-न्त व्यक्ति भी बीमार पड़ने पर अधीर-अशान्त हो जाते हैं। भोजन, पानी, षधि, चिलमची, बैडपैन आने में तनिक भी देर होती है तो हम ऊँचा ने लगते हैं। ऋतु के अनुसार खिड़की वा द्वार बंद करने वा खोलने में ावा वस्त्र लाने वा बिछौना बदलने में तनिक भी विलम्ब होता है तो हम उबल पड़ते हैं—"देख लिया है सबको, सभी सुख के साथी हैं; कोई भी ची सहानुभूति नहीं रखता; सभी मतलब के यार हैं; कोई पास नहीं कता; सुनकर भी बहिरे हो जाते हैं, न जाने सब कहाँ मर जाते हैं।" तव में बात यह नहीं होती कि घर के सदस्य सेवा नहीं करते। वे तो करते हैं परन्तु रोग और क्रोध के कारण हम यह भूल जाते हैं कि उन्हें और भी तो क कार्य करने होते हैं। उस दशा में, हम रोग के कारण धैर्य नष्ट हो जाने यही चाहते हैं कि सब-के-सब सम्बन्धी सभी काम छोड़कर हमारी ही सेवा संलग्न रहें। परन्तु ऐसा कहाँ सम्भव है! हमारी दृष्टि में हमारे काम सर्वा-क महत्त्वपूर्ण होते हैं; उनकी दृष्टि में हमारी देख-रेख महत्त्व-पूर्ण होती हुई अन्य कार्य उपेक्षित नहीं किये जा सकते। इस दृष्टि-भेद के कारण हम तो ंत होते रहते हैं और दूसरे भी सुनते-खीझते रहते हैं। विचार से काम

किया जाय तो उन पर हमारा कोप तभी कुछ उचित कहा जा सकता है, जब बीमार हमें उन्होंने किया हो। रोगी तो हम होते हैं अपनी लापरवाही के कारण और कुपित होते हैं उन पर। यह अविवेक नहीं तो और क्या है! 'बंदर की बला तवेले के सिर' इसी को कहते हैं। अस्तु, समझदार आदमी बीमार पड़ने पर होशियार हो जाता है कि भविष्य में ऐसा आहार-विहार नहीं करूँगा, जिससे रोग का शिकार बनकर स्वयं भी कष्ट उठाऊँ और दूसरों को भी कोप-भाजन बनाऊँ।

इसलिए यह आवश्यक है कि जब क्रोध का न कोई बाहरी कारण दिखाई दे और न शरीर में कोई रोग, तब किसी कुशल चिकित्सक द्वारा अपने शरीर का परीक्षण कराया जाय। सम्भव है, हमारे जिगर वा गलग्रंथि ( थाइरायड ग्लैंड ) में कोई विकार हो; क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है कि इन दोनों के विकार का स्वास्थ्य, शारीरिक वृद्धि तथा संवेगों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। गलग्रंथि-न्यासर्ग ( Thyroid Harmone ) की अधिकता के कारण मनुष्य का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, जो अनेक बार उग्र क्रोध का रूप धारण कर लेता है।

## आहार

क्रोधी मनुष्य को अपने खान-पान का विशेष ध्यान रखना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता के निम्नलिखित श्लोक इस विषय में हमारा प्रशंसनीय पथ-प्रदर्शन करते हैं—

**आयुः सत्त्वबलारोग्य सुखप्रीतिविवर्धनाः।**
**रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥**
**कट्वम्ललवणात्युष्ण तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।**
**आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥**
**यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।**
**उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥**

( गीता १७।८–१० )

अर्थ—दीर्घायु, जीवन-शक्ति, बल, स्वास्थ्य, सुख तथा प्रीति बढ़ाने वाले, रसीले चिकने, पौष्टिक तथा जी को रुचने वाले आहार सात्त्विक लोगों को

च्छे लगते हैं। कड़वे, खट्टे, नमकीन, बहुत गरम, चरपरे, रूखे, जलन उत्पन्न रने वाले भोजन राक्षस लोगों को अच्छे लगते हैं तथा वे दुःख, शोक और गों के कारण होते हैं। पहर-भर से अधिक पहले पके हुए, नीरस, दुर्गन्धित, सी जूठे तथा अपवित्र भोजन तामस लोगों को अच्छे लगते हैं।"

क्रोध-विजय का इच्छुक मनुष्य रजोगुण से सत्त्वगुण की ओर जाना चाहता । अतः उसे चाहिए कि ऊपर लिखे तामस तथा राजस भोजनों का परित्याग र सात्त्विक भोजन ही सेवन करे। सो मन को क्रोधी बनाने वाले मांस, छली, मिर्च-मसाले, खट्टे, चरपरे, गरम पदार्थों आदि का परित्याग क्रोध-जय के लिए आवश्यक है।

**ल**

जल क्रोध का जानी दुश्मन है और सुख-शान्ति का सच्चा सखा। इस त को हमारे पूर्वज सम्यक् समझते थे। इसीलिए आज भी हिन्दू सभ्यता के रम्भ में निम्नलिखित आचमन मन्त्र पढ़कर जल पीते हैं।

**शन्नो देवीरभिष्टय, आपो भवन्तु पीतये।**
**शंयोरभि स्रवन्तु नः। ( ऋग्वेद १०।९।४ )**

"दिव्य-गुण-युक्त जल हमें शान्ति तथा अभीष्ट तृप्ति प्रदान करें। ये मारे लिए सब ओर से सुख-शान्ति की धाराएँ बहाएँ"

जल के क्रोधनाशक व शान्ति-दायक प्रभाव से भारत के बच्चे-बूढ़े, स्त्री-रुष सब सुपरिचित हैं। इसलिए परिवार में खट-पट होने पर बच्चे भी शीतल ल के गिलास लाकर बड़ों का क्रोध शान्त करने का यत्न करते हैं। शीतल ल के पान के समान ही उससे स्नान वा केवल सिर धोना भी क्रोध-ाशक है। क्रोध, व्याकुलता आदि की अवस्था में किया हुआ भोजन कुछ भी ाभ नहीं पहुँचाता है। इसलिए हिन्दू-शास्त्रों में 'पञ्चार्द्रो हि भुञ्जीत" की नहली सीख दी गई है, अर्थात् शरीर के पांच अंगों ( हाथ-पाँव तथा मुख ) ो धो कर ही भोजन करना चाहिए।

**ायु**

स्वच्छ वायु में किये गये प्राणायाम का क्रोध-विनाश तथा शान्ति-प्राप्ति घनिष्ठ संबन्ध है। आँख-कान आदि को बाहरी इन्द्रियाँ कहते हैं और मन

को अन्तःकरण अर्थात् अन्दर की इन्द्रिय। इन बाह्य तथा आंतरिक, दोनों प्रकार की इन्द्रियों के दोष दूर करने के लिए प्राणायाम राम-बाण है। मनुजी ने इस बात को निम्नलिखित पद्य में प्रस्तुत किया है—

**धातूनां हि ध्मायमानानां दह्यन्ते यथा मलाः।**
**तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥**

( मनुस्मृति ६।७१ )

अर्थः "जैसे धातुओं के मल आग में तपाने से दग्ध हो जाते हैं, वैसे ही इन्द्रियों के दोष प्राणों को वश में करने अर्थात् प्राणायाम से।" इसलिए क्रोध-शील मनुष्यों को नगरों के शीघ्रगामी तथा चिन्ता-जनक वातावरण से दूर जाकर खुली स्वच्छ पवन में प्राणायाम का प्रतिदिन सेवन करना चाहिए और साथ ही विश्वास रखना चाहिए कि हमारा क्रोध इस क्रिया द्वारा क्रमशः क्षीण हो रहा है। घंटा-घंटा-भर प्रातः-सायं वन, उपवन, नदीतीर आदि पर घूमना विशेष लाभदायक है।

कई घंटों तक निरन्तर कार्य करना भी क्रोध व खीझ का कारण बन जाता है। उससे बचने के लिए कुछ-कुछ काल बाद खुले पवित्र पवन में प्राणायाम करना वा समस्त शरीर को शिथिल कर शवासन करना ( निर्जीव शरीर के समान लेट जाना ) भी मन को शांत करने का सफल साधन है।

## ५. इच्छा-संयम

इसमें सन्देह नहीं कि जब तक देह है, तब तक भोजन, वस्त्र, निवास आदि की आवश्यकताएँ रहती हैं, और जब तक ये हैं, तब तक इच्छाओं की समाप्ति सम्भव नहीं। परन्तु विचित्र लीला है कि आवश्यक इच्छाएँ पूर्ण हो जाने पर भी हम संयम नहीं कर सकते तथा अनावश्यक इच्छाओं की पूर्ति की लालसा में कोल्हू के बैल के समान चक्कर काटते रहते हैं तथा तिलों के तुल्य पिसते रहते हैं। यह दशा यौवन-पर्यन्त रहे तो भी कोई बात हुई, परन्तु तृष्णा तो मृत्यु-पर्यन्त पीछा नहीं छोड़ती। किसी प्राचीन कवि ने क्या खूब कहा है कि—

**वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः।**
**गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥**

"मुख पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं, सिर सफेद बालों से ढँक गया है, शरीर के
ा अंग शिथिल हो गये हैं, परन्तु एक तृष्णा है जो जवान ही होती जा
ी है।"

तृष्णा के दासों की दशा का चित्र एक अन्य कवि ने इन शब्दों में अंकित
या है—

निःस्वो वष्टि शतं, शती दशशतं, लक्षं सहस्राधिप। लक्षेशः क्षितिराजतां,
तिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति। चक्रेशः सुरराजतां, सुरपतिर्ब्रह्मास्पदं वाञ्छति।
ा विष्णुपदं, हरिः शिवपदं, तृष्णावधिं को गतः?

"कंगाल मनुष्य सौ (रुपयों) की कामना करता है और सौ वाला सहस्र
। हजारी लखपति बनना चाहता है और लखपति इन्द्र। इन्द्र ब्रह्मा की
वी चाहता है, ब्रह्मा विष्णु की और विष्णु शिवजी की। अरे भाई, तृष्णा
पार कौन पहुँचा है?"

कामनाएँ करना तो हमारे वश में हैं, परन्तु उन सबकी पूर्ति हमारे वश
नहीं। परिणाम यह होता है कि, गीता के शब्दों के अनुसार: "कामात्क्रोधोऽ
जायते", जब वे पूरी नहीं होतीं तब क्रोध उत्पन्न होता है। इसलिए हम
निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि हमें क्रोध को वश में करना है तो कामनाओं
कम-से-कम करना होगा। कोई यह कहे कि मैं कामनाओं के त्याग से
ीं, उनके भोग से शान्ति प्राप्त करूँगा। मनुजी कहते हैं, यह बात
म्भव है—

**न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।**
**हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥** (मनुस्मृति २।९४)

"कामनाएँ भोग से भी शान्त नहीं होतीं। वे तो भोग से वैसे ही बढ़ती
जैसे आहुति से अग्नि।"

सार यह कि समझदार को समझ लेना चाहिए कि क्रोध-इच्छाओं का
ाम अनिवार्य है।

## . प्रभु-भक्ति

इस उपाय का उपयोग वही लोग कर सकते हैं जो ईश्वर की सत्ता में
ि‍श्वास रखते हैं। उनके मत में वही असीम व अलक्ष्य शक्ति इस अपार सृष्टि

का सर्जन, धारण तथा संहरण करती है। उसी प्रभु की कृपा से हमें कुछ काल के लिए इस पृथ्वी पर कुछ समय तक रहने का सुनहला अवसर प्राप्त हुआ है। मनुष्य-मात्र तथा अन्य जीव-जन्तुओं को उपजाने व पालने-पोसने वाला वही है। उसी की कृपा से सोते-जागते हमारा हृदय स्पन्दन करता है, श्वास-प्रश्वास चलता है, रक्तसंचार आदि होता है। इस भावना से मनुष्य के हृदय में अहंकार का संहार तथा नम्रता का संचार होता है। परिणाम-स्वरूप अन्य मनुष्यों तथा जीव-जन्तुओं को हम अपना भाई-बन्धु समझने लगते हैं और उन पर क्रोध करने में संकोच करते हैं। यूनान के प्राचीन विद्वान् अफलातून ( प्लैटो ) का विचार है कि जो व्यक्ति यह स्मरण रखता है कि भगवान् मुझ पर सदा निगाह रखते हैं, वह क्रोध से सर्वथा दूर रहता है। ईश्वर-विश्वासी मनुष्य प्रायः पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं। बौद्ध, जैनादि लोग जो सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानते, वे भी पुनर्जन्म को तो मानते ही हैं। यहूदी, ईसाई तथा मुसलमान भाई पुनर्जन्म को न मानते हुए भी स्वर्ग-नरक आदि के सुख-दुःखों में आस्था रखते हैं। यह आस्तिक-भावना व परलोक-विश्वास मनुष्य को सत्कर्मों की प्रेरणा करता हैं तथा क्रोधादि विकारों से दूर रहने की शिक्षा देता है।

सभी आस्तिक लोग प्रार्थना की शक्ति में आस्था रखते हैं। उनकी धारणा है कि प्रार्थना पूरी आन्तरिकता से की जाय तो मनुष्य को परिवर्तित करने की सामर्थ्य रखती है। इसलिए प्रत्येक क्रोधी आस्तिक का कर्तव्य हो जाता है कि वह इस अचूक उपाय का आश्रय लेकर क्रोध-रहित होने का उद्योग करे। वैदिक ऋषि द्वेष दूर करने के लिए प्रभो से इन शब्दों में प्रार्थना करते थे—

**विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्।**

( ऋग्० ४। १। ४ )

अर्थात् हे प्रभो, हम से सभी द्वेषों को सर्वथा दूर कीजिये।

भक्तिकालीन श्री लक्ष्मीनारायणदास पौहारी का मत हैं कि अपने शरणागतों के रक्षार्थ जहाँ भगवान् राम स्वयं सदा सन्नद्ध रहते हैं, वहाँ कभी-कभी हनुमान् को भी भेज देते हैं—

**काम कहै हमरौ कहवावहु, क्रोध कहै हमरो कहु भाई।**
**लोभ कहै हम मोल लियो, तहवाँ रघुनाथ की दीन दुहाई॥**
**सूनि लियो महराज धनी, हनुमान बली कहँ दीन्ह पठाई।**
**लातन मारि कै काडि दियो, अपने जन-जानि के लीन्ह छुड़ाई॥**

(भक्ति प्रकाशिका, पत्र २२)

उपनिषद् का ऋषि तो मन को शांत करने के लिए प्रार्थना को एकमात्र ाधन मानता है—

**एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥**

**नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति ामात्। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती ातरेषाम्॥**

(कठोपनिषद् २।२।१२-१३)

"सब पदार्थों का अन्तरात्मा, सब को वश में रखने वाला परमात्मा ही इस ्क-रूपा प्रकृति को नानारूपा सृष्टि में परिवर्तित कर देता है। जो धीर लोग उस परमात्मा को नित्य आत्मा में देखते हैं, स्थायी सुख उन्हीं को उपलब्ध ोता है, अन्यों को नहीं। वह नित्यानित्यों में परम नित्य तथा चेतनों में परम ेतन है। वह अकेला ही अनेक प्राणियों की कामनाएँ पूर्ण करता है। जो ीर लोग उस परमात्मा को नित्य आत्मा में देखते हैं, शाश्वत शान्ति उन्हीं ो प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं।"

कहने का तात्पर्य यह कि क्रोधी लोगों को स्व-मतानुसार प्रार्थना, पुन-र्जन्म, स्वर्ग-नरक आदि का स्मरण रखते हुए अपने को क्रोधमुक्त व शान्त नाने का भरसक उद्योग करते रहना चाहिए।

## ७. अहिंसा और प्रेम

क्रोधी व्यक्ति हिंसक होता है। वह मन, वचन वा शरीर से अपने-आप को व दूसरों को कष्ट पहुँचाता रहता हैं। इस प्रकार जो शरीर प्राणिमात्र को सुख पहुंचाने के लिए प्राप्त हुआ है, उसका वह दुरुपयोग करता है। इस-

लिए क्रोधी व्यक्ति को दो व्रत अवश्य धारण करने चाहिए—अहिंसा और प्रेम। अहिंसा-व्रत के पालन से वह दूसरों को कष्ट देने से दूर रहे और प्रेम-व्रत से पालन द्वारा दूसरों को सुख पहुँचाए। अहिंसा प्रथम पग है, प्रेम दूसरा। जो किसी को सुख न पहुँचा सके, उसे भी दूसरों को दुःख तो कदापि न पहुँचाना चाहिए, क्योंकि दुःख दूसरों के लिए भी वैसा ही कष्टप्रद है, जैसा हमारे लिए। इसी कारण अहिंसा को परमधर्म कहा गया है—

**अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परं तपः।**
**अहिंसा परमं सत्यं ततो धर्मः प्रवर्तते॥**

(महाभारत, अनुशासनपर्व, ११५।२३)

"अहिंसा सर्वोत्तम धर्म है, अहिंसा सर्वश्रेष्ठ तपस्या है, अहिंसा सर्वोच्च सत्य है; उस अहिंसा से ही धर्म का आरम्भ होता है।" सामान्य रूप से तो अहिंसा व प्रेम-व्यवहार की शिक्षा प्रत्येक धर्म में दी गई हैं, परन्तु जूं, खटमल, मक्खी, मच्छर आदि सभी प्राणियों की हिंसा से बचने का जो प्रबल अनुरोध जैनधर्म में किया है वह अन्य किसी भी धर्म में नहीं। उनके सूत्र-ग्रंथों में कहा गया है—

**जावन्ति लोगे पाणा तसा आहुवा थवरा।**
**ते जाणमजाणं वा न हणे तो विघायए॥**

(देशवैकालिक सूत्र ६।१०)

"संसार में जंगम वा स्थावर जितने भी जीव हैं, उनकी, ज्ञान वा अज्ञान से न हिंसा करनी चाहिए न करानी चाहिए।"

चीन के महर्षि कन्फ़्यूशस का तो विचार यह था कि अज्ञानी को दण्ड देना निरर्थक है। कारण, उसे तो इस बात का ज्ञान ही नहीं कि मुझ द्वारा किया जा रहा कार्य उचित है वा अनुचित। उस के अनुचित कार्य में तो वे लोग भी दोषी हैं जिन्होंने उसे ज्ञान-हीन बनाये रखा।

अहिंसा तथा प्रेम की शिक्षा देने में ईसाई धर्म का अपना विशेष स्थान है। बाइबिल में कहा गया है—"तुम सुन चुके हो, कहा गया था कि पड़ोसी से प्रेम रखना और वैरी से वैर, परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि अपने-अपने वैरियों से प्रेम रखो और अपने पीड़कों के लिए प्रार्थना करो।...यदि तुम

अपने प्रेम रखने वालों से ही प्रेम रखो, तो तुम्हें क्या फल मिलेगा ? क्या ंगी ( महसूल ) लेने वाले भी ऐसा ही नहीं करते ?

( न० फ० नि०, मत्ती ५।४४, ४६ )

## :. उदारता

हृदय की विशालता का नाम उदारता है। प्रायः मनुष्य अपने देशवासियों, हधर्मियों, सजातीयों आदि के प्रति तो उदार होता है, परन्तु विदेशियों, था विजातीयों के प्रति तंगदिल। उदारता हमारे हृदयों को विशाल बनाती तथा सबके प्रति प्रेम करने की प्रेरणा करती है। इसी आशय को किसी रातन संस्कृत कवि ने यों व्यक्त किया है—

**अयं नजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।**
**उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥**

"यह अपना है अथवा पराया, इस प्रकार विचार करके व्यवहार करना ंगदिल लोगों का काम है। उदार चरित्र के लोगों के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ी एक परिवार है।" इसलिए पारस्परिक व्यवहार में न्याय तथा सत्य को धान स्थान देना चाहिए, मत, देश, जाति, रंग आदि की उपेक्षा करनी ाहिए।

## . सहनशीलता

अहिंसा में हम किसी को किसी प्रकार से दुःख नहीं देते, सहनशीलता में म दूसरे द्वारा दिया दुःख सह लेते हैं। संसार में सभी सभ्य नहीं होते, अतः व्यवहार में विवेक से काम नहीं लेते। कभी वे परोक्ष में निन्दा करते रते हैं, कभी प्रत्यक्ष में अप्रिय वचन कह देते हैं, कभी भरी-सभा में दूषण गा कर दुःखित करते हैं, कभी आवेश में आकर कायिक क्लेश देने से भी हीं चूकते। दूसरा व्यक्ति भी यदि वैसा ही हो तो नहले पर दहला दे मारता , ईंट का जवाब पत्थर से देता है। तब हो सकता है कि बात बहुत बढ़ जाय, सी की आँख फूट जाय, किसी की हड्डी टूट जाय, किसी के प्राण वहीं छूट ायँ वा किसी के सूली पर। यह भी सम्भव है कि कलह दो व्यक्तियों तक ौर उसी समय तक सीमित न रहे, वैर का रूप धारण कर ले, जिसके कारण सी समय वा भविष्य में अनेक लोगों को विभिन्न प्रकार के कष्ट सहने पड़े।

असभ्य बर्बर और अशिक्षित लोगों में प्रायः ऐसा ही होता है, परन्तु सभ्य, शिक्षित और धार्मिक लोग इन कुपरिणामों का विचार कर सहनशीलता अर्थात् तितिक्षा का अभ्यास करते हैं।

जिस समय भीष्म पितामह शरशय्या पर पड़े थे, उस समय युधिष्ठिर ने उनसे यह भी पूछा था—महाराज, यदि कोई दुष्ट सभा में निन्दा करे तो विद्वान् को क्या करना चाहिए ? तब भीष्म बोले—

**श्रूयतां पृथिवीपाल यथैषोऽर्थोऽनुगीयते ।**
**सदा सुचेताः सहते नरस्येताल्पमेधसः ।।**

( महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ११४ )

"हे राजन् ( युधिष्ठिर ), सुनिये. इस विषय में ऐसा कहा जाता है कि बुद्धिमान् मनुष्य मूर्ख की बात सदा सह ही लेता है।"

इसी विषय में विदुरजी का यह वचन भी स्मरणीय है—

**आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः ।**
**आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ।।**

( महाभारत, विदुरनीति, ४।५ )

दूसरों के कड़वे शब्द सुनकर भी कड़वे शब्द न बोले। सहनशील व्यक्ति का रोका हुआ कोप ही कटुभाषी को जला देता है तथा उसके पुण्य को ले लेता है। संस्कृत के किसी सुकवि ने सज्जनों की सहनशीलता के सम्बन्ध में एक बहुत ही सुन्दर सूक्ति कही है—

**ददतु ददतु गालीर्गालीमन्तो भवन्तो,**
**वयमिह तदभावाद् गालीदानेऽप्यशक्ताः ।**
**जगति विदितमेतद् दीयते विद्यते यद्,**
**न हि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति ।।**

"आपके पास गालियाँ हैं, सो देते जाइये, देते जाइये। हम तो गालियाँ दे ही नहीं सकते, क्योंकि वे हमारे पास है ही नहीं। जगत् में यह विदित ही है कि जो कुछ पास होता है वही तो दिया जाता है, खरगोश का सींग कोई भी किसी को नहीं देता।" कहना सरल है, सहना कठिन, इस कारण महात्मा

द्ध एक सुन्दर उपमा द्वारा इसी बात को हृदयंगम कराने का उपदेश
ो हैं—

**अहं नागो' व संगामे चापतो पतितं सरं।**
**अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ॥**

( धम्मपद, नागवग्गो, १ )

"संसार में अधिकतर लोग तो दुःशील ही हैं। मैं उनके अनुचित शब्दों को
ा ही सह लूगाँ, जैसे संग्राम में धनुष द्वारा फेंके हुए तीर को ( धीर ) हाथी
ह लेता है।"

यदि सज्जन भी सहनशीलता का त्याग कर दुर्जनों के समान ही वाणी
वाण बरसाने लगें तो दोनों में अन्तर ही क्या रहा ? वर्षाऋतु में पर्वत
: पड़ती हुई बौछार को देख श्रीराम बोले—

**बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें।**
**खल के वचन सन्त सह जैसें ॥**

( तुलसीदासः रामचरितमानस, किष्किन्धाकांड )

"( हे लक्ष्मण ), बूँदों के प्रहारों को पर्वत ऐसे ही सह रहे हैं जैसे,
ज्जन, दुर्जनों के वचन सहते रहते हैं।"

सज्जनों के मुख में जिह्वा का अभाव नहीं होता। चाहें, तो वे भी गाली
सकते हैं, परन्तु देते नहीं, क्योंकि वे विवेकी होते हैं तथा कबीरदास के निम्न-
खित सरल दोहे का आशय उनके हृदय-पटल पर पाषाण-रेखा के समान
केत रहता है—

**आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।**
**कह कबीर नहिं उलटिए, वही एक की एक ॥**

( कबीर : उपदेस कौ अंग )

सन्त कवि वाजिदजी का विचार है कि सहनशीलता स्वीकारने के
ए सच्चे गुरु की शरण में जाना सहायक है—

**सतगुरु शरणें आय क तामस त्यागिये।**
**बुरी भली कह जाय ऊठ नहिं लागिये ॥**

**उठ लाग्या में राड, राड में मीच है।**
**हरि हाँ, जा घर प्रकटै क्रोध सोई घर नीच है॥**

( वाजिदजी : जरणा को अंग )

मारवाड़ी दरियासाहब का मत है कि मन में निराकार राम रमते रहें तो मनुष्य लोगों की बुरी-भली ऐसे ही सह लेता है जैसे गजराज कुत्तों की 'भौं-भौं' को—

**ऐसे साधु करम दहै।**
**अपना राम कबहुँ नहिं बिसरै, बुरी भली सब सीस सहै॥**
**हस्ती चलै भूँसै बहु कूकर, ता का औगुन उर न गहै।**
**वाकी कबहूँ मन नहिं आनै, निराकार की ओर रहै॥**

( सन्त सुधासार, २, पृ. ११८ )

**१०. क्षमा**

हम हानिकारक वा पीड़ाप्रद व्यक्ति पर इस कारण क्रोध करते हैं कि अपनी हानि वा पीड़ा का उससे प्रतिशोध लें। यदि वह हमारी क्रोधमयी आकृति वा कटु वाणी को देख-सुनकर डर जाय और हाथ जोड़कर वा चरण छू कर क्षमा माँगे तथा भविष्य में वैसी ही भूल न करने की प्रतिज्ञा करे और उदारता-वश उसे जाने दें तो यह क्षमा होगी। परन्तु वह तो अपनी भूल माने नहीं और हम उसे कुछ कहे नहीं, तो यह क्षमा नहीं होगी। यह सहनशीलता भी हो सकती है तथा कायरता भी। सहनशीलता तब, जब हम उससे बदला लेने में समर्थ होते हुए भी उसे कुछ भी न कहें। कायरता तब, जब हम अपने दिल में डरते हों यदि इसे कुछ कहा-सुना, तो और अधिक हानि वा पीड़ा सहनी पड़ेगी। इसलिए कायरता निन्दनीय है, क्षमा अच्छी है और सहनशीलता स्तुत्य है। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि क्षमा का याचक छली-कपटी न हो, अवसरवादी न हो। यदि वह बार-बार दुष्टता दिखाये और हानि पहुँचाये तथा बार-बार क्षमा माँगे, तो ऐसा व्यक्ति क्षमा का पात्र नहीं रहता। सन्त-महात्मा लोग तो ऐसे व्यक्तियों को चाहे कुछ भी न कहें, परन्तु इतना उदार होने से संसार के लोगों के व्यवहार नहीं चल सकते। ऐसे दुष्टों को तो उचित दंड देने-दिलाने का यत्न करना ही चाहिए। इसी बात को प्राचीन ग्रन्थों में भी कहा गया है—

**क्षमा शत्रौ च मित्रे च यतीनामेव भूषणम् ।**
**अपराधिषु सत्त्वेषु नृपाणां सैव दूषणम् ।।**

(व्याख्यानमाला, पृ. 14)

"शत्रु और मित्र दोनों को क्षमा करना साधु-सन्तों का तो भूषण हैं, ...न्तु अपराधियों को क्षमा करना राजाओं का दूषण है।"

कई लोग कहते हैं कि जान-बूझ कर हानि पहुँचाने वाला दुर्जन और भूल-...क से पीड़ा पहुँचाने वाला सज्जन, दोनों ही क्षमा के पात्र हैं। खेद है कि ...ा लोगों से हम शत-प्रतिशत सहमत नहीं है। हमारा विचार यह है कि ...राधी दोनों हैं क्योंकि दोनों से हमें हानि व कष्ट पहुँचा है। प्रथम प्रकार ...ा व्यक्ति अधिक अपराधी है क्योंकि वह हमें कष्ट देकर स्वयं सुखी होना ...हता है। द्वितीय प्रकार का व्यक्ति कम अपराधी है क्योंकि उसने अपने ...वहार में सावधानी से काम नहीं लिया और हमें दुःख पहुँचाया। स्पष्ट ही ...कि प्रथम प्रकार का व्यक्ति हमारी क्षमा का उतना अधिकारी नहीं हो ...कता, जितना द्वितीय प्रकार का। क्षमा दोनों को ही माँगनी चाहिए, ...ोंकि हमें दोनों ही ने कष्ट दिया, परन्तु प्रथम को क्षमा करने में स्वभावतः ...ा उतने ही उदार नहीं हो सकते जितने द्वितीय को। सभी धर्मों के मान्य ...थों में क्षमा की प्रशंसा की गई है, क्योंकि इससे मानवीय आत्मा का ...कास होता है। इसके कारण हम बदला लेने की भावना का त्याग करते हैं ...ा दुःखदायक को भी दुःख नहीं देते। उदाहरणार्थ—

**नातः श्रीमत्तरं किञ्चिदन्यत् पथ्यतमं मतम् ।**
**प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा ।।**

(महाभारत, विदुरनीति, ७।५८)

"हे तात, शक्तिशाली मनुष्य के लिए सब स्थानों व सब समयों में क्षमा ...तुल्य हितकारक व शोभावर्द्धक उपाय दूसरा नहीं है।"

क्षमा की जो महिमा बाइबिल में मिलती हैं, वह कदाचित् ही कहीं सुलभ ...। वहाँ तो अपराधी को लगभग पाँच सौ बार क्षमा की शिक्षा दी गई हैं—

"तब पतरस ने पास आकर उस (ईसा) से कहा, हे प्रभो, यदि मेरा

भाई अपराध करता रहे तो क्या मैं उसे सात वार तक क्षमा करूँ ? ईसा ने उससे कहा, सात वार नहीं, वल्कि सात वार के सत्तर गुने तक ।"

( न० ध० नि०, मत्ती १८।२१-२२ )

कुरान-शरीफ़ में कहा गया है—

"जो धैर्य रखे तथा क्षमा कर दे तो यह निश्चय ही वड़े साहस के कामों में से है ।" ( कुरान ४२।४३ )

"भले लोग गुस्से को रोकते हैं तथा लोगों की भूलों को क्षमा करते हैं ।"

( तालीमे कुरान, पृ० ३३ )

संस्कृत-कवि श्रीकृष्ण मिश्र का मत है कि क्षमा करने से हम दूसरे को ही दुःख से नहीं बचाते, स्वयं भी अनेक दुःखों से दूर रहते हैं—

**क्लमो न वाचां शिरसो न शूलं,**
**न चित्ततापो न तनोर्विमर्दः ।**
**न चापि हिंसादिरनर्थयोगः**
**श्लाघ्या परं क्रोधजयेऽहमेका ॥**

( प्रवोधचन्द्रोदय नाटक ४।१ )

"क्रोध पर विजय पाने में अकेली मैं ( क्षमा ) ही प्रशंसनीय हूँ, क्योंकि इस प्रकार न वाणी को थकावट होती है, न सिर को दर्द, न चित्त को ताप, न शरीर की पीड़ा और न ही हिंसादि पापों का स्पर्श ।"

अधिकतर लोग तो यही कहा करते हैं कि जहाँ एक वार खटपट हो जाय, वहाँ पुनः सन्धि असम्भव है, परन्तु जैन कवि सागरमल इस मत को स्वीकार नहीं करते । उनका विचार यह है कि यदि क्षमा आदि गुण हों, तो क्रोधादि से फूटे हुए मन भी पुनः मिल सकते हैं—

**जब टूटा घट जुड़ सकता है, सँध सकता है टूटा तार ।**
**तो टूटा मन क्यों नहीं जुड़ता, कुछ तो समझो करो विचार ।**
**सँध सकता है, सँध सकता है, फिर सँध सकता टूटा मन भी ।**
**अगर हृदय हो, क्षमा-भाव हो, कोमलता हो निर्मलता हो,**
**ठंडापन हो चिकनापन हो, गीलापन हो, हृदकंपन हो,**
**क्षमा-याचना पथ-दर्शन है ।**

( सागरमलः कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ० ७ )

उर्दू-कवि मिर्जा गालिब कितने सरल व हृदयग्राही ढंग से क्षमा की शिक्षा देते हैं—

**न सुनो गर बुरा कहे कोई, न कहो गर बुरा करे कोई।**
**रोक लो गर गलत चले कोई, बख्श दो गर खता करे कोई ॥**

—गालिब

इस प्रकार प्राचीन-नवीन अनेक ग्रंथों व कवियों ने क्षमा की महती महिमा मानी है, परन्तु प्रायः लोग क्षमावान् व्यक्तियों को दुर्बल वा बुज़दिल कहा करते हैं। इस विचार का विरोध विदुरजी ने इन शब्दों में किया है—

**एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।**
**यदेनं क्षमया मुक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥**
**सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा ही परमं बलम्।**
**क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ॥**

( महाभारत, विदुरनीति, १।५३-४ )

"क्षमाशील लोगों पर एक ही दोष लगाया जा सकता है कि लोग उन्हें शक्तिहीन मानते हैं। परन्तु वह भी उनका दोष न मानना चाहिए, क्योंकि क्षमा ही सर्वोत्तम बल है। क्षमा निर्बल लोगों का तो गुण मानी जाती हैं तथा सबल लोगों का भूषण।"

### ११. दया

अपराधी को क्षमा किया जाता है, निरपराध दीन-दुःखी पर दया की जाती है। क्रोध-विजय के साथ दया का सीधा सम्बन्ध नहीं, क्योंकि क्रोध दुःखदायक पर आता है तथा दीन-दुर्बल दुःख नहीं देता, स्वयं दुःखी होता हुआ हमसे सहायता की आशा करता है। परन्तु, कभी-कभी हम दीन-दुःखी पर भी कोप करने लगते हैं। कारण, प्रत्यक्ष रूप से दुःख न पहुँचाना चाहता हुआ भी वह अप्रत्यक्ष रूप से थोड़ा-बहुत कष्ट देता है अथवा हमारी मानसिक शान्ति को नष्ट करता है। बड़े नगरों में बसों के अड्डों आदि पर भिक्षुक बालक सज्जनों को, विशेषतः देवियों को, बुरी तरह आ घेरते हैं। पाँच-दस पैसे पाने की आशा से वे हाथ ही नहीं फैलाते, घेराव-सा भी कर लेते हैं। कभी कोट का कोना पकड़ लेते हैं तो कभी साड़ी का छोर और

छोड़ते तब तक नहीं जब तक कुछ पा न लें। ऐसी स्थिति में उन पर कुछ दया भी आती है और कुछ क्रोध भी। उनके माता-पिता (जो वहाँ उपस्थित नहीं होते) अवश्य हमारे मूक कोप के पात्र बन जाते हैं। अस्तु, ऐसे स्वस्थ बच्चों को दया-वश कुछ दान करना उन्हें पक्के भिखारी बनने का प्रोत्साहन देता है; परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि वास्तविक दीन-दुःखियों, विधवाओं, अनाथों आदि की उचित रीति से सहायता करना हृदय को कोमल बनाता है और वह कोमलता क्रोधविजय में सहायक होती है। कपटी भिखारी आदि को भी प्रेम-पूर्वक टालना चाहिए, डाँट-डपट कर नहीं। इस प्रसंग में हिन्दी-कवियों के कुछ पद्य अवलोकनीय हैं—

**जो मधु मरै, न मारिए, माहुर देइ सो काउ।**
**जग जिति हारे पर सुधर, हारि जिते रघुराउ॥**

(तुलसीदास: दोहावली, दोहा ४३३)

**हिन्दू पावैगा वही, वो ही मुसलमान।**
**'रज्जब' किणका रहम का, जिसकूँ दे रहमान॥**

(रज्जबजी : साखी)

## १२. नम्रता

नम्रता का अर्थ है; अपने को बड़ा न मानना, छोटा मानना। नम्रता गुण है तो इसका विरोधी दोष है गर्व वा अहंकार। नम्रता में सिर झुका रहता है तो अहंकार में गर्दन अकड़ी रहती है। इसी कारण संस्कृत भाषा में अहंकार का पर्याय शब्द है—'ग्रीवास्तम्भ'। जाति, रूप, धन, विद्या, पद, बल, गुण आदि अनेक वस्तुओं से युक्त होने पर मनुष्य अपने को बड़ा मानकर दूसरों को तुच्छ समझने लगता है तथा दूसरों से साधारण-सी भी भूल होने पर क्रुद्ध हो उठता है। कई मनुष्य तो किसी विशेषता से युक्त न होने पर भी पृथ्वी पर पाँव नहीं रखते। अस्तु, गर्व किसी भी कारण से हो त्याज्य है, तथा सभ्यता का प्रधान अंग होने से नम्रता ग्राह्य। विचार कर देखें तो गर्व का कोई भी कारण नहीं होना चाहिए। क्या जाति, रूप, धन, विद्या, गुण आदि में कोई भी हमसे अधिक नहीं है? यदि है तो गर्व क्यों? यदि हम रूप, यौवन, धन आदि से सम्पन्न हैं तो क्या ये वस्तुएँ सदा-सर्वदा हमारा साथ देती हैं? क्या यह शरीर हमारा नित्य का साथी है? यदि नहीं तो अभिमान क्यों?

सभी धर्म-ग्रन्थों व सुकवियों ने नम्रता की महत्ता मार्मिक सूक्तियों में व्यक्त की है। उदाहरणार्थ दो चार वंचन अवलोकनीय हैं—

**झगड़े-रगड़े केवल अहंकार ही से होते हैं।**

( पु. ध. नि., नीतिवचन १३।१० )

को। से मनुष्य नीचे गिरते हैं। गर्व से अधम गति मिलती है। कपट से सद्गति नष्ट होती है। लोभ दोनों में भयकारी है। (उत्तराध्ययनसूत्र ९।५४)

**अंतरजामी पुरख विधाते, सरधा मन की पूरे।**
**नानक दासु इहै सुख मागै, मो कउ करि संतन की धूरे॥**

( गुरुग्रंथसाहिब, पृ० १३ )

**सास ससुर गुरु मात पितु, प्रभु भयौ चहै सब कोइ।**
**होनो दूजी ओर को, सुजन सराहिअ सोइ॥**

( तुलसीदास : दोहावली ३९१ )

**धन जोबन औ माल सब, है तिस की नित दात।**
**अपना तो कुछ न भया, मान करे कमजात॥**

( भक्त मंगतराम : श्री समताप्रकाश, पृ० १४१ )

उपर्युक्त पद्य इतने सरल हैं कि अर्थ लिखना व्यर्थ लगता है। निस्सन्देह इनके श्रद्धापूर्वक मनन से मान का मर्दन होता तथा क्रोधशमन में सहायता मिलती है।

## १३. वाणी-संयम

हम अपना कोप वाणी से भी प्रकट करते हैं, काया से भी। अपराधी का अपराध हलका हो तो हम वाणी से उसे बुरा-भला कहकर शान्त हो जाते हैं, परन्तु अपराध गम्भीर हो तो मार-पीट पर उतर आते हैं। सब से अच्छा तो यह है कि उस समय हम क्रोध को पी जायँ, मुँह बंद ही रखें, कुछ भी न कहें। तुलसीदासजी ने यह उपाय इस दोहे द्वारा सुझाया है—

**क्रोध न रसना खोलिये, बरु खोलब तरवारि।**
**सुनत मधुर परिनाम हित, बोलब वचन विचारि॥**

( तुलसी सतसई, दोहा ११४ )

आप कह सकते हैं, तुलसीदास ने उपाय उचित नहीं बताया कि क्रोध में तलवार भले ही खोल लो; जबान जरा भी न खोलो, क्योंकि जिह्वा खोलने से तो अपकारी का दिल ही दुखेगा; तलवार के वार से तो बेचारे का सर्वथ संहार ही हो जायगा। गहराई से विचारें तो तुलसीदास का आशय यह नहीं कि अपकारी को तलवार के घाट उतार ही देना चाहिए, भाव इतना ही है कि क्रोध की दशा में चुप हो जाना ही श्रेयस्कर है। कारण, क्रोध की दशा में मुख से ऐसी कड़वी, पैनी और अश्लील बातें निकल पड़ती हैं कि श्रोता उन्हें सुनने के स्थान पर मर जाना बेहतर मानता है। इस तथ्य को नीतिकुशल विदुरजी ने निम्नांकित श्लोकों में सम्यक् प्रकट किया है—

**कर्णिनालीक नाराचान् निर्हरन्ति शरीरतः।**
**वाक्यशल्यस्तु न निर्हन्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः।**
**रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।**
**वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाकक्षतम्।**

( महाभारत, विदुरनीति, २।७९,७८

"कर्णि, नालीक तथा नाराच नाम के बाणों को तो ( शरीर से वैद्यादि निकाल लेते हैं, परन्तु वाणी-रूपी काँटे को कोई नहीं निकाल सकता, क्योंकि वह तो हृदय के अन्दर धँसा होता है। बाणों से विद्ध शरीर पुनः स्वस्थ हो जाता है। कुल्हाड़े से काटा हुआ कानन फिर हरा हो जाता है, किन्तु कटु अश्लील वाणी द्वारा किया हुआ घाव कभी नहीं भरता।"

कोई कहे कि क्रोध की दशा में सर्वथा चुप रहना असम्भव हो तो क्या करें? इसका उत्तर एक कवि ने निम्नांकित दोहे द्वारा दिया है—

**गाली दे गुस्सा करे, यह ओछे के काम।**
**धीरे से समझाय दे, इसमें लगे न दाम।**

( मेलाराम : शिक्षासहस्री

सुकरात के सम्बन्ध में प्रख्यात है कि जब उसे क्रोध आता था, तब वह वाणी की गति मन्द कर देता था, धीरे-धीरे बोलने लगता था। कई बार हमें सूचना मिलती है कि हमारा कोई विरोधी प्रत्येक के संमुख हमारी निन्दा करता फिरता है। उस अवस्था में हमारा भी जी चाहता है कि बदले में हम

भी वैसा ही करने लगें। परन्तु क्रोध-विजय के इच्छुक को उस समय कबीर व दादूदयाल के इन दोहों का स्मरण कर लेना चाहिए—

**निंदक नेड़ा राखिये, आँगण कुटी बँधाइ।**
**बिन सावण पाणीं बिना, निरमल करै सुभाइ।**

—कबीर

**दादू निन्दक बपुरा जिनि मरै, पर उपकारी सोइ।**
**हम कूँ करता ऊजला, आपण मैला होइ॥**

—दादू

अनेक बार अनजान व्यक्तियों से पाला पड़ जाता है जिनके साथ वाद-विवाद क्रोध का कारण बनता है। सन्त मलूकदास का विचार है कि ऐसी स्थिति में हार मानकर, चुप रहकर, क्रोध पर काबू पाना चाहिए—

**'मलूक' वाद न कीजिये, क्रोधै देहु बहाय।**
**हार मानु अनजान तें, बकबक मरै बलाय॥**

( सं० वियोगी हरि : सन्तसुधासार २, पृ० ३८ )

परन्तु कई सत्य प्रेमी ज्ञान-प्राप्ति के लिए वाद-विवाद वा शास्त्रार्थ को उचित समझते हैं। यदि उनका लक्ष्य शास्त्रार्थ में ज्यों-त्यों विजय-प्राप्ति न हो बल्कि ज्ञान-प्राप्ति हो, तो उन्हें वाणी के संयम को स्वीकार कर ही शास्त्रार्थं करना होगा, नेत्रों को लाल तथा वाणी को उच्छृंखल करके नहीं—

**तुम बहस में लाल कर लेते दृगों को,**
**शान्ति की यह साधना निश्छल नहीं है।**
**शान्ति को वे खाक देंगे जन्म जिनकी,**
**जीभ संकोची हृदय शीतल नहीं है।**

( दिनकर : नये सुभाषित, पृ० ५२ )

उस समय वेद भगवान् की यह सूक्ति स्मरण रहनी ही चाहिए—

**यद् वदामि मधुमत्तद् वदामि**

( अथर्व० १२।१५८ )

अर्थात् मैं जो कुछ भी बोलता हूँ, मीठा बोलता हूँ।

वाणी को संयम में रखने का कबीर द्वारा दिखाया हुआ मार्ग भी ध्यान देने योग्य है—

**कबीर हरि के नाँव सूँ, प्रीति रहै इकतार।**
**तो मुख तैं मोती झड़ैं, हीरे अन्त न पार।**

( कबीर: उपदेश कौ अंग )

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के महामंत्री चाणक्य के दो सूत्र भी वाणी-संयम की सुप्रेरणा प्रदान करते हैं—

**जिह्वायत्तौ वृद्धिविनाशौ।**
**विषामृतयोराकरी जिह्वा॥**

( चाणक्य राजसूत्र ४३९,४४० )

## १४. शरीर-संयम

दुःखदायक व्यक्ति को बदले में दुःख देने के लिए, क्रुद्ध होकर हम ऊँचा बोलते हैं, बढ़ा-चढ़ाकर बोलते हैं तथा बहुत बोलते हैं। इतना ही नहीं, हम हाथों, पाँवों, नेत्रों, मुखादि से क्रोधव्यंजक चेष्टाएँ भी करते हैं, जिन से दूसरा लज्जित, अपमानित तथा भीत-त्रस्त होकर अपनी भूल मान जाय और क्षमा-याचना कर ले। परन्तु यदि हमारा अपकारक व्यक्ति दब्बू न हो, कुछ दम-खम रखता हो, तो वह भी स्व-भूल नहीं स्वीकारता, बदले में हमारी ही वाणी व चेष्टाओं का अनुकरण करता है, अथवा हमें भी मात देता है। उस समय या तो हम बोल-बाल कर थक जाते हैं या हाथा-पाई करने लगते हैं। हाथापाई की दशा में किसको कितनी चोट लगेगी वा कौन मौत के घाट उतरेगा, कहना कठिन है। इसलिए सज्जनों का कर्तव्य यही है कि वाणी के समान शरीर का भी संयम करें, मार-पीट की नौबत न आने दें। सत्रहवीं शताब्दी के हिन्दी-कवि 'जानकवि'[1] ( न्यामत खाँ ) ने अपने मुक्तक काव्य 'सिष्यासागर' में क्रोध-विजय का अच्छा उपाय बताया है—

---

१. विस्तृत परिचय के लिए लेखक के 'हिन्दी में नीतिकाव्य का विकास' के पृष्ठ २११-२१७ देखें।

**ठाढ़ौ ह्वै तो बैठ है, बैठो जे है लेटि।**
**लेट्यो ह्वै तो करोट लै, ज्यों-त्यों रिस को मेटि॥**

( जानकविः सिष्यासागर )

"यदि तू खड़ा हैं तो बैठ जा; बैठा है तो लेट जा; लेटा है तो करवट वदल ले। जैसे भी हो, क्रोध को मिटा दे।"

एक स्थान पर सभा हो रही थी। वाद-विवाद से वातावरण गरम हो गया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मार-पीट की नौबत आ ही जायगी। वहाँ एक व्यक्ति कोट उतार कर लेट गया। दूसरों ने उसकी इस आश्चर्य-जनक चेष्टा का कारण पूछा तो वह बोला—"मैं पागल-सा हुआ जा रहा हूँ और मुझे बताया गया है कि लेटे-लेटे पागल होना कठिन है।"

क्रोध की दशा में दर्पण में मुख देखने से भी क्रोध दूर होता है। उस समय मुख-मुद्रा ऐसी भोंडी-भयंकर दिखाई देती है कि मनुष्य ज्यों-त्यों सुन्दर रूप धारण करने का यत्न करता है।

प्रख्यात मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स का मत है कि शारीरिक चेष्टाओं से भी संवेगों की उत्पत्ति होती है। इसलिए यदि हम क्रोध से बचना चाहते हों तो शरीर स्थिर रखना चाहिये, मुख-मुद्रा सौम्य रखनी चाहिए, मुट्ठियाँ बंद न रखनी चाहिए, मुख टेढ़ा कर दाँत न पीसने चाहिए, माथे पर बल न पड़ने देने चाहिए, आदि आदि। यह भी अनुभव में आया है कि शारीरिक थकान की अधिकता भी क्रोधोत्पादक है। इसलिए थकने से पूर्व ही कुछ विश्राम वा जलपानादि कर क्रोध से बचना चाहिए।

### १५. विलम्ब

इटली के सेनेका नामक प्राचीन विद्वान् का विचार है कि क्रोध का सर्वोत्तम औषध विलम्व अर्थात् देर है। जिस समय हम क्रोध के प्रबल आवेश में होते हैं, उस समय हम कोई भी भयंकर वा घृणित काम कर सकते हैं और करना भी चाहते हैं तत्काल। उस क्षण में हम विरोधी की, उसके पूरे परिवार की वा उसके किसी निरीह सम्बन्धी की भी हत्या कर सकते हैं; उसकी सम्पत्ति को आग लगा सकते हैं; उसकी किसी सम्बन्धिनी पर बलात्कार कर सकते हैं। उस समय हम, हम नहीं होते, पागल होते हैं और पागलों के ही तुल्य

आत्म-हत्या भी कर सकते हैं। परन्तु यदि उस उग्र घड़ी को टाल दिया जाय, तो हम 'होश' में आ जाते हैं और उस व्यक्ति के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिसने हमें 'उस क्षण' जैसे-तैसे रोक दिया था। जेफरसन का कथन है कि क्रोध की दशा में कुछ बोलने से पूर्व १ से १० तक गिन लेना चाहिए और यदि क्रोध बहुत अधिक हो तो सौ तक गिनकर ही जीभ हिलानी चाहिए। इस प्रसंग में बाइबिल की यह सूक्ति सहज ही स्मरण हो आती है—विलम्ब से क्रोध करना और वीरता से स्व-मन को वश में रखना, नगर जीत लेने से उत्तम है। ( पु. ध. नि., नीतिवचन १६।३२ )

## १६. सत्संग

जैसे समीपवर्ती रोगियों के रोग हमें आक्रान्त कर लेते हैं, वैसे ही भले लोगों की संगति हमें भला बनाती है। इसलिए आवश्यक है कि हम उन्हीं लोगों के संग उठें-बैठें, चलें-फिरें जो शान्त, दयालु, क्षमाशील, उदार, सहिष्णु आदि हों। सत्संग से क्रोध-नाश के सम्बन्ध में कबीर का कथन है—

**दसों दिसा में क्रोध की, उठी अपरबल आगि।**
**सीतल संगत साधु की, तहाँ उबरिये भागि॥**

—कबीर

स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य की संगति में रहने वाले भेड़िये, चीते, सिंहादि पशु भी मृदु बन जाते हैं। हमारे बच्चे प्रायः हमारी, सहपाठियों की, गली-मुहल्ले के बच्चों की तथा छात्रों; शिक्षकों आदि की संगति में रहते हैं। यदि हम तथा ये सब व्यक्ति क्रोधी होंगे तो बच्चों का शान्त बनना सर्वथा असम्भव है। जैसे बच्चों का डील-डौल, रंग-रूप माता-पिता आदि से प्रभावित होता है, वैसे ही उन के स्वभाव भी हमारे स्वभाव से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। बाल-मनोवैज्ञानिक श्री गाल्टन का कथन है कि बच्चे अपने ५०% शीलगुण माता-पिता से, २५% दादा-दादी से, १२½% परदादा-परदादी आदि से लेते हैं। यद्यपि इन नियमों के कहीं-कहीं अपवाद भी मिलते हैं, तथापि अपवाद तो प्रत्येक नियम के होते ही हैं।

सत्संग जीवित व्यक्तियों का ही नहीं होता, उन का भी होता है जो जहान से चल बसे होते हैं। उनके उज्ज्वल जीवन की शिक्षाप्रद घटनाएँ आज भी हम

सभी को प्रभावित किये बिना नहीं रहतीं । इसलिए हमें उन पूर्वजों के चरित्र श्रद्धा-पूर्वक पढ़ने-सुनने चाहिए, जिन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी क्रोधाधीन न होकर स्वमन को शान्त बनाये रखा । आगामी अध्याय में हमने क्रोध-जित व्यक्तियों की कथाएँ इसी उद्देश्य से दी हैं । उन व्यक्तियों की कथाओं का स्मरण-मनन हमें शान्त रखने में निस्सन्देह सहायता देता है ।

## १७. मित्रों से सहायता

हमारे जीवन को सुखी बनाने में मित्रों का विशेष हाथ होता है । वास्तविक मित्र वही है जो बुराई से बचाता तथा पुण्य में प्रवर्तित करता है । क्रोध भी एक दोष है और उसके निवारण में हमें अपने सखाओं की सहायता निस्संकोच लेनी चाहिए । एक क्रोधी ने अपने मित्र को कह रखा था कि मेरे रुग्ण होने पर मेरी कोई ऐसी बात न माना करो जो मेरे लिए हितकर न हो । एक शराबी ने स्वसखा को समझा दिया था कि जब मैं किसी भोज में अधिक सुरा-पान करने लगूं, तो मुझे वहाँ से पकड़कर बाहर ले जाया करो । इसी प्रकार क्रोधी व्यक्तियों को भी चाहिए कि अपने मित्रों से सानुरोध कह दें कि जब भी हमें क्रोध आया करे, हमारे मुँह पर हाथ रख दिया करें, हमारे हाथों को पकड़ लिया करें तथा हमें क्रोध से दूर ले जाया करें ।

## १८. ललित कलाएँ

क्रोध-विजय मे ललित कलाएं ( Fine Arts ) हमें विशेष सहायता दे सकती हैं । मूर्ति-कला, चित्र-कला, काव्य-कला, संगीतकला आदि ललित कलाएँ हैं । संसार के सैकड़ों-सहस्रों विविध क्रिया-कलापों से मनुष्य का मन खीझ और झुंझला उठता है । उनके अधीन होकर कभी वह एक पर कुपित होता है, कभी दूसरे पर । उन से बचाव के लिए हमें इन कलाओं की शरण में निःसंकोच जाना ही चाहिए । धर्म-स्थानों में होने वाले कथा-कीर्तन से हमें कितनी शान्ति मिलती है । शान्त सन्ध्या आदि के चित्रों को देख मन कितना प्रसन्न होता है । श्रीराम, श्रीकृष्ण, महात्मा बुद्ध, महात्मा ईसा मसीह, गुरुनानक आदि की शान्त, मुस्कराती मूर्तियाँ हृदय को कितना आह्लादित करती हैं । रोचक, शिक्षाप्रद कविताएँ हमारे हृदय को कितना कोमल बनाती हैं । इस प्रकार के

चित्रों, मूर्तियों, वाद्य-वृन्द, काव्य आदि का उपयोग मन को शान्त रखने में निस्सन्देह सहायक होता है।

## १९. तपस्वी जीवन

जो लोग बहुत सुख-सुविधाओं से पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, वे तनिक सी भी असुविधा हो तो तुनक उठते हैं। समीप स्थित व्यक्ति खाँसने वा छींकने लगे, कोई सेवक बेंच वा कुर्सी घसीटने लगे, घर के पास किसी बरात का बैंड बजने लगे, कोई मदारी वा नट निवास के पास डुगडुगी बजाने लगे, यात्रा में पास बैठा हुआ व्यक्ति सिगरेट पीने लगे, आदि-आदि छोटी-मोटी बातों से वे बकझक करने लगते हैं। जरा गरमी तीव्र हुई तो खीझ उठना, वर्षा में कीच हो गई तो कोसने लगना, सर्दी कुछ अधिक हुई तो उसे बुरा-भला कहना स्वभाव का चिड़चिड़ापन नहीं तो क्या है? ऐसी छोटी-मोटी असुविधाएँ तो जीवन में आती ही रहेंगी। यदि हम उनके कारण क्रुद्ध होते हैं तो इसका कारण यह नहीं कि वे अतीव कष्टदायक हैं, वल्कि यह कि हम अधिक कोमल हैं। इसलिए जीवन कुछ कठोर वा तपस्वी बनाना भी क्रोधविजय में लाभप्रद है।

## २०. क्रोध-पात्र का ध्यान

क्रोध-पात्र का विचार भी क्रोध-विजय में सहायता देता है। माता-पिता, बहिन-भाई आदि से अधिक कौन हमारा स्नेही वा हितचिन्तक हो सकता है? स्व-सन्तान से स्निग्ध और कौन है? ज्ञान वा अज्ञान-वश उनसे कोई भूल हो जाय, तो क्या उन्हें बुरा-भला कहना वा उन पर हाथ उठाना हमें शोभा देता है? गुरु, आचार्य, न्यायाधीश, उपदेशक आदि के मुख से यदि कोई ऐसे शब्द निकल जायँ, जो हमें चुभने लगें, तो क्या हम उन्हें अपना शत्रु समझकर प्रति-शोध लेने पर तुल जायँ? क्या उनका व्यवहार कड़वी दवा देने वा नश्तर का प्रयोग करने वाले वैद्यों के समान ही नहीं है, जो क्षणिक क्लेश के बाद हमें स्थायी सुख देने का यत्न करते हैं? क्या अबोध वालकों, अबलाओं, वृद्धों, रोगियों आदि पर तुच्छ-सी बात पर बरस पड़ना हमारे गौरव का वर्द्धक है? क्या सन्निपात के रोगी की, पागल व्यक्ति की तथा बच्चों की गालियाँ वा मुक्के सुन और सहकर हम भी उन्हें गालियाँ देने वा पीटने लगें? इसके अतिरिक्त

यह भी तो सोचना चाहिए कि हमारे क्रोध का पात्र हमारा मित्र है वा शत्रु ? क्या उसकी यह भूल पहली ही है वा वह बार-बार यही सब कुछ करता रहा है ? यदि वह बुद्धिमान् है तो उसकी बात ग्राह्य है, यदि मूर्ख है तो हमें उसे क्षमा कर देना चाहिए । क्या क्रोधपात्र हमसे निर्बल है वा सबल ? यदि निर्बल हैं तो क्या उसे पीटने में हमारी प्रतिष्ठा है ? यदि सबल है, तो क्या उससे झगड़ा करना मुसीवत मोल लेना नहीं है ? इस प्रकार पात्र का विचार कर लेना भी क्रोध पर विजय देता है ।

## २१. मुकदमेबाजी का त्याग

सम्भव है, किसी युग में न्यायालय एकाध दिन में ही विवादों का निर्णय कर देते रहे हों, आज तो विवाद वर्षों तक चलते रहते हैं । उनमें प्राय: या तो लेन-देन के मामले आते हैं या मार-पीट के । लेन-देन के मामलों में निर्णायक ये निर्णय करते हैं कि कौन पक्ष अधिक लोभी है और कौन कम । मार-पीट के मुकदमों में न्यायाधीश प्राय: यह फैसला करते हैं कि किसने क्रोध-वश होकर दूसरे को अधिक दु:खी किया । परन्तु इनमें समय और सम्पत्ति का कितना अपव्यय होता है, यह वही जानते हैं, जिन्हें इन का अनुभव है । जितनी देर मुकदमे चलते रहते हैं, पक्षी-प्रतिपक्षी के मन दूसरे के प्रति क्रोध से उबलते रहते हैं । कभी-कभी तो उस क्रोध के वशीभूत होकर न्यायालयों के प्रांगण में भी मार-पीट तथा हत्याएँ हो जाती हैं । इसलिए क्रोध-विजय के लिए यथासम्भव मुकदमेबाजी से बचना ही उचित है ।

## २२. ईर्ष्या-त्याग

दूसरों के धन, विद्या, यश, सुख आदि को अपने धनादि से अधिक देख कर जी में होने वाली जलन का नाम ईर्ष्या है । यह ऐसी आग है जो हमारे ही जी को नहीं जलाती, क्रोध-रूपी अग्नि को उत्पन्न कर दूसरों को भी जलाने पर हमें विवश करती है । हम क्रोध-वश होकर ऐसे उपाय अपनाते हैं जिनसे उस व्यक्ति का जीवन हमसे अधिक सुखी न रहे । उसका धन क्षीण हो जाय, यश कलंकित हो जाय, सुख स्वाहा हो जाय । यदि हमारे मित्र ने कोई वस्तु बाँटी और हमें किसी अन्य की अपेक्षा थोड़ी दी, तो हम दोनों पर क्रुद्ध होने लगते हैं । उसने दूसरे को अधिक क्यों दी, मुझे थोड़ी क्यों ? ईर्ष्यालु

व्यक्ति यह नहीं सोचता कि मुझसे कम धन, विद्या, यश, सुख वाले भी तो सहस्रों लोग संसार में विद्यमान हैं। क्या वे मुझ से ईर्ष्या करें तो उचित है? इस प्रकार ईर्ष्या-शान्ति के द्वारा कोप-शान्ति करना उचित है।

## २३. उपेक्षा-वृत्ति

संसार में अज्ञानियों, दुष्टों, पिशुनों तथा शत्रुओं की कोई कमी नहीं। वे सज्जनों को सताने के लिए अनेक प्रकार की बातें, संकेत तथा क्रियाएँ करते रहते हैं। जैसे सज्जनों को सुख दूसरों को सुखी बनाने से मिलता है, वैसे ही दुर्जनों को सुख दूसरों को दुःखी बनाने से। इसलिए कोई आवश्यक नहीं कि हम उनकी प्रत्येक बातें सुनें ही, प्रत्येक चेष्टा देखें ही। कुत्ता यदि पथिक को भौंके वा काटे तो पथिक उसे भौंक व काट कर बदला नहीं ले सकता। सो शान्त रहने के लिए सज्जनों का कर्तव्य यही है कि ऐसे शब्दों को अनसुने कर दें और ऐसे दृश्यों को अनदेखे। इसी प्रकार कभी यह जानने का उद्योग न करना चाहिए कि अमुक व्यक्ति ने हमारे विरुद्ध कब, कहाँ, क्या कहा है। ऐसा करना तो जान-बूझकर क्रोध को निमंत्रित करता है। उपेक्षा-वृत्ति के धारण में निम्नलिखित उद्धरण प्रशंसनीय प्रेरणा प्रदान करते हैं—

**( क ) भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः**
**भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥** ( ऋग्वेद ३।८९।८ )
**अर्थात् हे पूजनीय देवताओ, हम कानों से भद्र**
**ही सुनें तथा आँखों से भद्र ही देखें**

**( ख ) बुरा काम हम कभी न देखें,**
**यही बात मन में गुनना।**
**निन्दा-जनक दुष्ट बातों को,**
**कभी भूल कर मत सुनना॥**

( मन की शान्ति, पृ० २५१ )

## २४. शान्त-वृत्ति

क्रोध-विजय के निमित्त मन की वृत्ति शान्त रखने के लिए सदा सजग रहना चाहिये। इसके लिए आवश्यक है कि अपनी क्रियाओं की तीव्र गति को कम किया जाय। यदि एक मनुष्य सभी कार्य स्वयं करने का उद्योग करेगा

तो कभी शान्त नहीं रह सकेगा । इसलिए अपने अनेक कार्य दूसरों को सौंपने चाहिए तथा जो काम स्वयं ही करने हों उन्हें व्याकुलता से नहीं, शान्ति-पूर्वक करना चाहिए । कभी यह न समझना चाहिए कि मेरे बिना अमुक काम कोई कर ही नहीं सकता । सदा यही समझना चाहिए कि संसार मेरे बिना भी भलीभाँति चलता आया है तथा चलता रहेगा । जो लोग व्याकुलता-पूर्वक अधिकाधिक कार्यों में दिन-रात जुटे रहते हैं, निःसन्देह वह मानसिक शान्ति के साथ निज आयु भी क्षीण करते हैं । एक विद्वान् का तो सुझाव है कि अशांत व्यक्तियों को प्रति सप्ताह कम-से-कम एक बार घंटा-दो-घंटे किसी श्मशान वा कब्रिस्तान में अवश्य बैठना चाहिए, ताकि मनुष्य-जीवन का वास्तविक मूल्य व अन्त सुविदित हो जाय, जीवन की दौड़-धूप व अशान्ति कम हो ।

मन की शान्ति के लिए निम्नलिखित साधनों से भी सहायता लेनी चाहिए—

( क ) बिस्तर वा आरामकुर्सी पर आँखें बंद कर लेट जाएँ । अन्य विचार मन से निकालकर यह अनुभव करें कि मेरा सिर शान्त हो रहा है, बाहु शान्त हो रहे हैं, धड़ शान्त हो रहा है, आदि-आदि ।

( ख ) अपने अशान्त मन की आँधी-युक्त सर से समता करें तथा क्रमशः यह कल्पना करें कि उसकी लहरें शान्त हो रही हैं ।

( ग ) धीरे-धीरे शान्ति-पूर्वक "ॐ शान्ति-शान्ति-शान्ति" मंत्र का पाठ करें ।

( घ ) स्वजीवन की उन अतीत घटनाओं का स्मरण करें जब आप प्रभु-कृपा से मृत्यु-मुख से छूट गये थे । विश्वास करें कि वही ईश्वर भविष्य में कृपा करेगा ।

( ङ ) एक-दो मिनट प्रकृति के उन अत्यन्त शान्त-सुन्दर दृश्यों का स्मरण करें जो आपने कभी कहीं देखे हों ।

## २५. पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त

अज्ञान अथवा आत्मिक दुर्बलता के कारण मनुष्य अनेक भूलें, पाप वा अपराध कर बैठता है । यदि वे अपराध शासन की दृष्टि में दण्डनीय हों तो शासन ही अपराधी को अर्थदण्ड, कारादण्ड, प्राणदण्ड आदि दे देता है । परन्तु

कई काम राज्य की दृष्टि में दंडनीय न होते हुए भी नैतिक वा सामाजिक दृष्टि से अनुचित होते हैं।

झूठ बोलना, प्रतिज्ञा पूरी न करना, कम तौलना, वस्तु समय पर न लौटाना, अनुचित क्रोध करना आदि ऐसे ही काम हैं। सामान्य व्यक्ति तो ऐसे कार्य निरन्तर करने ही रहते हैं और इन्हें स्वराज्य के समान अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझते हैं। परन्तु चरित्रवान् व्यक्ति अपने प्रत्येक वचन व चेष्टा के प्रति सचेत रहते हैं। यदि उनसे कोई ऐसी भूल हो जाय तो उसके पीछे उन्हें ताप वा दुःख होता है। यह 'पीछे तपना' ही 'पश्चात्ताप' है। वे इसी पर सन्तुष्ट नहीं होते। अपनी भूल के लिए कभी स्वयं ही अपने को कोई दंड दे देते हैं अथवा उस भूल से जिसे हानि वा कष्ट पहुँचा हो उससे जाकर क्षमा माँगते हैं वा उस हानि के बदले में कोई धन-राशि आदि दे देते हैं। पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त, दोनों ही, दोष दूर करने के स्तुत्य साधन हैं। यही कारण है कि प्रायः सभी धर्मशास्त्रों में भूल-सुधार व पाप-परिहार के लिए इन्हें अपनाने की प्रबल प्रेरणा की गई है। क्रोधी व्यक्ति ने यदि वाणी वा हाथ-पाँव आदि से किसी का अनिष्ट किया हो तो उसे भी क्रोध-विजय में इन उपायों की सहायता लेनी ही चाहिए।

## २६. दूसरों की क्रोध-शान्ति

किसी प्राचीन संस्कृत-कवि का कथन है—

**ये क्रोधं संनियच्छन्ति क्रुद्धान् संशमयन्ति च।**
**न च कुप्यन्ति भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥**

(व्याख्यानमाला, पृ० १७)

"जो अपने क्रोध को वश में रखते हैं, क्रुद्ध लोगों को शान्त करते हैं तथा प्राणियों पर कुपित नहीं होते वे कठिनाइयाँ पार कर जाते हैं।"

अपना क्रोध जीतने के प्रमुख उपायों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। पर बात इतने से ही बनती नहीं। हम तो क्रोध करें नहीं और दूसरे करते ही जायँ, तो इससे संसार में शान्ति तो तभी होगी जब दूसरे भी क्रोध न करें। हम अपने मन को तो कुछ-न-कुछ वश कर भी सकते हैं, दूसरे का मन कैसे वश करें, उन्हें कैसे शान्त बनायें?

सोचा जाय तो इस प्रश्न का उतर भी पीछे अप्रत्यक्ष रूप से आ ही गया है। हम क्रोध के कारणों व परिणामों का उल्लेख ऊपर कर ही चुके हैं। यदि अन्य लोग उन कारणों से बचें तो हमें क्रोध नहीं आयगा और हम उन कारणों से दूर रहें तो तो दूसरें कुपित न होंगे। इसी तरह पारस्परिक सहयोग से समाज में शान्ति-स्थापना में सहायता मिलेगी ही। इसी प्रकार यदि दूसरे व्यक्ति भी क्रोध-विजय के उपाय अपनाएँ तो वे भी शान्त रहेंगे। परन्तु यदि वे न अपनाएँ, क्रोध करते ही जाएँ तो उनका कोप शान्त करने के लिए हम क्या करें?

प्रथम देखना यह चाहिए कि क्रोधी के क्रोध का लक्ष्य कौन है, हम व कोई अन्य। यदि वह हम पर गरम हो रहा है, तो क्या सचमुच हमसे कोई ऐसी भारी भूल हो गई है, जिससे उसका पारा वहुत चढ़ गया है। यदि ऐसा हो तो हमें अपने अपराध के अनुसार खेद-प्रकाश, क्षमा-याचना, चरण-स्पर्श; क्षति-पूर्ति आदि करने में संकोच न करना चाहिए। इससे आशा है, उसका पारा उतर जायगा। यदि हमने तो वस्तुत: कोई भूल वा अपराध न किया हो और वह किसी भ्रान्ति के कारण हमें दोषी मानकर क्रुद्ध हो रहा हो, तो उसे शीतल वाणी से समझा देना चाहिए कि आपको गलती लग रही है। वाइबिल में वहुत अच्छा कहा गया है—

"कोमल उत्तर से क्रोध ठंडा होता है, किन्तु कटु शब्द क्रोध भड़काता है।"

( पु. ध. नि.; नीतिवचन, १५।१ )

यदि हमारी निर्दोषता उसकी समझ में आ गई तो वह शान्त हो जायगा, यदि न आई तो कुछ क्षण बड़बड़ाता रहेगा। यदि इस पर भी हमने क्रोध न किया और शान्त रहे तो सम्भावना यही है कि उसका हृदय-परिवर्तन हो जायगा और वह लज्जित होकर हमसे क्षमा माँग लेगा। इसी उपाय को महात्मा बुद्ध ने अधोलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—

**अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने।**
**जिने कदरियं दानेन, सच्चेन अलिकवादिनम्॥**

( धम्मपद, कोधवग्गो, ३ )

"अक्रोध से ( क्रुद्ध व्यक्ति के ) क्रोध को जीते; दुर्जन को सज्जनता से जीते, कृपण को दान से जीते; झूठे को सत्य से जीते।

अंग्रेज कवि शेक्सपियर का मत भी इस संदर्भ में अवलोकनीय है—

"जब किसी को उग्र क्रोध आया हुआ हो तो उसका विरोध मत करो, बल्कि उसे निकल जाने दो और नष्ट होने दो।"

इस पर भी यदि वह अपनी वाणी व हाथों को वश में न रखे तो उस समय जैसे-तैसे उस से दूर हट कर राजकीय विधानानुसार ही कार्यवाही करनी चाहिए। यदि वह प्राण लेने पर ही उद्यत हो तो पूरी शक्ति से प्रतिरोध करना चाहिए।

यदि किसी के क्रोध का लक्ष्य हम न हों, कोई दूसरा हो और दोनों मार-पीट पर उतर आयें और हम उस समय वहाँ उपस्थित हों, तो शान्ति-प्रिय नागरिक के रूप में हमारा कर्तव्य हो जाता है कि दोनों को एक दूसरे से पर्याप्त दूर ले जायें तथा शीतल जल पिलाएँ, कलह के कारण विस्तारपूर्वक पूछें तथा समझा-बुझाकर, उन्हें शान्त करने का यत्न करें। इस समझाने-बुझाने में भी पर्याप्त सूझ-बूझ की आवश्यकता होती है। एक को हम कह सकते हैं, तुम तो सुशिक्षित हो और तुम्हारा विरोधी गँवार हैं। क्या शिक्षित लोगों का गँवारों से उलझना गौरववर्द्धक है? दूसरे से दूसरे लोग कह सकते हैं, देखो, भूल तो तुम्हारी ही है। मनुष्य से भूल हो जाती है। भूल के लिए क्षमा माँग लेना ही भले लोगों को सोहता है। तत्पश्चात् पहले से कहा जा सकता है, देखो, बेचारा अपनी भूल पर पश्चात्ताप कर क्षमा माँग रहा है। बदला लेनेवाले की अपेक्षा क्षमा-याचक को क्षमा कर देने वाला ही महान् होता है। देखो, उसे तुम घायल कर दोगे वा जान से मार दोगे तो क्या तुम राजकीय दण्ड न भोगोगे? यदि तुम बन्दी बन गये वा सूली पर चढ़ गये तो सज्जन तथा विरोधी क्या कहेंगे? सज्जन तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा को व्यर्थ बतायेंगे तथा विरोधी खुशी से खिलखिलायेंगे। हम क्रुद्ध मनुष्य को यह भी कह सकते हैं कि तुम्हारा क्रोध-पात्र सचमुच दोषी है; उसे दण्ड देना ही चाहिए, परन्तु इस प्रकार सब के संमुख दिन-दहाड़े नहीं। उपाय वह करना चाहिए कि 'साँप मरे; न लाठी टूटे।' उसे दण्ड भी मिल जाय और तुम्हें

कोई हानि भी नहीं। इस प्रकार की अवसरोचित बातों से क्रोधी का क्रोध उस काल प्रायः स्थगित हो जाता है और अधिकतर मामलों में वह फिर जगता नहीं।

यह स्मरण रखना चाहिए कि क्रुद्ध मनुष्य को कभी डाँटना-फटकारना न चाहिए। इससे उसका क्रोध शान्त नहीं होता, अधिक भड़कता ही है। डाँट-फटकार का यह कार्य तो वही व्यक्ति कर सकता है जिसका कि क्रुद्ध व्यक्ति पर कोई विशेष अधिकार वा प्रभाव हो। उदाहरणार्थ, रोमन सम्राट् आगस्टस सीज़र अपने एक सामन्त वीडियस पोलियो के साथ उसी के घर में भोजन कर रहा था। जब एक युवक सेवक से प्याला गिर कर टूट गया तब समृद्ध तथा क्रुद्ध वीडियस ने आदेश दिया कि इस सेवक को पकड़ कर सरोवर की सर्पाकार घातक मछलियों ( Lampreys ) के आगे डाल दिया जाय। वह त्रस्त युवक सिपाहियों के हाथ से खिसक कर, सीजर की जंघाओं से चिपक कर बोला—"मुझे किसी अन्य प्रकार से भले ही मार दिया जाय, परन्तु मछलियों का भोजन न बनाया जाय।" अपने सामन्त की यह निर्दयता देख सीज़र चकित रह गया और बोला—"इस युवक को क्षमा किया जाय, सब प्यालों को तोड़ दिया जाय तथा तालाब को पाट दिया जाय।" अपने सामन्त को भी डाँटते हुए उसने कहा, 'क्या यह उचित है कि जरा सी भूल पर युवक को सहभोज से सीधा मृत्यु-मुख में धकेल दिया जाय और वह भी सीज़र के सामने ?" वीडियस, सीज़र के सम्मुख सिर न उठा सका। इस घटना से सिद्ध होता है कि बड़ों का भय भी छोटों की क्रोध-शान्ति का कारण बन जाता है।

●

अष्टम अध्याय

# क्रोध-विजयी व्यक्ति

पिछले अध्यायों में हम ने क्रोध के स्वरूप, कारणों, परिणामों तथा विजय के उपायों का उल्लेख किया है। निस्सन्देह उनके परिशीलन से हमारे मन में क्रोध पर विजय पाने की तथा स्व-स्वभाव को शान्त बनाने की इच्छा उत्पन्न हुई होगी। इस अध्याय में हम विभिन्न देशों, कालों, धर्मों तथा वर्गों से सम्बन्धित विशिष्ट व्यक्तियों की कुछ ऐसी जीवन-घटनायें प्रस्तुत कर रहे हैं, जिन का सम्बन्ध क्रोध-विजय से है। इन घटनाओं का अध्ययन कर यदि कोई यह समझने लगे कि ये 'क्रोध-विजयी' व्यक्ति सर्वथा निष्क्रोध थे, अर्थात् इन्होंने स्व-जीवन में कभी किसी पर किंचित् भी कोप नहीं किया, तो यह ठीक न होगा। हम पीछे दिखा चुके हैं कि देवता, ऋषि, मुनि, पीर, पैगम्बर प्रायः सभी ने कभी-न-कभी क्रोध किया ही है। इसके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जन्म से भी सब के स्वभाव समान नहीं होते। हमारा अभिप्राय तो इतना ही है कि क्रोधी स्वभाव के व्यक्ति भी सावधान रहने पर धीरे-धीरे क्रोधमुक्त हो सकते हैं। जैसे—मनुष्य अन्य अनेक बातें क्रमशः सीखता हुआ उन्नति करता है, वैसे ही वह साधना करता हुआ अपने स्वभाव की कठोरता व क्रूरता का त्याग कर कोमल व शान्त बन सकता है। कहावत है कि कथनी से करनी तथा उपदेश से उदाहरण उत्कृष्ट होता है। हमारा विश्वास है, निम्नलिखित लोगों की क्रोध-विजय सम्बन्धी मार्मिक घटनायें हमें आड़े समयों में प्रेरणा प्रदान करेंगी तथा उन संकटों से बचाने में सहायक सिद्ध होंगी जिन में हम अपने अनियंत्रित क्रोध के कारण सहज ही संकट में पड़ सकते हैं।

## महर्षि दधीचि : अपकारक के उपकारक

बलशाली असुर वृत्र ने देवताओं का दम नाक में कर रखा था। उन्हें बताया गया कि वृत्र का वध दधीचि ऋषि की हड्डियों से निर्मित वज्र से ही

संभव है, अन्यथा नहीं। परन्तु देवता दधीचि के पास जायँ क्योंकर ? क्योंकि देवराज इन्द्र ने तो एक बार अलम्वुषा नामक अप्सरा भेज कर उनके तप में विघ्न डाला था। परन्तु मरता क्या न करता ? देवताओं ने विवश होकर दधीचि से अस्थि-दान की प्रार्थना की। दधीचि चाहते तो देवताओं को लज्जित कर चलता करते। परन्तु उन्होंने उदारता-वश प्रतिशोध की भावना का परित्याग कर, लोक-हित की भावना स्वीकार कर सहर्ष स्व-प्राण त्याग दिये। तत्पश्चात् उनकी अस्थियों से निर्मित वज्र द्वारा वृत्रासुर मारा गया और देवता सुखी हुए। धन्य थे प्रतिशोध-परित्यागी दधीचि !

## महर्षि पिप्पलाद का प्रतिशोध-त्याग

देवताओं के लिए प्राण-त्याग तथा अपनी अस्थियों तक का दान करने वाले अनुपम परोपकारी महर्षि दधीचि के पुत्र का नाम था पिप्पलाद। जब पिप्पलाद को पता चला कि देवताओं ने अपने परित्राण के लिए मेरे पिताजी के प्राण लिये हैं, तब उन्होंने प्रतिशोध लेने की शपथ ली और शिवजी को प्रसन्न करने के लिए घोर तप करने लगे। जब तप से तुष्ट शिवजी ने प्रकट होकर यथेष्ट वर माँगने को कहा तो पिप्पलाद बोले—"भगवन्, कोई ऐसा व्यक्ति दीजिए जो देव-संहार में मेरा सहायक हो।" शिवजी की इच्छा-मात्र से तत्काल प्रकट हुई एक राक्षसी बोली—"कहिए, यह सेविका आप की क्या सेवा करे ?" पिप्पलाद ने उसे सब सुरों का संहार करने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही राक्षसी पिप्पलाद के प्राण लेने को झपटी। जब पिप्पलाद ने हक्का-बक्का होकर पूछा, "यह क्या ?" तब वह बोली—"तुम्हारी ही आज्ञा का तो पालन कर रही हूँ। देवता तो तुम्हारे अन्दर भी बसते हैं। तुम्हारे नेत्रों में सूर्य-देवता का, बाहुओं में इन्द्र-देवता का, रसना में वरुण-देवता का निवास है, आदि-आदि। इसीलिए सुर-संहार का आरम्भ तुम्हीं से कर रही हूँ, क्योंकि तुम समीपतम हो।"

पिप्पलाद को लेने के देने पड़ गये। जैसे-तैसे राक्षसी से पिंड छुड़ा, हाँफता-काँपता शिवजी की चरण-शरण में जा पड़ा। शिवजी बोले—'क्रोध का परिणाम नाश ही होता है। तुम ने जो माँगा, सो पाया। यदि मेरे कहने से राक्षसी तुम्हें छोड़ भी दे, तो भी सब देवों को तो मारेगी ही। उनकी हत्या

का पाप भी तुम्हें ही लगेगा। सूर्य, इन्द्र, वरुण आदि देवताओं के बिना सम्पूर्ण संसार समाप्त हो जायगा। देवताओं ने तुम्हारे पिता का वध नहीं किया था, उनसे अस्थि-दान की प्रार्थना की थी, जिसे उन्होंने उदारता-वश सहर्ष स्वीकार किया था। इस पर तुम्हें कुपित होकर प्रतिशोध का विचार न करना चाहिए था।"

पिप्पलाद को अपनी भूल समझ पड़ गई। उसने अपने क्रोध को थूक कर शिवजी से क्षमा माँगी। शिव की प्रेरणा से राक्षसी लुप्त हो गई और पिप्पलाद ने क्रोध व प्रतिशोध के परित्याग का प्रशंसनीय पाठ पढ़ लिया।

## परशुराम का क्रोध-त्याग

ऋषि जमदग्नि के सब से छोटे पुत्र राम ने तप द्वारा शिव को प्रसन्न कर अग्निमय परशु ( कुल्हाड़ा ) प्राप्त किया था और तब से वे परशुराम कहलाते थे। जब इनके पिता जमदग्नि को दक्षिण के राजा कार्तवीर्य अर्जुन ने मार डाला, तब परशुराम आश्रम में न थे। इनके लौटने पर माता रेणुका ने इन्हें कार्तवीर्य की करतूत से परिचित किया। तब इन्होंने कार्तवीर्य के वध की तथा इक्कीस बार क्षत्रियजाति के संहार की प्रतिज्ञा की और उसे पूर्ण भी किया। इन्होंने क्षत्रियों के रुधिर से कुरुक्षेत्र के समीपवर्ती समन्तपंचक के पाँच सर भर दिये थे और उन्हीं तालाबों में पितृ-तर्पण कर के महर्षि ऋचीक का दर्शन पाया था। ऐसे क्रोधी परशुराम पर ( जिन्हें विष्णुपुराण में छठा व भागवत पुराण में सोलहवाँ अवतार माना गया है ) ऋचीक के सदुपदेश का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि ये क्रोध व क्षत्रिय-वध को तिलांजलि देकर महेन्द्र-पर्वत पर तप करने चले गये।

## द्रौपदी की दयालुता

महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया। कौरव पराजित हुए, पांडव विजयी। भीष्म, द्रोणाचार्य आदि अनेक वीरों ने वीरगति प्राप्त की थी, परन्तु द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा अभी जीवित था। वह दिन-रात इस बात से जल रहा था कि द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न ने मेरे पिता की तब हत्या की थी, जब उन्होंने मेरी मृत्यु का मिथ्या-समाचार सुन शस्त्रास्त्र फेंक दिये थे। उसने पितृ-वध का प्रतिशोध लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया, परन्तु दिन में ऐसा

करना टेढ़ीखीर थी । तव उसने द्रुपद-वंश को निर्मूल करने के लिए रात को यह कार्य करने का निश्चय किया ।

विजय के कारण पाण्डव व उनके साथी रात को निश्चिन्त होकर शिविर में सोये थे कि अश्वत्थामा दबे पाँव जा पहुँचा । उसने निज खड्ग से धृष्टद्युम्न व द्रुपद के अनेक वंशजों का ही नहीं, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों का भी वध कर दिया तथा शिविर में आग लगा दी । द्रौपदी ने यह समाचार सुना तो सिर पीट लिया । माता के लिए तो एक पुत्र का वियोग भी प्राणान्तक होता है और यहाँ तो द्रौपदी को पाँचों पुत्रों का वियोग एक ही साथ सहना पड़ा । वह जलहीन मीन की भाँति भूमि पर गिर कर तड़पने लगी और अर्जुन से पुत्र-वध का प्रतिशोध लेने का आग्रह करने लगी ।

जब वीर अर्जुन ने निज गुरु-पुत्र अश्वत्थामा को पकड़कर द्रौपदी के सम्मुख ला खड़ा किया तब उस समय द्रौपदी चाहती तो अश्वत्थामा का जीवन समाप्त करा सकती थी । परन्तु सहसा उसके क्रोध पर क्षमा ने विजय पा ली । वह बोल उठी—"इसे क्षमा कर दो । जैसे अपने पुत्रों के वियोग में मैं व्याकुल हो रही हूँ, वैसे ही इसकी मृत्यु पर इसकी माता भी दुःखी होगी ही । इसके मरने से मेरे पुत्र तो वापस आने से रहे, फिर एक अन्य माँ को क्यों पुत्र-वियोग का दुःख दूं । सब पांडव द्रौपदी की क्षमा देख दंग रह गये ।

## हज़रत यूसुफ की उदारता

यहूदियों, ईसाइयों तथा मुसलमानों के पैगम्बर हज़रत यूसुफ़ ( १६७८-१५७० ई० पू० ) के भाइयों ने ईर्ष्यावश उन्हें एक कुएँ में फेंक दिया कि मर जायँ । परन्तु, परमात्मा की कृपा से परिस्थिति ऐसी परिवर्तित हुई कि वे वहाँ से वचकर मिस्र देश में राजमन्त्री बन गये । कुछ काल बाद ऐसा अकाल पड़ा कि वे ही क्रूर भाई भूख के मारे हज़रत यूसुफ के पास अन्नदान की प्रार्थना करने पर विवश हुए । यूसुफ चाहते तो अपने क्रूर भाइयों को उनके कर्म का कठोर दंड देते । परन्तु उन्होंने अपने भाइयों का पाप भी क्षमा किया और उन्हें यथेष्ट अन्नादि देकर मौत के मुख से भी बचा लिया । इस प्रकार उन्होंने अपकार का बदला उपकार से ही लिया । धन्य है यूसुफ की क्षमाशीलता !

## महावीर स्वामी की क्षमाशीलता

जैनों के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी वन में समाधिमग्न बैठे थे। न उन्हें अपनी सुध-बुध थी, न आस-पास की। एकाएक एक किसान स्व-बैल सहित वहीं आ निकला। सम्भवतः वह घर में कोई वस्तु भूल आया था। उसी ने सोचा, सन्तजन परोपकारी होते ही हैं, बैलों को इनकी देख-रेख में छोड़ घर हो आऊँ। इसी आशय से उसने कहा—"महात्मन्, कृपया मेरे बैलों का ध्यान रखिएगा; मैं इन्हीं पैरों लौट रहा हूँ।" न महावीर स्वामी ने ये शब्द सुने और न कुछ बोले। किसान ने समझा, इन्होंने 'न' नहीं की, इस कारण वह निश्चिन्त होकर चला गया। परन्तु न तो बैल लूले थे और न बन्धन में। जिधर सींग समाया, चल दिये।

किसान लौटा तो महात्मा थे जहाँ के तहाँ और बैल न यहाँ न वहाँ। उसने महावीर स्वामी से पूछा तो बोले नहीं, हिलाया तो हिले नहीं। क्रुद्ध होकर उसने गालियाँ भी दी और पीटा भी, परन्तु महावीरजी की समाधि न खुली। उसने सोचा, बाबा छल कर रहा है। लाचार उसने नुकीली लकड़ी लेकर महावीर के कान में ठोंक दी। दूसरे कान से लकड़ी के साथ ही रुधिर की धारा बह निकली, परन्तु सहनशील महावीर शान्त रहे।

क्रुद्ध किसान की क्रूरता देख दुःखी देवराज इन्द्र का कोप भड़क उठा। वे वज्र-सहित भूमि पर उतर आये और किसान का काम तमाम करने पर तैयार हो गये। परन्तु उदार महावीर स्वामी बोले—"देवराज, इसने जो कुछ किया है, भ्रमवश किया है। इसके अज्ञानजनित अपराध का दण्ड वध नहीं, क्षमा है!" इन्द्र महावीर की क्षमाशीलता पर चकित हो लौट गये।

## महात्मा बुद्ध की सहनशीलता

(क) कौशम्बी-नरेश उदयन की रानी जब कुमारी थी, तब उसके पिता ने महात्मा बुद्ध से अनुरोध किया था कि आप इसे पत्नी-रूप में स्वीकार कीजिए। उस समय महात्मा बुद्ध ने कहा था—"भद्र, मैंने गृहस्थी इसी कारण छोड़ी है कि मनुष्य-शरीर से मेरा मोह उठ गया है। गृहस्थ-जीवन में मुझे रत्ती-भर भी रस अनुभव नहीं होता। सो आप ही कहिए, आप की पुत्री का पाणि-ग्रहण कैसे करूँ?"

बुद्ध के उत्तर से कन्या के पिता तो तुष्ट हो गये किन्तु कन्या रुष्ट। वह सुन्दर थी, कुलीन थी, गुणवती थी परन्तु गर्ववती भी थी। बुद्ध के निषेध से उसके गर्व को ठेस लगी और बुद्ध के प्रति वैर ने उसके हृदय में घर कर लिया। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि समय आने पर बुद्ध से अपने अपमान का बदला लेकर ही छोड़ूँगी।

कुछ काल बाद वही कन्या उदयन की रानी बनी। जब महात्मा बुद्ध धर्म-प्रचार करते हुए कौशम्बी पधारे तब मानो बिल्ली के भागों छींका टूटा। रानी को वैर निकालने का अवसर मिल गया। उसने नगर के कुछ गुण्डों को धन देकर इस बात पर तैयार कर लिया कि जब शिष्यों-सहित बुद्ध नगर में भिक्षा के लिए निकला करें, तब तुम उन्हें खूब गालियाँ दिया करना। रानी की आज्ञा का अक्षरशः पालन हुआ। जब-जब बुद्ध शिष्यों-सहित भिक्षार्थ निकलते, तब-तब उन्हें अश्लील गालियाँ सुननी पड़ती। दुष्टों के दुर्व्यवहार से शिष्य दुःखी हुए और प्रमुख शिष्य आनन्द ने बुद्ध से नगर छोड़ देने की प्रार्थना की। बुद्ध ने पूछा—यदि दूसरे नगर में भी इन लोगों ने वैसा ही किया तो? आनन्द बोला—तीसरे नगर को चल देंगे। बुद्ध बोले–यदि वहाँ भी यही बात दोहराई गई तो? आनन्द ने कहा—कहीं और चल देंगे।

इस पर बुद्ध ने कहा—"यदि यही क्रम निरन्तर चलता रहा तो हमारे कष्ट कभी नष्ट न होंगे। अच्छा यही है कि यहीं दो-चार दिन इनके कुवचनों की बौछार सह लें। हमारी इस उपेक्षा से वे शान्त हो जायँगे।"

बुद्ध की बात सत्य सिद्ध हुई। सप्ताह-भर की सहनशीलता ने दुष्टों की दुष्टता को नष्ट कर दिया।

## महात्मा बुद्ध की शान्ति

(ख) एक ब्राह्मण महात्मा बुद्ध पर इस कारण क्रुद्ध था कि इन्होंने उसके एक सम्बन्धी को स्व-शिष्य बना लिया था। उसने बुद्ध के पास पहुँचकर, गुस्से से भरकर, गालियों की बौछार आरम्भ कर दी। बुद्ध अचल (पर्वत) के तुल्य अचल बैठे रहे, तनिक भी विचलित न हुए। जब ब्राह्मण बक-बककर थक गया, तब महात्मा बुद्ध बोले—"भद्र, जब तुम्हारे अतिथि तुम्हारे द्वारा अर्पित पदार्थ स्वीकार नहीं करते, तब तुम उन्हें क्या करते हो?" ब्राह्मण ने

उत्तर दिया—"वे हमारे पास ही रहते हैं और क्या।" इस पर बुद्ध बोले—"भाई, मैंने भी तुम्हारी गालियाँ स्वीकार नहीं की।"

बुद्ध की सहनशीलता व क्रोध के अभाव से प्रभावित तथा लज्जित हो वह ब्राह्मण भी, अपने सम्बन्धी के समान ही, बुद्ध का शिष्य बन गया।

## शाहचांग की क्षमाशीलता

पुरानी बात है, चीन के एक मंत्री का नाम था शाहचांग। एक बार राजा ने उसे एक आवश्यक विषय का विस्तृत विवरण अगले ही दिन प्रस्तुत करने का आदेश दिया। मंत्री एक सहायक के साथ तुरंत उस कार्य में संलग्न हो गया। कार्य पर्याप्त कठिन था। आधी रात के लगभग जाकर समाप्त हुआ। मंत्री उठकर सोने के कमरे में जाने लगा तो सहायक भी उठा। संयोग की बात, सहायक के पाँव से मेज को ठोकर लगी और जलते हुए लैंप के गिरने से सम्पूर्ण विवरण स्वाहा हो गया, किया-कराया सब मिट्टी में मिल गया। सहायक पवन-प्रेरित पीपल-पत्रवत् काँपने लगा। उसने समझा कि आज जान की खैर नहीं, क्योंकि प्राचीन काल के राजा, मंत्री आदि क्रुद्ध होकर प्रायः अपराधी को पिपीलिका के सदृश पीस देते थे। परन्तु शाहचांग ने ऐसा नहीं किया। उसने कहा—"डरो मत। तुमने विवरण जान-बूझ कर तो नहीं जलाया। संयोग से ऐसा हो गया है। आओ, हम पुनः काम में जुट जायें तथा प्रातः तक पुनः तैयार कर लें।"

दोनों के रात-भर जग कर कार्य करने से विवरण पुनः लिख लिया गया तथा समय पर सम्राट् के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया गया।

शाहचांग की क्षमाशीलता आज भी चीन में गौरव से स्मरण की जाती है।

## पिसिस्ट्रेटस का क्रोध-दमन

एथेंस (यूनान) का क्रूर शासक पिसिस्ट्रेटस (शासन ५६०-५२७ ई०पू०) एक बार अपने एक अतिथि के साथ भोजन कर रहा था। अतिथि कुछ अधिक पी गया तथा उसके नशे में पिसिस्ट्रेटस के अत्याचारों का विस्तृत वर्णन करने लगा। पिसिस्ट्रेटस के दोनों ओर अंगरक्षक नंगी तलवारें लिये खड़े थे और उन लोगों की भी कमी न थी, जो उसे उस अतिथि के विरुद्ध उत्तेजित कर रहे थे।

इस पर उस क्रूर व क्रोधी शासक ने चित्त को शांत रखा और इतना ही कहा—"मैं इस पर इतना ही क्रुद्ध हूँ, जितना उस पर, जो आँखों पर पट्टी बाँध कर अज्ञानवश मुझसे टकरा जाय।"

## प्रेक्सेसपेस का कोप-दमन

मनुष्य ने ऐसी-ऐसी विकट परिस्थितियों में क्रोध को वश में किया है कि जिनका वर्णन पढ़ सहज ही रोमांच हो जाता है। प्रेक्सेसपेस, ईरान के राजा केम्बेसेस (शासन ५२९-२२ ई० पू०) का एक प्रियतम मित्र था। केम्बेसेस अत्यधिक सुरा-पान करता था, इस कारण प्रेक्सेसपेस ने एक बार उससे थोड़ी पीने को कहा, क्योंकि सब प्रजाजनों की दृष्टि शासक के चरित्र पर रहती ही है। इस पर केम्बेसेस बोला—"मैं अभी सिद्ध कर दूँगा कि बहुत पीने के बावजूद मैं अपनी सुध-बुध नहीं खोता और मेरे अंग पूर्ववत् कुशलता के काम करते हैं।"

इस पर राजा ने भर-पेट पी और प्रेक्सेसपेस के पुत्र को बायाँ बाहु ऊपर उठाकर दहलीज के बाहर खड़ा होने का आदेश दिया। "मैं इसके हृदय को बाण का लक्ष्य बनाऊँगा", यह कहकर उसने अपने मित्र के पुत्र पर तीर चला दिया। जब बालक बाण-विद्ध होकर गिर गया, तब बादशाह ने उसकी छाती चीर मित्र को दिखा दिया कि तीर ठीक लक्ष्य पर ही बैठा है। तब उसने मित्र से पूछा—कहो, सुरापान पर भी मेरा हाथ लड़खड़ाया तो नहीं? प्रेक्सेसपेस बोला—राजन्, स्वयं अपोलो देवता भी ऐसा अचूक निशाना न लगा सकते।

यद्यपि हम प्रेक्सेसपेस की इस चाटु-भरी उक्ति की प्रशंसा नहीं कर सकते, तो भी इस घटना से इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि मनुष्य अत्यन्त दुर्दम क्रोध का भी दमन कर सकता है।

## सुकरात की सहिष्णुता

(क) यूनान के विख्यात विद्वान् सुकरात (४६९ ३९९ ई० पू०) की सहधर्मिणी का स्वभाव बहुत तेज था। एक दिन वह किसी बात पर क्रुद्ध होकर काफी देर तक पति को बुरा-भला कहती रही। तत्त्वज्ञ सुकरात

शान्ति-पूर्वक सब सुनते रहे। तत्पश्चात् जब क्रुद्ध कर्कशा ने उन पर जूठे जल का पात्र उँड़ेल दिया, तब सहनशील सुकरात ने मुस्कराते हुए इतना ही कहा—गरजने के पश्चात् जल बरसता ही है।

( ख ) एक दिन सुकरात बन्धु-बांधवों के बीच बैठे हुए थे कि पत्नी ने कुपित होकर उन के मुख पर थप्पड़ दे मारा। सम्बन्धियों ने सुकरात को, स्त्री को दंड देने के लिए उत्तेजित किया, परन्तु वे बोले—"मैं नहीं चाहता कि हमारी लड़ाई देखकर तुम वैसे ही तालियाँ पीटो, जैसे गली के कुत्तों को लड़ते देख लड़के पीटा करते हैं।" आज ढाई सहस्र वर्ष बाद भी सज्जन सुकरात की सहनशीलता की स्तुति तथा उसकी तथा उसकी क्रोधिणी कुपत्नी की कटुता की कुत्सा ही किया करते हैं।

## अफ़लातूँ : क्रोध में दण्ड नहीं

( क ) यूनान के प्रख्यात दार्शनिक अफलातूँ ( ४२७-३४७ ई० पू० ) को एक बार अपने दास पर बहुत क्रोध आया। वह तनिक भी रुक न सका और बोला—"कमीज उतार कर कन्धे नंगे करो ताकि तुम्हें बेंतों से पीटूँ।" ज्योंही उसने पीटने को हाथ उठाया, उसे अनुभव हुआ कि मैं तो क्रोध में हूँ और क्रोध में दण्ड देना अनुचित है। तब वह तो भूमि पर और उसका हाथ हवा में पीटने की मुद्रा में खड़ा रह गया। कुछ काल बाद, संयोग से उसका एक मित्र वहाँ आ पहुँचा और आश्चर्य-पूर्वक बोला—यह क्या ? अफ़लातूँ ने कहा—मैं एक क्रोधी व्यक्ति को दण्ड दे रहा हूँ।

बात ठीक थी। दोषी दास तो अफलातूँ के दिल से दूर हो चुका था, किन्तु दार्शनिक अफ़लातूँ क्रोधाधीन हो जाने के कारण अपने आपको ही दण्ड देने की मुद्रा में स्थित था। इसके पश्चात् उसने परिजनों को दण्ड देने के अधिकार का परित्याग कर दिया। किन्तु एक बार जब उसके एक दास ने कोई भयंकर भूल कर उसे उत्तेजित कर दिया तब वह अपने भतीजे स्प्यूसिपस से बोला—"इस दुष्ट को तुम्हीं दण्ड दे दो, क्योंकि मैं क्रोध में हूँ और हो सकता है क्रोध में मैं इसे उचित मात्रा से अधिक दण्ड दे दूँ। इस सेवक को उस स्वामी के नियंत्रण में न होना चाहिए, जो अपने पर भी नियंत्रण नहीं रख सकता।" सामान्य जन क्रुद्ध होने पर दण्ड देते हैं, परन्तु अफ़लातूँ

इसीलिए स्वयं दण्ड न दिया कि वह क्रुद्ध था। निष्कर्ष यह कि क्रोध की वस्था में दिया गया दण्ड अनुचित हो सकता है, उससे बचना ही हितकर हैं।

## फ़लातूँ का नियंत्रित क्रोध

( ख ) सुकरात का शिष्य अफ़लातूँ ( प्लैटो ) एक ऐसे आदर्श राज्य की ल्पना किया करता था जिसके शासक दार्शनिक हों। अपनी कल्पना को ाकार करने के लिए वह सम्राट् डायोनीशस के निमंत्रण पर सिराक्यूज़ या। अधिकार के भूखे सम्राट् ने उसके क्रान्तिकारी प्रयोगों से भीत-त्रस्त ो, उसे मारने का आदेश दे दिया। कुछ सज्जनों के बीच-बचाव करने पर फ़लातूँ मृत्युमुख से तो बच गया, परन्तु उसे एक व्यापारी के हाथ बेच दिया ाया। कुछ ही समय बाद व्यापारी ने अफ़लातूँ की महत्ता समझी और उसे ुक्त कर दिया। एथेंस पहुँचने पर अफ़लातूँ को सम्राट् का एक पत्र मिला जसमें लिखा था—"हे महान् दार्शनिक, वह समस्त घटना एक भारी भूल ा परिणाम थी। सो मेरे विषय में बुरा मत सोचना।"

निरपराध अफलातूँ चाहता तो क्रोध के कारण उत्तर में जली-कटी सुना सकता था, परन्तु उसने इतना ही लिखकर सम्राट् को लज्जित कर दिया— 'सम्राट्, मेरे पास आप-सरीखे लोगों के विषय में सोचने का समय ही कहाँ है ? भूल सभी से होती है; आप जैसे पद-लोलुप शासक से विवेकपूर्ण शासन करने की आशा रखना भी तो मेरी भूल ही थी।"

## सम्राट् फिलिप की सहनशीलता

महान् सिकन्दर के पिता सम्राट् फिलिप ( चौथी शती ई० पू० ) में यदि कोई गुण थे, तो उनमें से एक यह था कि वे अपमान सह जाते थे। इस गुण के कारण उन्हें स्व-शासन स्थिर रखने में सहायता भी खूब मिली। एक बार एथेंस के कुछ दूतों के साथ डेमोकेरस भी फिलिप के पास पहुँचा। डेमोकेरसधृष्ट व निर्लज्ज वाणी के कारण कुख्यात था। फिलिप ने उस शिष्टमंडल की बातें स्नेहपूर्वक सुनकर पूछा—"मुझे यह बताइये कि मैं एथेंस-वासियों की प्रसन्नता के लिए क्या करूँ ?" इस पर डेमोकेरस बोला—"अपने आप को फाँसी लगा लो।" इन असभ्य शब्दों को सुन फिलिप के समीप स्थित सरदार लाल-पीले हो उठे और स्वामी के संकेत की प्रतीक्षा करने

लगे। परन्तु फिलिप ने उन्हें शान्त रहने को कहा और उन मुँहफट दूतों को सुरक्षित रूप से वापस जाने दिया। दूसरे दूतों से उसने इतना ही कहा—"जाओ, और एथेंसवालों को यह कह दो कि बिना कोई बदला लिये ऐसे शब्द सुन सकने वालों की अपेक्षा ऐसे शब्द कहने वाले तुम लोग कहीं अधिक घमंडी हो।"

## एंटीगोनस की उपेक्षा

महान् सिकन्दर के एक सेनापति का नाम था एंटीगोनस। एक वार उसने सुना कि तम्बू के साथ सटे हुए दो सैनिक, सम्राट् के सम्बन्ध में धीरे-धीरे कुछ बुरा-भला कह रहे हैं। बीच में तो केवल किरमिच ही था, इसलिए उनका एक-एक शब्द एंटीगोनस के कान में पड़ गया। ऐसी अवस्था में उसे किसी अन्य साक्षी की आवश्यकता न थी। चाहता तो क्षणभर में दोनों के सिर धड़ से अलग करवा देता। परन्तु उसने केवल किरमिच को जरा सरका कर इतना ही कहा—"भाई, तनिक दूर हट जाओ, ऐसा न हो कि तुम्हारे शब्द सम्राट् के कानों में पड़ जायँ।"

## सम्राट् अशोक का हृदय-परिवर्तन

आज से कोई बाईस सौ साल पहले भारत पर एक सम्राट् शासन करते थे, जिनका नाम था अशोक। पहले तो ये स्वयं ही अशोक रहते थे तथा दूसरों को सशोक करने में इन्हें कोई शोक न होता था, परन्तु पश्चात् इनके जीवन में ऐसा परिवर्तन आया कि दूसरों को भी अशोक बनाना इन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया और जीवन-भर उसकी पूर्ति के लिए तत्पर रहे।

बात यों हुई कि पिता के परलोक-गमन के पश्चात् पुत्रों में राज्य-प्राप्ति के लिए संघर्ष प्रारम्भ हुआ। अशोक पर 'रामायण' की अपेक्षा 'महाभारत' का प्रभाव अधिक पड़ा था, इस कारण उसने रण की शरण लेकर प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित किया तथा राज-काज स्वयं संभाल लिया।

सामान्य लोगों में सम्पत्ति-वृद्धि की लालसा उत्कट होती है तो भूपालों में भूमि-वृद्धि की। अशोक ने कुछ ही वर्षों में भारत के दस अन्य भू-भागों को भी वश में कर लिया। प्रतीत होता है, इन विजयों में अशोक को बहुत कष्ट नहीं उठाना पड़ा। परन्तु अब तक कलिंग देश ( उड़ीसा ) पर उसका

शासन न हुआ था। उपर्युक्त विजयों से उत्साहित होकर उसने कलिंग पर भी आक्रमण कर दिया। आक्रमण तो कर दिया पर वहाँ के वीर-बाँकुरों को वश में करना टेढ़ीखीर थी। कलिंगवासी वीर भी थे, देश-प्रेमी भी। उन्होंने ऐसे डटकर सामना किया कि अशोक की भी आँखें खुल गईं। यद्यपि अन्त में विजय अशोक की ही हुई, तथापि इस घोर संग्राम में धन-जन की इतनी अधिक हानि हुई कि अशोक का हृदय भी स-शोक हो गया। एक लाख लोग लड़ते-भिड़ते मर गये। लगभग इतने ही जन रोग आदि कष्टों से काल के गाल में समा गये। लगभग डेढ़ लाख लोग बन्दी बना लिये गये। करोड़ों की सम्पत्ति स्वाहा हो गई।

परिणाम केवल यह हुआ कि अशोक अन्य अनेक प्रान्तों के समान कलिंग का भी अधीश्वर बन गया। धन-जन की अपार क्षति तथा उससे मिलनेवाली सीमित क्षिति और ख्याति को अशोक ने विवेक की तुला में तौला। उसके विवेक के नेत्रों के सामने वे सहस्रों विधवाएँ आ गईं जिनके मस्तक के सिन्दूर को उसके आदेश से क्रूर सैनिकों ने पोंछ डाला था। वे लाखों बच्चे आ गये जो जीवन-भर अपने पिताओं के वात्सल्य व भरण-पोषण से वंचित हो गये थे। अबतक शोक न करने वाले क्रोधी व क्रूर अशोक का हृदय भी सशोक हो गया। उसके नेत्रों से पश्चात्ताप की अश्रु-धारा बह निकली। उसने प्रतिज्ञा की कि अब के बाद लोगों को खड्ग से नहीं, सेवा से, दया से, परोपकार से जीतूँगा। उसने किया भी वैसा ही। दूर-दूर के देशों में धर्मप्रचारक भेजे, कुएँ खुदवाए, धर्मशालाएँ स्थापित कीं, औषधालय खुलवाये तथा वे धर्मलेख पत्थरों पर खुदवाए जो आज भी लोगों को क्रोध-त्याग व क्षमा, उदारता, दया आदि की शिक्षा दे रहे हैं!

## केटो की सहिष्णुता

ई० पू० प्रथम शती में रोम में केटो नाम का एक विख्यात व्यक्ति था। वह एथेंस के जीनो नाम के दार्शनिक का अनुयायी था तथा सुख-दुःख में समान रहता था। जब वह एक अभियोग के समर्थन में बोल रहा था, तब लेंटूलस नाम के कलहप्रिय व्यक्ति ने अपने मुख की अधिकाधिक बलगम इकट्ठी कर केटो के मस्तक पर थूक दी। सहनशील केटो ने उसे मस्तक पर

से पोंछ कर इतना ही कहा—"हे लेंटूलस, जो लोग यह कहते हैं कि तुम में निर्लज्जता व धृष्टता का अभाव है, मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि वे गलती पर हैं।" कमाल है !

## आग्स्टस सीज़र की उदारता

रोम के प्रथम सम्राट् आग्स्टस सीज़र (शासन २७ ई० पू० से १४ ई० पू०) क्रोध के वश में न होते थे। एक वार तत्कालीन इतिहास-लेखक टाइमाजीनस ने सम्राट्, सम्राज्ञी व उनके परिवार के सम्वन्ध में कुछ ऐसे अनुचित शव्द कह दिये जो लोगों के कानों तक ही नहीं पहुँचे, जवान पर भी चढ़ गये। सीज़र ने अनेक वार उसे अपने वाणी वश में रखने की सलाह दी परन्तु उसके कानों पर जूँ तक न रेंगी। कोई सामान्य सम्राट् होता तो उसे प्राणदण्ड देने में भी संकोच न करता, परन्तु सीज़र ने केवल अपने प्रासाद में उसका प्रवेश निषिद्ध कर दिया, अन्य कोई वन्धन नहीं लगाया। तत्पश्चात् टाइमाजीनस वुढ़ापे तक असिनियपोलियो के घर पर रहकर सम्राट् का विरोध करता रहा। उसने अपने इतिहास के उस अंश को जला डाला जिसमें सीज़र के सुकार्यों का उल्लेख था। सीज़र ने सव कुछ धीरज से सह लिया और पोलियो से एक वार केवल इतना ही कहा कि तुम एक जंगली जानवर को पाले हुए हो। इस पर पोलियो वोला—"यदि सम्राट् की इच्छा हो तो मैं उसे अपने यहाँ से तुरन्त निकाल दूँ।" तव सीज़र ने कहा—"प्रिय पोलियो, आनन्द करो, मौज लूटो। क्या तुम समझते हो कि मैं, जिसने तुम दोनों में पुनः मैत्री स्थापित की थी, कभी ऐसा कहूँगा ?"

## महात्मा मसीह की महत्ता

( क ) महात्मा मसीह ने अपने समय में समाज में प्रचलित अनेक अन्ध-विश्वासों का खंडन किया। दिखावे के पूजा-पाठ का विरोध किया, धर्म-स्थानों में होने वाले व्यापार को बंद किया। उनके इस प्रकार के कई सुधार कार्यों से अनेक स्वार्थी लोग उनके शत्रु वन गये और उन्हें शासन से दंडित कराने के लिए तत्कालीन शासक पीलातुस के पास ले गये। उन्होंने शासक से कहा कि यह लोगों को वहकाता है, कैसर को कर देने से मना करता है तथा अपने आप को यहूदियों का राजा कहता है, आदि आदि।

पीलातुस ने ईसा से पूछ-ताछ की, परन्तु उन में कोई ऐसा दोष न पाया जिसके कारण उन्हें प्राण-दंड दिया जाय। पीलातुस ने तीन बार लोगों से कहा कि ये प्राण-दंड के अपराधी नहीं हैं, इसलिए इन्हें पिटवा कर छोड़ देता हूँ। परन्तु जनता ने एक न सुनी और उन्हें प्राणदंड के लिए अनुरोध करने लगी। तब हाकिम ने जनता के अनुरोध पर एक अन्य हत्यारे अपराधी को तो मुक्त कर दिया और ईसा को कोड़े लगवाकर क्रूस पर चढ़ाने का आदेश दे दिया।

तत्पश्चात् ईसा के सिर पर काँटों का मुकुट पहनाया गया, उनके मुख पर थूका गया तथा व्यंग्य में 'यहूदियों का राजा' कहकर उनका ठट्ठा उड़ाया गया। इतने कष्ट व अपमान सहने पर भी महात्मा ईसा सर्वथा शान्त रहे और सूली पर चढ़ाये जाने के पश्चात् मृत्यु से पूर्व उन्होंने ये शब्द कहे—"हे पिता, इन्हें क्षमा करना, क्योंकि ये जानते ही नहीं कि क्या रहे हैं।"

धन्य हैं महात्मा ईसा व उनकी क्षमाशीलता, जिसके कारण करोड़ों लोग आज भी उनके प्रति नतमस्तक होते हैं।

## ईसामसीह की दयालुता

( ख ) एक दिन महात्मा ईसा स्व-शिष्यों को धर्मोपदेश दे रहे थे कि कुछ कुपित शास्त्री व फ़रीसी एक स्त्री को पकड़कर उन के सम्मुख ले आए। उसका अपराध यह था कि वह व्यभिचार करती हुई पकड़ी गई थी। क्रुद्ध लोगों ने पूछा—"महात्मन्, इस दुष्टा को क्या दंड दिया जाय? हज़रत मूसा का आदेश तो यह है कि पत्थर मार-मार कर ऐसी कुलटाओं का काम तमाम कर दिया जाय।" महात्मा ईसा गहरे विचार में डूबकर, झुककर भूमि पर कुछ लिखने लगे। अधीर लोगों ने पुनः वही प्रश्न दोहराया। तब ईसा ने सीधे हो कर उत्तर दिया—"ठीक है, परन्तु सर्वप्रथम वही मनुष्य इसको पत्थर मारे, जिसने कभी कोई पाप न किया हो।" यह सुनकर सब सन्न हो गये, क्योंकि उनमें से कोई भी ऐसा न निकला, जिसने कभी कोई पाप न किया हो। महात्मा ईसा फिर पृथ्वी पर कुछ लिखने लगे। थोड़ी देर बाद जब उन्होंने सिर उठाया तो उस स्त्री के सिवा वहाँ कोई न था; सब धीरे-धीरे खिसक गये थे। ईसा ने उस स्त्री को पुनः पाप न करने का उपदेश दे विदा किया। सच है, अपने दोषों पर दृष्टि डालें तो दूसरों पर कोप का अवसर कम ही मिलेगा।

## गायस सीज़र : क्रोध-कारण के नाशक

यद्यपि शासकों में क्रोध का सर्वथा अभाव प्रायः दुर्लभ ही होता है, तथापि जब कभी वे क्रोध के स्थान पर क्षमा का प्रयोग करते हैं, तब उनका व्यक्तित्व अधिक निखर उठता है। रोम के सम्राट् गायस सीज़र (शासन ३७-४१ ई०) से सम्बन्धित निम्नांकित घटना उक्त तथ्य का सम्यक् समर्थन करती है। इनके शासन-काल में गृहयुद्ध छिड़ गया था, जिसमें विजय गायस की हुई। उन्हीं दिनों इन के हाथ पत्रों के कुछ ऐसे पैकेट लगे, जो इनके विरोधियों अथवा निष्पक्ष लोगों ने इन के विरुद्ध पोम्पियस को लिखे। यदि गायस चाहते तो प्रत्येक पत्र की पूरी छान-बीन करा सैकड़ों-सहस्रों लोगों को सदा के लिये सुला देते, परन्तु इन्हीं ने उदारता दिखाई, क्षमा-वृत्ति से काम लिया तथा उन पैकेटों को जलवा दिया। यदि ये प्रत्येक पत्र को पढ़ते वा सुनते तो सम्भव है इनकी क्रोधाग्नि भड़क उठती। इसलिए इन्होंने क्रोधोत्तेजक कारणों से दूर रहकर ही क्रोध पर विजय पाई।

## हज़रत मुहम्मद का प्रतिशोध-त्याग

(क) इस्लाम के आरम्भिक इतिहास में उहद के युद्ध का विशेष महत्त्व है। मुस्लिम सेना में केवल सात सौ सैनिक थे और आक्रमणकारी कुरैश थे पाँच सहस्र। मुसलमानों को पराजय का मुख देखना पड़ा। हज़रत मुहम्मद को भी इस युद्ध में पर्याप्त चोटें आई। माथा फूट गया, चार दाँत टूट गये तथा बाजू घायल हो गया। अनेक साथियों ने नबी से निवेदन किया कि आप उन काफिरों को शाप दें। इस पर मुहम्मदसाहब बोलें—"मैं लानत भेजने के लिए नबी नहीं बनाया गया। मुझे तो अल्लाह की ओर बुलाने वाला दयालु बनाया गया है। हे अल्लाह, मेरी जाति को शिक्षा दे क्योंकि वे ( मुझें ) नहीं जानते।"

( ख ) मुहम्मदसाहब अपनी तलवार वृक्ष की शाखा पर लटका कर सोये हुये थे। गोरस बिन अलहरास ने आकर धृष्टता से उन्हें जगाया और पूछा—अब तुम्हारी रक्षा कौन करेगा ? मुहम्मद बोले—अल्लाह, यह सुनते ही शत्रु तो चकरा कर गिर पड़ा और नबी ने खड्ग उठाकर पूछा—बता, अब तुझे कौन बचायेगा। पासा पलटा देख वह स्तब्ध व चकित रह गया। नबी ने दयापूर्वक कहा—जाओ, मैं बदला नहीं लिया करता।

## हज़रत आयशा का प्रायश्चित्त

अब्दुल्ला बिन जुबैर, मुहम्मदसाहब की पत्नी हज़रत आयशा का भतीजा था। ये उससे बहुत स्नेह करती थीं क्योंकि इन्होंने ही उसका पालन-पोषण किया था। बीबी आयशा स्वय तंगी में रहती हुई भी बहुत दान-पुण्य करती थीं। अब्दुल्ला को यह अच्छा न लगता था और उसने किसी से कहा कि मैं उन्हें इस दान-पुण्य से रोक दूँगा।

जब यह बात आयशा के कानों में पड़ी तो उन्होंने क्रुद्ध हो कसम खाई कि मैं जीवन-भर अब्दुल्ला से बात न करूँगी। अब्दुल्ला ने कुछ लोगों को आयशा को मनाने के लिए भेजा परन्तु वे बोलीं—मैं अपनी कसम तोड़ नहीं सकती। तब अब्दुल्ला ने मुहम्मदसाहब की माता के परिवार के दो व्यक्तियों को सुलह कराने भेजा। आयशा ने पर्दे के पीछे से उनसे वार्तालाप करना स्वीकार कर लिया। अब्दुल्ला भी चुपके से उनके साथ अंदर चला गया। जब बात चीत आरम्भ हुई तो अब्दुल्ला रुक न सका तथा पर्दा उठाकर रोता हुआ बूआ के कदमों में गिर पड़ा और क्षमायाचना करने लगा। उन दो सम्बन्धियों ने आयशा को मुहम्मदसाहब का यह कथन स्मरण कराया कि मुसलमान को मुसलमान से बातचीत बंद न करनी चाहिए। यह हदीस सुनकर आयशा की आँखों से गंगा-जमुना बह निकलीं। उन्होंने अब्दुल्ला से बोल-चाल आरम्भ कर दी तथा कसम तोड़ने के प्रायश्चित्त के रूप में अनेक दासों को मुक्त कर दिया।

## हज़रत अली का क्रोध-पान

हज़रत मुहम्मद के दामाद हज़रत अली एक बार युद्ध में अपने शत्रु को पछाड़ उसके सीने पर सवार हो गये। चित पड़े शत्रु से जब और कुछ भी न बन पड़ा तब उसने अली के मुख पर थूक दिया। अली ने आये हुए क्रोध को वश में कर उसे छोड़ दिया। जब लोगों ने पूछा कि आपने काबू में आये हुए शत्रु को क्यों छोड़ दिया,तो बोले—"पहले मेरी अपनी उस से कोई शत्रुता न थी। वह अल्लाह का शत्रु था, इसलिए मैं उससे युद्ध कर रहा था। जब उसने मुझ पर थूका तो वह मेरा शत्रु हो गया। मैं अल्लाह का ही बदला लेना चाहता हूँ, अपना नहीं। हज़रत अली की इच्छा थी कि उनका प्रत्येक कार्य

ईश्वरार्पण हो। इसी कारण वे समर्थ होते हुए भी शत्रु का खून न पी, अपना क्रोध ही पी गये।

## सेंट फ्रांसिस : तिरस्कारक के सत्कारक

(क) चौदहवीं शताब्दी के विख्यात ईसाई सन्त फ्रांसिस एक सुसमृद्ध वस्त्र-व्यापारी के पुत्र थे। धर्म-प्रचार की उत्कृष्ट लगन के कारण उन्होंने जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचारी रहने का संकल्प किया, तथा सब सांसारिक सुख-सुविधाओं का विसर्जन कर ईसाई भिक्षु का रूप स्वीकार किया। दर-दर भीख माँगने वालों को दस घरों से घुड़कियाँ मिलती हैं तो एक घर से अनाज। परन्तु सेंट फ्रांसिस को इस अपमान का ध्यान न था, क्योंकि वे आर्थिक कठिनाइयों के कारण नहीं, धर्म-प्रचार के लक्ष्य से संन्यासी बने थे।

एक बार जब उन्होंने एक वृद्ध दुकानदार का द्वार खटखटाया तो वह अधखुले द्वार में ही खड़ा होकर बोला—"क्या तुम्हें अपने पिता के प्रख्यात नाम पर कलंक लगाते हुए लज्जा नहीं आती? अरे दुष्ट, आलसी कपूत, भाग यहाँ से, नहीं तो अभी तुम पर कुत्ते छोड़ दूँगा।" जब वह एक दूसरे द्वार पर गया तब वहाँ एक अहंकारी नारी ने उस पर यों व्यंग्य-बाण चलाये—"अच्छा तो अब तुम ऐसे बन गये हो, श्रेष्ठ गायक, सर फ्रांसिस।" तदनन्तर उसने स्व-सेविका को सम्बोधित करते हुए कहा—"अच्छा, इसे वे हड्डियाँ दे दो जो हमने कुत्तों के लिए रखी हैं, इस प्रकार यह उन्हें नोच-नोच कर खायगा और हमारा सिर न खायगा।"

इस प्रकार के वाक्य-बाणों से विद्ध होने पर क्षणभर तो उसका खून खौल उठता परन्तु अगले ही पल वह ऐसे दुकानदार से कहता—"इस अनादर के लिए धन्यवाद, श्रीमन्।" और वैसी स्त्री से कहता—'देवी जी! इन अस्थियों और अपमान के लिए आपका धन्यवाद; क्योंकि ये नम्रता धारण की इच्छुक मेरी आत्मा के भोजन हैं।" जो कटु-वचन सामान्य मानव को क्रोध से दानव बना देते हैं, उन्हीं को सहनशील फ्रांसिस ने पीयूष के समान प्रसन्नता-पूर्वक पी लिया।

## लुटेरों का हृदय-परिवतन

(ख) सेंट फ्रांसिस का कथन है कि तलवारें तो रक्त को ही जीत सकती है, परन्तु आत्माओं को प्रेम ही जीतता है। उनका प्रेम इतना व्यापक हो गया था कि लुटेरों तक को निज गोद में बैठा लेता था।

एक बार उनका एक सह-प्रचारक भाई एंजेलो, बोर्गो सैन सीपोलक्रो के समीप कुटी बनाकर रह रहा था। तीन उद्दण्ड लुटेरे पास-पड़ोस के पथों पर पथिकों को लूट लेते थे। तब उस प्रदेश के वासी, संघटित होकर, लाठियाँ आदि लेकर, लुटेरों को पकड़ने व मारने के लिए निकल पड़े। जब लुटेरों को यह विदित हुआ तो वे घने वन में किसी गुप्त स्थान पर छिप कर बैठ गये। परन्तु जब उनके पास भोजन समाप्त हो गया तब वे एक रात एंजेलो की कुटिया में इस आशा से आ पहुँचे कि दयालु धर्म-प्रचारक से रोटी के दो-चार कौर मिल ही जायँगे। परन्तु एंजेलो ने उन्हें बुरा-भला कहकर भगा दिया, पेट भरने को कुछ भी न दिया।

कुछ काल पश्चात् सेंट फ्रांसिस, जो उन दिनों उसके पास आए हुए थे, भिक्षा ले कुटी में लौटे। एंजेलो ने उन्हें उन लुटेरों को निर्लज्जता तथा उनके प्रति अपने व्यवहार का समाचार सुनाया। यह सुन फ्रांसिस ने उस भोजन पर दृष्टि डाली जो वह भिक्षा में लाया था और एंजेलो को कहा, "इन वस्तुओं को ले जाकर उन्हीं लुटेरों को ढूँढ कर दे दो। मेरी ओर से उनसे क्षमा माँग कर कहो कि यदि वे अपने अपराधमय जीवन को तिलांजलि देकर ईश्वर-सेवा का पथ अपना लें तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उन्हें खाने-पीने के पदार्थ प्राप्त होते रहेंगे।"

एंजेलो ने सेंट फ्रांसिस के कथन का अक्षरशः पालन किया। फ्रांसिस के प्रेम को देख व प्रतिज्ञा को सुन लुटेरे इतने प्रभावित हुए कि वे एंजेलो के साथ ही फ्रांसिस के पास आ पहुँचे। फ्रांसिस के प्रेमपूर्ण व्यवहार ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि वे डाकूपन का परित्याग कर सन्त बन गये तथा जीवन-भर लोक-सेवा में लगे रहे।

## महाप्रभु चैतन्यदेव और दामोदर

पुरी में महाप्रभु ( १६वीं शती ई० ) मन्दिर के पास ही रहा करते थे। आस-पास ही कहीं एक बुढिया विधवा ब्राह्मणी रहती थी, जिसका १३-१४ वर्ष का सुन्दर बालक नित्य-प्रति महाप्रभु को नमस्कार करने आया करता था। चैतन्य स्वामी उसके सुरूप तथा निरीहता से प्रभावित हो उससे प्रेम-पूर्वक वार्तालाप करते। महाप्रभु के प्रेम ने बालक को आकर्षित किया और परिणामतः वह भी उनके पास दिन में दो-तीन बार आने लगा।

दामोदर पंडित नाम का भक्त महाप्रभु के पास रहता था। बालक के प्रति महाप्रभु का प्रकृष्ट प्रेम देखकर उसके दिल में डाह होने लगा। वह उस बालक का नाम सुनकर तथा सूरत देखकर ही जल-भुन उठता था। वह समझता था, महाप्रभु का प्रेम-पात्र मैं ही हूँ, यह दूसरा कौन आ टपका ? एक दिन जब वह बालक घर चला गया तो दामोदर पंडित ने कुछ रोषपूर्ण स्वर में महाप्रभु से कहा, "प्रभो, आप दूसरों को उपदेश तो देते हैं, परन्तु अपने सम्बन्ध में नहीं सोचते कि संसार हमारे व्यवहार को देखकर क्या कहेगा ?"

महाप्रभु ने पूछा—"कहिए, पंडितजी, मुझसे कौन-सा पाप हो गया ?"

पंडित बोला—"मुझे इस नवयुवक का आपके पास आना-जाना फूटी आँखों भी नहीं भाता। आप संसारी लोगों को क्या समझें ! आज तो सब आप को 'गुसाँई'-गुसाँई' कहते हैं, कल को इसी आचरण के कारण अनेक कलंक लगाने लगेंगे।

महाप्रभु बोले—"दामोदर, मुझे तो यह बच्चा गोवत्स के समान निष्पाप, निर्दोष व निश्छल प्रतीत होता है।"

दामोदर बोला—"भगवन्, आप नहीं जानते कि इस बालक की माता सदाचारिणी होती हुई भी कई दोषों से युक्त है। वह विधवा है, युवती है, सु-सुन्दरी है तथा घर में अकेली हैं। आप भी युवक तथा विलक्षण रूपवान् हैं। हम तो आपके भाव को भलीभाँति समझते हैं, परन्तु संसार के लोगों का मुँह बन्द नहीं किया जा सकता। उन्हें तो तनिक-सी बात मिलनी चाहिए, तब आपकी सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जायगी।"

चैतन्य स्वामी को दामोदर की बात पर हँसी भी आई और इस बात पर सन्तोष भी हुआ कि इसे मेरे चरित्र की पवित्रता का कितना ध्यान है। उन्होंने उसकी चुभती बात का बिल्कुल बुरा नहीं माना और अगले दिन एकान्त में बुलाकर कहा—' दामोदर, मेरे विचार में तुम्हारा नवद्वीप में रहना अधिक उपयुक्त होगा। तुम्हारे वहाँ रहते न भक्तजन मर्यादा-भंजन कर सकेंगे और न शची माता की देख-रेख में कोई उपेक्षा हो सकेगी।"

चैतन्य स्वामी का अनुमान सत्य सिद्ध हुआ। नवद्वीप के भक्तजन दामोदर की खरी आलोचना से सदा सावधान रहने लगे।

## नौरोजी : डाकू से भक्त

चैतन्य महाप्रभु ( सोलहवीं शती ई० ) तीर्थ-यात्रा करते हुए दक्षिण में पहुँचे। जहाँ जाते; जनता को कृष्ण-कीर्तन को उपदेश देकर कृतार्थ करते। विजूरी नगर के खाण्डवा—देवमन्दिर की देवदासियों का उद्धार करने के पश्चात् वे आगे को चले। समीप ही चोरानन्दी वन था जो दुर्दम डाकुओं का गढ़ था। जब महाप्रभु ने उसमें से होकर जाने का विचार किया तब लोगों ने उन डाकुओं की क्रूरता व हिंसकता का उल्लेख करते हुए उन्हें जाने से मना किया। महाप्रभु बोले—"डाकू लोग तो धन की आशा से सेठ-साहूकारों को ही अपना शिकार बनाते हैं, हम साधु-भिक्षुकों से वे क्या ले लेंगे ? यदि हमारे प्राणहरण से ही उनका मन प्रसन्न होता हो, तो वह भी हम सहर्ष दे देंगे। काया का इससे उत्तम उपयोग क्या होगा ? यह कहकर महाप्रभु उस बीहड़ वन में घुस गये तथा कुछ दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे बैठ कर हरि-कीर्तन में मग्न हो गये।

डाकू-सरदार नौरोजी ने जब सुना कि एक सन्यासी इस वन में कीर्तन-मग्न हैं, तो वह साथियों सहित वहाँ आ पहुँचा और महाप्रभु को भोजन के लिए अपने स्थान पर ले जाने का आग्रह करने लगा। चैतन्य स्वामी बोले, "भाई, संन्यासियों का आसन वृक्ष के नीचे ही ठीक है। जो भिक्षा आप देंगे, हम उसे ही सहर्ष स्वीकार करेंगे।"

सरदार का संकेत पा अनेक डाकू कुछ ही काल में अनेक प्रकार की खाद्यसामग्री ले आए। महाप्रभु तन-मन की सुध भूल कीर्तन कर रहे थे, बीच-बीच में नाचने भी लगते थे। यह दिव्य दृश्य देख साठ वर्षीय दस्युराज का दिल द्रवित हो गया। उसके नयनों से गंगा-जमुना फूट पड़ी। क्रूरता, हिंसा, क्रोध, लोभ आदि उस अश्रुधारा के साथ ही वह गये। शेष रहा उसका दिल जो जाह्नवी-जल के तुल्य ही निर्मल हो गया था। वह चैतन्यजी के चरणों में गिर कर बोला—"भगवन्, विप्र-वंश में उत्पन्न होकर भी मैं आज तक क्रोध व हिंसा का अवतार बन न जाने कितने लोगों के कंठ काट चुका हूँ। आज आपके दर्शन व मधुर कीर्तन ने न जाने मुझे कैसे मोम बना दिया। मुझे अपनी चरण-शरण में रहने का सौभाग्य प्रदान कीजिए।"

यह कहकर उसने अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये, भविष्य में हिंसा-वृत्ति के त्याग व कृष्णानुराग की प्रतिज्ञा की[1], डाकू-दल भंग कर दिया। प्राय: महाप्रभु प्रार्थियों को अपने साथ न लिया करते थे, परन्तु नौरोजी को उन्होंने अपने साथ चलने की अनुमति दे दी। इस प्रकार सत्संग से उसके क्रोध, हिंसादि का नाम-निशान भी शेष न रहा।

## गुरु नानक और नवाब

जब गुरु नानकदेवजी (१४६९-१५३९ ई०) ने सुल्तानपुर लोधी के सरकारी मोदीखाने की नौकरी त्याग कर आध्यात्मिक जीवन धारण कर लिया, तब सुल्तान ने आप को बुला भेजा, परन्तु आप नहीं गये। दूसरी बार बुलावा आया तो चले गये। जब सुल्तान ने पूछा कि आप पहले आमंत्रण पर क्यों नहीं आये, तब गुरुजी ने कहा—"अब हम आपके नौकर नहीं, भगवान् के चाकर हैं। हमने सांसारिक शासकों से मुख मोड़ लिया है, क्योंकि वे अहंकारी हैं"

नवाब के क्रोध का पारा चढ़ गया और वह उन्हें इस्लाम स्वीकारने तथा नमाज पढ़ने के लिए अपने साथ मस्जिद में ले गया। वह तो अपने काज़ी के साथ नमाज़ पढ़ता रहा, परन्तु गुरुजी धैर्य और शान्ति से ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। नमाज़ की समाप्ति पर नवाब ने नेत्र लाल करके नमाज़ न पढ़ने का कारण पूछा। गुरुजी ने निर्भयता तथा शान्ति-पूर्वक उत्तर दिया—"मैं आपके साथ नमाज़ कैसे पढ़ता, जब कि आपका मन सांसारिक बातों में उलझा हुआ था। आप अल्लाह को हाज़िर-नाज़िर मानकर कहिये कि क्या आपका मन वस्तुत: मौला में मग्न था?"

गुरुजी की शान्ति, धैर्य तथा नम्रता ने नवाब के क्रोध को शान्त कर दिया।

---

१. आधुनिक काल में भी सर्वश्री विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण आदि की सत्प्रेरणाओं से तहसीलदार सिंह, मोहर सिंह आदि डाकुओं ने क्रोधमय जीवन का परित्याग कर, शान्तिमय जीवन अपना कर क्रोधविजय के स्तुत्य उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

## गुरु अमरदास की नम्रता

सिक्खों के तृतीय गुरु श्री अमरदासजी ( १५३६-१६३१ वि० ) का यश जब चारों ओर फैलने लगा, तब भक्तजन पर्याप्त भेंट-पूजा ले चरणों में आने लगे। यह देखकर द्वितीय गुरु श्री अंगदजी के पुत्र दातू में ईर्ष्या और क्रोध उत्पन्न हो गया तथा वह तृतीय गुरु से गुरु—गद्दी छीनने के लिए सं० १६१४ वि० में गोइन्दवाल जा पहुँचा। गुरुजी सभा में बैठे थे तथा भक्त-जन भेंटें चढ़ा रहे थे। दातू ने स्वयं गद्दी पर बैठने के विचार से पीछे से होकर गुरुजी की पीठ में लात दे मारी। बुढ़ापे के कारण गुरु अमरदास आगे को गिर गये, परन्तु उठ कर दातू के चरण दबाते हुए बोले—"आप के पाँव को कष्ट पहुँचा होगा, क्षमा कीजिए। मैं आपकी अगवानी को न गया था, सो आपने उचित ही दंड दिया।" जब सब लोग दातू को बुरा—भला कहने लगे, तब गुरुजी बोले—"भाइयो, ये हमारे सद्‌गुरु के सुपुत्र हैं; इनके बिना हमें कौन डाँट सकता है ?" यह कहकर गुरुजी ने उस दिन की सारी आय दातू की खच्चर पर लदवा दी। निषेध करने पर भी दातू संध्या को ही वापस लौट गया, परन्तु मार्ग में ही लुटेरों द्वारा लूट लिया गया तथा चिरकाल तक टाँग की पीड़ा से कष्ट पाता रहा।[1]

## क्रॉमवैल : धर्म का प्रभाव

इंग्लैंड के लॉर्ड प्रोटेक्टर, प्रख्यात राजनीतिज्ञ व संसद्‌सदस्य क्रॉमवैल ( १५९९-१६५८ ई० ) के नाम से कौन अपरिचित होगा ? अपने यौवनकाल में वह क्रोधी, हठी तथा दुर्दम था और प्रायः उन सभी दोषों से दूषित था, जिनमें अविवेकी युवक सहज ही फँस जाते हैं। वह क्रमशः पतन की ओर अग्रसर हो रहा था और कोई कह न सकता था कि उसके दोष उसे कैसे-कैसे दिन दिखायेंगे। परन्तु, सौभाग्य से उसने धर्म ( काल्विनवाद ) की शरण ली और उसके जीवन का काँटा ही बदल गया। उसने अपनी कुप्रवृत्तियों पर काबू पा लिया और परिणामतः एक ऐसा महापुरुष बन गया जो इंग्लैंड पर बीस बरस तक बराबर छाया रहा।

---

१. ज्ञानसिंह ज्ञानी : तवारीख गुरु खालसा, पृ० ३२१।

## सन्त एकनाथ की क्षमाशीलता

गोदावरी-तीर पर स्थित पैठण नाम के नगर में एक सन्त रहते थे—एकनाथ ( स्वर्गवास १५९८ ई० )। स्नेहमयता, सज्जनता और सहनशीलता में एकनाथ एक ही थे। उधर गोदावरी के पथ में पड़ने वाली एक सराय में एक पठान रहा करता था। एकनाथ सज्जनता के अवतार थे, पठान दुर्जनता का। पठान गोदावरी स्नान को जाने वाले लोगों को तो पीड़ित करता ही था, एक दिन उसे एकनाथजी को भी सताने की सूझी। जब एकनाथ स्नान कर लौटे तो पठान ने सराय के द्वार पर से उन पर कुल्ला कर दिया। सन्तजी ने स्नेहमयी दृष्टि से पठान को देखा और उन्हीं पैरों पुनः स्नानार्थ लौट पड़े। जब सराय के पास पहुँचे तो पठान ने पुनः अपनी दुष्टता दोहराई। एकनाथ ने पुनः पठान पर प्रेममयी दृष्टि डाली और उलटे पाँव जा फिर गोदावरी में स्नान किया। जब वापस हुए तो पठान ने फ़िर वही किया। न एकनाथ सज्जनता का त्याग करते थे, न पठान दुर्जनता का। यही क्रम लगातार १०७ बार चलता रहा। जब १०८वीं बार पठान ने वही दुष्टता दिखाई तो उसकी आत्मा ने उसे करारी फटकार दी। वह अपने कुकृत्य पर लज्जित हो, हाथ जोड़ एकनाथ के चरणों पर गिर, क्षमायाचना करते हुए बोला—"महाराज, आप अल्लाह के सच्चे सेवक हैं। मुझ गुनहगार को क्षमा कर दीजिए। मैं वचन देता हूँ, आज से किसी को भी न सताया करूँगा।" एकनाथ बोले—"भाई, लज्जित होने व क्षमा माँगने की क्या बात है? तुम्हारे ही कारण तो मैंने आज पुण्यतोया गोदावरी में १०८ बार स्नान किया है।" इस प्रकार एकनाथ की सहनशीलता व क्षमाशीलता ने एक हैवान पठान को इन्सान बना दिया।

## सन्त तुकाराम : विनोद से क्रोधनाश

एक बार महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त श्री तुकाराम ( १५९८-१६४९ ई० ) स्व-खेत से घर को गन्ने ला रहे थे। मार्ग में माँगने वालों की कमी न थी; जिस-जिस ने माँगा, उसी-उसी को देते गये। घर पहुँचते-पहुँचते तुकाराम के पास एक ही ईख रह गई। उन्होंने निज पत्नी को दे दिया। निर्धनता के कारण पहले ही निर्वाह कठिन हो रहा था, तुकाराम की उदारता ने उग्र स्वभाव

की पत्नी जीजीबाई के कटे पर नमक का काम किया। उसने पति के हाथ से गन्ना छीन उनकी पीठ पर दे मारा। सन्तजी तो गन्ने की चोट सह गये, परन्तु गन्ना एक से दो गया। यह देख तुकाराम मुस्करा कर बोले—"अच्छा किया दोनों के लिए दो टुकड़े कर दिये; तुम न करतीं तो मुझे करने पड़ते।" और कोई होता तो घर में महाभारत मच जाता परन्तु तुकाराम की सहनशीलता व विनोदशीलता ने गृहशान्ति भग न होने दी।

## स्वामी रामदास : अपकारक के उपकारक

(क) सत्रहवीं शती में महाराष्ट्र में एक प्रसिद्ध सन्त थे, स्वामी रामदास (१६०८-८१ ई०)। छत्रपति शिवाजी उन्हें अपना गुरु मानते थे और प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य में उनसे परामर्श लिया करते थे। एक बार शीतऋतु में स्वामीजी अपने कुछ अनुयायियों सहित शिवाजी से मिलने जा रहे थे। स्वामीजी आगे थे, शिष्यगण पीछे। मार्ग के खेत में पके हुए गन्ने देख स्वामी-जी के साथियों के मुँह में पानी भर आया। स्वामीजी को पता भी न चला और साथी ईख-रस से पेट भरने लगे। एकाएक क्षेत्रपति की दृष्टि गन्ने तोड़ने वालों पर पड़ी और वह उनके हाथ-पाँव तोड़ने के लिए कोड़ा ले दौड़ पड़ा। किसान को आते देख वे लोग अध-चूसे गन्ने फेंक सिर पर पाँव रख भाग खड़े हुए।

स्वामी रामदास ने सोचा, अपने साथियों के अपराध का दंड मुझे ही भोगना चाहिए। वे चुप-चाप खड़े हो गये। कोड़ों के प्रहार से शरीर पर नीली धारियाँ पड़ गईं तथा वस्त्र फट गये।

जब स्वामीजी वहाँ से छूटे और शिवाजी के पास पहुँचे, तब छत्रपति उनकी दशा देख दुःखी और क्रुद्ध हो गये। उन्होंने पीटनेवाले का पता-सिरा पूछा, किन्तु स्वामीजी कुछ भी बताने पर उद्यत न हुए। इस पर भी शिवा-जी शान्त न हुए। उन्होंने पूछ-ताछ करवा उस क्षेत्रपति को स्वामीजी के सम्मुख ला खड़ा किया और पूछा—"स्वामीजी, कहिए, इस दुष्ट को क्या दंड दिया जाय?" साधारण जन होता तो क्षेत्रपति को पिटवा कर प्रतिशोध की अग्नि शान्त करता, परन्तु समर्थ स्वामीजी बोले—"बेटा, यदि मुझे प्रसन्न करना चाहते हो तो इसे बन्धन-मुक्त कर दो और इसके खेत को कर-मुक्त।" धन्य है, समर्थ स्वामी की क्षमाशीलता व उदारता।

## कर्कशा का हृदय-परिवर्तन

(ख) संन्यासियों का सत्कार तो कहीं-कहीं ही होता है किन्तु दुत्कार की कमी कभी नहीं रहती। स्वामी रामदास के साथ भी ऐसी ही बीती।

एक बार भिक्षापात्र ले स्व-कुटिया से निकले और एक गृहस्थ के द्वार पर जा "जय-जय रघुवीर समर्थ की" कह, सिर झुका, खड़े हो गये। गृहिणी जो बाहर आई तो मुट्ठी में अनाज नहीं था, गीली मिट्टी से सना हुआ पोता था, जिससे वह चूल्हा लीप रही थी। कार्यरत मनुष्य के काम में विघ्न पड़ जाय तो प्रायः उसे क्रोध आ ही जाता है। निठल्ले साधु को सामने देख, उसने 'यह लो भिक्षा' कहकर पोता उनके शरीर पर दे मारा।

सामान्य साधु होता तो दो-चार सुना ही देता, परन्तु रामदास तो सच्चे सन्त थे। शान्ति-पूर्वक यही 'भिक्षा' स्वीकार कर आशीर्वाद दे चल दिये। नदी- तीर पर पहुँच पोते और पुते हुए तन को स्वच्छ कर आश्रम को लौट गये। सूखने पर उसी पोते की उन्होंने बत्तियाँ बनाईं और आरती में उनका उपयोग किया। साथ ही, परमेश्वर से सच्चे हृदय से प्रार्थना की कि जिस देवी की भिक्षा से यह प्रकाश हो रहा है, उसका हृदय भी अन्धकार से रहित होकर प्रकाशित हो जाय। प्रार्थना स्वीकृत हुई। गृहिणी को अपने कुकृत्य पर पश्चात्ताप हुआ। उसने आकर स्वामीजी से क्षमा-याचना की, परन्तु समर्थ ने तो कभी उस पर क्रोध किया ही न था।

## जार्ज वाशिंगटन का आत्म-सुधार

अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ( १७३२–९९ ई० ) इतिहास में अपनी गरिमा, वीरता, पवित्रता तथा वैयक्तिक शिष्टता के लिए सुप्रसिद्ध हैं। वे भारी संकटों की घड़ियों में भी अपनी अनुभूतियों तथा संवेगों को ऐसे वश में रखते थे कि दर्शक उन्हें सहज शान्ति और गम्भीरता का अवतार मानने लगते थे। परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। पहले वे क्रोधी व आवेशी व्यक्ति थे, परन्तु उन्होंने धीरे-धीरे आत्मानुशासन द्वारा उपर्युक्त गुण धारण कर लिये थे। इसलिए यह समझना भूल है कि जन्म-जात स्वभाव बदल नहीं सकते। दृढ़-संकल्प व्यक्ति स्वभाव को भी क्रमशः बदल ही लेते हैं।

## रणजीत सिंह की क्षमा व उदारता

पंजाबकेसरी महाराजा रणजीत सिंह ( १७८०-१८३९ ई० ) स्व-साथियों सहित जा रहे थे कि एकाएक एक ढेला उनके तन पर आ लगा। क्षण-भर में

साथी उस वृद्धा को पकड़ लाए जिसके प्रमाद से महाराज को कष्ट पहुँचा था। पवन-प्रेरित पीपल-पत्र के समान काँपती बुढ़िया हाथ जोड़ बोली—"महाराज, कई दिन के भूखे बालक की क्षुधा शान्त करने के लिए ढेला मारा था तो पके बेल को, किन्तु संयोग से आपको जा लगा। इस दरिद्र अपराधिनी को क्षमा किया जाय।" कोई सामान्य शासक क्रोध से न जाने क्या कर डालता, परन्तु महाराज ने क्रोध करना तो दूर, उल्टा उसे भरपूर खाद्य सामग्री तथा सहस्र रुपये दे सादर विदा किया।

## महात्मा बहाउल्लाह और क्रोधी बुढ़िया

बात सन् १८५२ ई० की है। बहाई विश्वधर्म के संस्थापक महात्मा बहाउल्लाह को, हथकड़ियाँ व बेड़ियाँ डाल कर, वन्दी के रूप में तेहरान के भूगर्भ में बने हुए कारागार की ओर ले जाया जा रहा था।

आरोप इन पर यह लगाया गया था कि ये इस्लाम के विरुद्ध प्रचार करते हैं तथा शासक का भी अनिष्ट चाहते हैं। मार्ग में एक बुढ़िया ने जब इन्हें वन्दी के रूप में देखा तो पास पड़ा पत्थर उठाकर उनके मुँह पर मारने का यत्न किया। उसका विश्वास था कि इस्लाम के विरोधी तथा शाह के शत्रु को पत्थर मारने से पुण्य होगा और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति होगी। परन्तु बुढ़िया दुर्बल थी और पत्थर भारी। झुकते-उठाते कुछ क्षण लग गये और तब तक सिपाही बहाउल्लाह को कुछ कदम आगे ले जा चुके थे। बजाय इसके कि बहाउल्लाह बुढ़िया पर क्रोध करते, उनका दिल इस बात से दयार्द्र हो गया कि बुढ़िया की अभिलाषा अधूरी ही रह गई। इसलिए उन्होंने साथ के सिपाहियों से क्षण-भर रुक जाने की प्रार्थना की कि वृद्धा के मन की मुराद पूरी हो जाय। सिपाही रुक गये और बुढ़िया ने बढ़कर पत्थर बहाउल्लाह पर दे मारा। बहाउल्लाह के बदन से गरम खून बहते देख बुढ़िया का कलेजा ठंडा हो गया। सहिष्णु व परोपकारी बहाउल्लाह शान्ति-पूर्वक मुस्कराते हुए जेल को चल दिये।

## अब्राहम लिंकन की उदारता

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में अमेरिका में घोर गृह-युद्ध हुआ था। उन्हीं दिनों एक नीरव रात्रि में किसी मोर्चे पर सब सैनिक तो निश्चिन्त सो

रहे थे, परन्तु विलियम स्काट पहरे पर जाग रहा था। एकाएक उसे भी भारी नींद आ गई, और वह भी सबके समान ही सो गया।

संयोग-वश पहरेदारों का निरीक्षक अधिकारी वहाँ आ पहुँचा और स्काट को सुप्त देख चकित रह गया। उसने दाँत पीस कर स्काट को जगाया और पूछा—तुम सो रहे थे? अपराधी स्काट का सिर नीचा हो गया और जिह्वा मूक।

अनुशासनहीन स्काट का अपराध संगीन था। ऐसे अपराधी को जीने का क्या हक था? प्रातःकाल उसे सैनिक न्यायालय के सम्मुख उपस्थित किया गया। उसने अपने बचाव के लिए जो कारण प्रस्तुत किये, निर्णायक उनसे सन्तुष्ट न हुए। परिणामत: उसे मृत्युदंड सुनाया गया।

जब मामला अमेरिका के सोलहवें राष्ट्रपति लिंकन ( १८०९-६५ ई० ) के पास पहुंचा तो उन्होंने निम्न अधिकारियों की 'हाँ-में-हाँ नहीं मिला दी बल्कि उस युवक से मिलने की इच्छा प्रकट की। स्काट के आने पर लिंकन ने पहरे पर सो जाने का कारण पूछा। स्काट बोला—"महोदय, मेरा एक मित्र है ह्वाइट। वह रोग-मुक्त हो कार्य पर आ तो गया था, परन्तु पूरा स्वस्थ नहीं था। घटना से एक दिन पूर्व यात्रा के समय मैंने अपना ही नहीं, उसका भी सामान पीठ पर लाद कर यात्रा की। अपना कार्य पूरा करने में वह असमर्थ था; अतः उसकी भी ड्यूटी मैंने ही दी। परिणाम यह हुआ कि मैं थककर इतना चूर हो गया कि रात को नींद आ गई। महोदय, मैं मृत्यु से नहीं डरता, परन्तु इस बात से बहुत दु:खी हूँ कि मैं युद्धभूमि में शत्रु के छक्के छुड़ाता हुआ प्राण नहीं छोड़ूंगा, बल्कि अपने अपराध के कारण कुत्ते की मौत मरूंगा।"

स्काट के मित्र-प्रेम, देश-भक्ति तथा वीर भावना ने राष्ट्रपति के हृदय में क्षमा भावना जागृत कर दी। वे बोले—"चिन्ता मत करो स्काट, तुम कुत्ते की मौत नहीं मरोगे। तुम्हारे जैसे वीरों की अमेरिका को सदा आवश्यकता हैं। तुम्हारा अपराध क्षमा किया जाता है।"

## स्वामी दयानन्द की दयालुता

भारतमाता ने उन्नीसवीं शताब्दी में जिन महापुरुषों को जेल दिया उनमें आर्य-समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ( १८२४-

:३ ई० ) का अपना ही स्थान है। वे वेद-शास्त्रों के प्रकाण्ड पंडित थे तथा ूर्ति-पूजा, अवतारवाद, मृतक-श्राद्ध, जन्म-मूलक वर्णव्यवस्था, तीर्थ-स्नान से ुक्ति-प्राप्ति, छुआ-छूत आदि का वाणी व लेखनी से खंडन करते थे। जिन पंडों, पुरोहितों आदि के निर्वाह में स्वामीजी के प्रचार से विघ्न पड़ता था, वे इन्हें समाप्त करने के उपाय खोजते रहते थे। इसी उद्देश्य से अनूप शहर में एक ब्राह्मण ने स्वामीजी को विष-मिश्रित पान दे दिया। जब उदर में गड़बड़ी आरम्भ हुई तो स्वामीजी ने न्योली-कर्म नामक यौगिक क्रिया द्वारा पेट से विष निकाल दिया। अनूप शहर का तहसीलदार सैयद मुहम्मद, स्वामीजी का अनन्य भक्त था। उसने विषदायी ब्राह्मण को बन्दी बना लिया तथा प्रसन्न मन से स्वामीजी के पास पहुँचा। उसका विचार था, स्वामीजी मेरे सुकार्य से सन्तुष्ट होकर मुझे शाबाश देंगे। परन्तु स्वामीजी उसकी बात सुन रुष्ट होकर बोले—"यह आपने क्या किया ! आप विषदाता विप्र को तुरन्त मुक्त कर दीजिए। मैं संसार को बँधवाने नहीं, बन्धनों से मुक्त करने आया हूँ। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते तो श्रेष्ठ अपनी श्रेष्ठता क्यों छोड़ें ?" सैयद मुहम्मद स्वामीजी की क्षमाशीलता देख दंग रह गया।

## महात्मा गाँधी : अहिंसा के अवतार

(क) दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गाँधी ( १८६९-१९४८ ई० ) ने देखा कि यहाँ के गोरे लोग प्रवासी भारतीयों से बहुत घृणा करते हैं तथा उन्हें 'कुली' नाम से पुकारते हैं। धनी-मानी भारतीयों को भी अंग्रेजों के साथ प्रथम श्रेणी के रेल के डिब्बे में यात्रा करने की अनुज्ञा नहीं है। इस प्रकार से अनेक अन्याय व्यवहार देख दयालु गाँधी का दिल बहुत दुःखी हुआ। उन्होंने वहाँ के भारतीयों को संघटित कर उन्हें पूरा न्याय दिलाने का बीड़ा उठाया। परिणामतः वहाँ के गोरे, गाँधीजी के वैरी हो गये। और उन्हें अनेक प्रकार से कष्ट देने लगे। वहाँ ऐसी अनेक घटनाएँ घटीं जिससे गोरों की क्रूरता तथा गाँधीजी की सहनशीलता का अच्छा परिचय प्राप्त होता है, परन्तु हम यहाँ एक ही घटना देकर सन्तोष करेंगे।

१८९६ ई० में गाँधीजी कुछ काल के लिए भारत आए थे। यहाँ उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों पर गोरों द्वारा किये जाने वाले दुर्व्यहार पर

प्रकाश डाला । जब यह समाचार प्रेस द्वारा अफ्रीका पहुँचे तो वहाँ के गोरे लाल-पीले हो गये । परिणाम यह हुआ कि जब गांधीजी दिसम्बर, १८९६ में भारत से समुद्री जहाज द्वारा डरबन पहुँचे तो उस जहाज के यात्रियों को प्लेग के कीटाणुओं की सम्भावना का बहाना बनाकर २३ दिनों तक तीर पर न उतरने दिया गया ।

गाँधीजी ने पत्नी व बच्चों को तो गाड़ी में सेठ रुस्तम के घर भेज दिया, परन्तु स्वयं दादा अब्दुल्ला के वकील श्री लाटन के साथ पैदल ही चल पड़े । कुछ गोरों ने गाँधीजी को पहचान कर 'गाँधी-गाँधी' चिल्लाना आरम्भ कर दिया ताकि इकट्ठे होकर गाँधीजी की मरम्मत कर दें । परिस्थिति बिगड़ती देख श्री लाटन ने गाँधीजी को रिक्शा में बैठने पर विवश कर दिया । परन्तु उन गोरों ने रिक्शावाले को भगा दिया ।

इसके बाद का वृत्तान्त स्वयं गाँधीजी के शब्दों में ही देना उचित है—
"हम आगे चले । भीड़ भी बढ़ती जा रही थी । सर्वप्रथम भीड़ ने मुझे मि० लाटन से पृथक् कर दिया । फिर मुझ पर कंकड़ व सड़े अण्डे बरसाने लगे । किसी ने मेरी पगड़ी भी गिरा दी और मुझ पर लातों-घूँसों के प्रहार शुरू हो गये । मैं मूछित-सा हो गया । निकटवर्ती घर के सींखचे को पकड़कर मैंने साँस ली । खड़ा रहना तो असम्भव ही था, अब धक्कों-मुक्कों की नौवत आई ।"

अकस्मात् वहाँ पुलिस अधीक्षक श्री एलेक्जेंडर की पत्नी आ निकलीं । उन्होंने गाँधीजी को पहचान कर गोरों को कुछ शान्त किया । इसी बीच सूचना पाकर पुलिस भी आ पहुँची और गाँधीजी को सेठ रुस्तम के घर ले गई । तत्पश्चात् गोरों की भीड़ ने सेठ रुस्तम के घर को घेर लिया और उपद्रव पर उतर आये । श्री एलेक्जेंडर गाँधीजी को पुलिस-सिपाही के वेश में वहाँ से निकाल कर ले गये ।

जब अफ्रीकी गोरों की काली करतूत का कुसमाचार इंग्लैंड पहुँचा, तब मि० चेम्बर लेन ने तार दिया कि गाँधीजी पर आक्रमण करने वालों को मुकदमा चलाकर दंडित किया जाय । तार पाकर स्थानीय अधिकारियों ने गांधीजी से उक्त दुर्घटना पर दुःख प्रकट किया तथा आक्रमणकारियों का नाम-हुलिया आदि पूछा ।

उत्तर में गांधीजी बोले—"मैं किसी पर मुकदमा नहीं चलाना चाहता। ं तो उन्हें दोषी भी नहीं मानता, क्योंकि उन बेचारों को तो यह कहा गया ः कि भारत में मैंने नेटाल के गोरों की भरपेट निन्दा की है। जब वास्त-वकता लोगों पर प्रकट हो जायगी और लोग जान जायँगे तो स्वयमेव छतायँगें।"

यदि अपनी पिटाई पर राष्ट्रपति कुपित होते तो अनेक प्रहारकों को कारागार की हवा खिला सकते थे, परन्तु उन्होंने अपनी उदारता से संसार में स्व-सहनशीलता व क्षमा का सुन्दर उदाहरण स्थापित कर दिया।

( ख ) गांधीजी अस्पृश्यता को हिन्दू-धर्म का कलंक समझते थे और काशी के स्वामी लालनाथ उसके समर्थक थे। जब गांधीजी अजमेर पहुँचे तो स्वामी लालनाथजी भी वहीं आ डटे। गांधीजी से मिलने पर स्वामीजी ने कहा कि जब आप काशी पधारें तो हमारे यहाँ ठहरें। तब गांधीजी बोले—"ऐसी योजना मुझे तो प्रिय ही होगी। हम दुनिया को दिखा सकेंगे कि विरुद्ध मत रखते हुए भी हम एक दूसरे को सहन कर सकते हैं।"

( ग ) अजमेर की बारहदरी के सभा-मंच पर पहुँचने पर गाँधीजी को पता लगा कि कांग्रेस के स्वयंसेवकों तथा जनता ने अस्पृश्यता के समर्थक, काशी के स्वामी लालनाथजी को घायल कर दिया है। इस पर गांधीजी ने कहा—"मैंने उन्हें तथा उनके साथियों को आश्वासन दिया था कि उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न होगा। ऐसी दशा में जो मार-पीट उनके साथ हुई, उसका मुझे प्रायश्चित्त करना होगा। हिंसा से सभी धर्म की रक्षा और वृद्धि नहीं हो सकती।"

### नेहरूजी का क्रोध-दमन

यह तो सर्वविदित ही है कि नेहरूजी (१८८९-१९६४ ई०) तेज मिजाज के व्यक्ति थे, परन्तु उनसे इतना तो सीखा ही जा सकता है कि आया हुआ क्रोध कैसे दबाया जा सकता है।

बात १९३० की है तथा लखनऊ की। पंडितजी यू० पी० कांग्रेस कमेटी के लखनऊ अधिवेशन के सभापति-पद पर विराजमान थे। जब नेहरूजी ने श्रीमहावीर त्यागी के बहसबन्दी-प्रस्ताव को ठुकरा दिया, तब त्यागीजी ने विधान-पुस्तक दिखा दी। नेहरूजी क्रुद्ध हो बोले—"अपनी जगह जाओ,

वरना मीटिंग के बाहर निकाल दूँगा।" यह कह विधान-पुस्तक छीन कर फेंक दी। त्यागीजी की आपत्ति पर नेहरूजी ने सभापति-कुर्सी पर टण्डन जी को बैठा दिया। त्यागीजी ने नेहरूजी से सभा से क्षमा-याचना को कहा। पंडितजी आग-बबूला हो वोले—"आप मुझ सभा-संचालक का पाठ पढ़ाते हैं। मेरे हाथ में पुस्तक थी, यदि कोई भारी चीज होती तो उसे खींच मारता।"

त्यागीजी भी तेज हो उठे—"आप भारी चीज़ मारते तो ऐसा थप्पड़ मारता कि मुँह लाल हो जाता।"

सभा ने क्षमा-याचना का आग्रह किया। टंडनजी की आज्ञा से त्यागीजी ने शव्द वापस ले लिये, परन्तु अपमान-निवारण पर्यन्त स्व-स्थान पर न बैठे। तब नेहरूजी ने उठकर कहा—"त्यागीजी और मैं बहुत पुराने दोस्त हैं, परन्तु एक दूसरे से ज्यादा तेज मिजाज वाले हुए हैं। हम में से न कोई क्षमा माँग सकता है, न कर सकता है। हम दोनों ने सभा का पर्याप्त समय नष्ट किया है। इसलिए मैं दोनों की ओर से क्षमाप्रार्थी हूँ।" और त्यागीजी से बोले—अब तुम मेरा समर्थन करो। त्यागीजी ने सबसे क्षमा-याचना कर कहा—"जवाहरलालजी ने क्रूरता में तो मुझे पछाड़ा ही था, शराफत में भी मुझे मैदान में गाड़ दिया।"[1]

## शास्त्रीजी की शान्ति

बात तब की है जब श्री लालबहादुर शास्त्री (१९०४-६६ ई०) उत्तर प्रदेश के गृहमन्त्री थे। एक बार इनकी कार द्वारा कोई साधारण-सी दुर्घटना हो गई। ये कार वहीं छोड़ समीपवर्ती थाने में रपट लिखाने स्वयं ही चल पड़े। थाने में जो दीवान उस समय विद्यमान थे, उन्हें न रपट लिखने का अवकाश था, न वे शास्त्रीजी को पहचानते ही थे। उन्होंने इन्हें उपेक्षा भाव से एक ओर बैठा दिया। शास्त्रीजी ने घण्टे-भर की प्रतीक्षा के पश्चात् पूछा—थानेदार साहब कहाँ हैं ?

दीवानजी ने रुखाई से उत्तर दिया—"क्या करोगे थानेदार का ?"

सम्भवतः वह और भी कुछ कहता, परन्तु तभी थानेदार आ गये। उन्होंने शास्त्रीजी को पहचान लिया, नमस्कार किया और पधारने का कारण पूछा।

परिस्थिति को समझ दीवानजी परेशान हुए। परन्तु शास्त्रीजी शान्त

---

१. भाईदयाल जैन : ऐसे थे नेहरूजी, पृ० ३१–३२।

वने रहे, किंचित् भी कुपित न हुए। कहने की आवश्यकता नहीं कि कोई अन्य व्यक्ति होता तो दीवान को निलम्बित करने में विलम्ब न करता।

## उपसंहार

क्रोध के विषय में हमें जो कहना था, कह चुके। अब तो जो कह चुके उसी का सिंहावलोकन मात्र करना है, जिससे हमारा अभीष्ट आपको हृदयंगम हो जाय। हमारा आशय तो इतना ही है कि क्रोध-रूपी भाव को जीवन का एक अंग समझा जाय। वह प्रभु-रचित एक भाव है जो प्राणिमात्र को प्रदान किया गया है। जैसे जल, पवन, धूप आदि ईश्वरीय देनें हमारे हित-साधन के लिए हैं, अनिष्ट-सम्पादन के लिए नहीं, वैसे ही क्रोध भी एक ईश्वरीय देन है; अतः निन्दनीय नहीं। इसे प्राचीन ग्रंथों में प्रायः बुरा इस कारण कहा गया है कि मनुष्यों ने निज अज्ञान-वश इससे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक उठाई है। उदाहरणार्थ, जल को ही लीजिये। उसके विना हमारा जीवन असम्भव है। परन्तु केवट की असावधानी या यात्रियों की मन-मानी से अनेक बार नौकाएँ नदी में निमग्न होकर सैंकड़ों मनुष्यों के मरण का कारण बन जाती हैं।

इसमें जल का क्या दोष? इसी प्रकार आत्म-रक्षा व शत्रु-विनाश के लिए दिये गये क्रोध-द्वारा यदि हम अपना या अन्य का अनिष्ट कर बैठें तो क्रोध का क्या अपराध? चाकू मानव-हित के लिए बनाया जाता है। जब हम उससे शाक-फल आदि काटते हैं, तब वह हमारा मित्र बना रहता है, जब उंगली कट जाती है, तब शत्रु प्रतीत होने लगता है; जब डाकू-लुटेरे की गर्दन काटते हैं, तब पुरस्कार-प्रदाता बन जाता है। वस्तुतः-यह तो हमीं पर निर्भर है कि हम उसका उपयोग किस अवसर पर, किस काम के लिए, किस प्रकार से करते हैं। चूँकि अधिकतर लोग क्रोध का उपयोग वैसे ही करते हैं जैसे अबोध शिशु चाकू का, इसी कारण प्रायः इसे प्रबल शत्रु, परम व्याधि, साक्षात् यमराज आदि कहा जाता रहा है।

हम सब इसका सदुपयोग मात्र करें, दुरुपयोग नहीं, इसके वशी बनें, वशवर्ती नहीं, इसी उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन किया गया है। इस प्रकार प्रथम दो अध्यायों में क्रोध का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट करने के पश्चात् परवर्ती चार अध्यायों में हमने जीव-जन्तुओं, सामान्य मनुष्यों तथा विशिष्ट व्यक्तियों में क्रोधोत्पत्ति के सैकड़ों कारणों तथा उनके बुरे-भले परिणामों पर

प्रकाश डाला है। साथ-ही-साथ यह भी दिखा दिया है कि विशिष्ट व्यक्तियों के क्रोध को कहाँ-कहाँ उचित या अनुचित कहा जा सकता है। इस विस्तृत विवेचना का लक्ष्य यही है कि पाठक उन विविध परिस्थितियों से परिचित हो जायँ, जिनमें पड़ मनुष्य प्रायः विवेक को तिलांजलि दे क्रोधान्ध हो जाता है। हम पुनः स्मरण करा दें कि सामान्यतः खिन्न-कुपित होने तथा क्रोधान्ध होने में आकाश-पाताल या दिन-रात का अन्तर है। सामान्य क्रोध द्वारा हम आत्म-रक्षा में या किसी दुर्जन को सन्मार्ग में प्रवर्तित करने में सफल हो सकते हैं, परन्तु क्रोधान्धता की दशा में हम सुध-बुध से हाथ धो बैठते हैं। तब हम कभी तो आत्म-हत्या कर लेते हैं और कभी सामान्य अपराधी को इतना क्रूर दंड दे बैठते हैं कि हमारा जीवन समाप्त हो जाता है, परन्तु हमारा पश्चात्ताप वा कष्ट-क्लेश समाप्त नहीं होता। कोप के परिणामों का विस्तृत विवरण इसी उद्देश्य से दिया गया है।

जैसे प्रत्येक शिशु चाकू, छुरी आदि द्वारा अपने या पराये अंग को तो सरलतया घायल कर देता है, परन्तु उनका सदुपयोग क्रमशः ही सीखता है, वैसे ही प्रत्येक मनुष्य क्रोध तो सहज ही कर बैठता है, परन्तु उसका दमन वा सदुपयोग शनैः शनैः ही कर पाता है। अन्तिम दो अध्यायों में जहाँ क्रोध-दमन के दो दर्जन उपायों पर प्रकाश डाला गया है, वहाँ क्रोधविजयी लोगों के अनेक उदाहरणों द्वारा यह भी दिखा दिया गया है कि कैसी-कैसी विकट विपत्तियों में भी सामान्य वा क्रोधी लोग क्रोध के वशीकरण में समर्थ हो गये हैं। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक को क्रोध-विजय की अष्टाध्यायी कह दें तो अनुचित न होगा।

अन्त में हम यह कामना करते हुए पाठकों से विदा होते हैं कि जिस अदृश्य व दिव्यशक्ति द्वारा इस अद्भुत ब्रह्मांड का संचालन हो रहा है, वह हम सभी को ऐसी सुमति व सामर्थ्य प्रदान करे कि हम क्रोधादि संवेगों को स्व-वशवर्ती रख कर प्राणिमात्र की सेवा में सतत संलग्न रहते हुए अपने मानव-जन्म को सफल बनाने में सम्यक् समर्थ हों।

**सर्वे सुसुखिनःसन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्।**

अर्थात्—**सब खूब सुखी हों, सब नीरोग हों,**
**सब भला देखें, कोई भी दुःखी न हो।**

# परिशिष्ट-१

## क्रोध-विषयक सूक्तियाँ

### क ) हिन्दू धर्म

मेरा बाहर जाना मधुर हो, मेरा वापस आना मधुर हो। हे अश्विदेव-ताओं, अपने प्रभाव से मेरे जीवन को मधुर बना दो।

( ऋग्वेद १०।२४।६ )

द्युलोक शान्ति-रूप हो, अन्तरिक्ष शान्ति रूप हो, पृथ्वी शान्ति-रूप हो, जल शान्ति-रूप हो, ओषधियाँ शान्ति-रूप हों, वनस्पतियाँ शान्ति-रूप हों, विश्वदेव शान्ति-रूप हों, ब्रह्म शान्ति-रूप हो, सब कुछ शान्ति-रूप हो, शान्ति भी शान्ति-रूप हो, वह शान्ति मुझे प्राप्त हो। ( यजुर्वेद ३६।१७ )

( हे भगवन् ), सब प्राणी मुझे मित्र के नेत्र से देखें। मैं भी सब प्राणियों को मित्र की आँख से देखूँ। हम सब परस्पर मित्र की आँख से देखें।

( यजुर्वेद ३८।१८ )

मैं तुम्हारे हृदय व मन को समान बनाता हूँ। तुम्हारे द्वेष को दूर करता हूँ। एक दूसरे से ऐसे प्रेम करो, जैसे गौ नव-जात बछड़े से प्रेम करती है।

( अथर्व० ३।३०।१ )

प्रजाओं की रचना करने के इच्छुक प्रजापति ने तप, वाणी, प्रेम, काम, क्रोध तथा इस सृष्टि की रचना की। ( मनुस्मृति १।२५ )

क्रोध से आठ दोष जन्म लेते हैं—पिशुनता, हिंसा, द्रोह, ईर्ष्या, असूया ( गुणों में दोष-दर्शन ), धन-नाश, कटुवाणी तथा मार-पीट।

( मनुस्मृति ७।४८ )

लोगों को भली शिक्षा ऐसे देनी चाहिए कि किसी का दिल तक न दुखे। धर्म-प्रिय व्यक्ति को मधुर-कोमल वाणी का ही प्रयोग करना चाहिए।

( मनुस्मृति २।१५९ )

( क ) वे श्रेष्ठ पुरुष धन्य हैं जो उठते हुए क्रोध को विवेक से वैसे ही शान्त कर डालते हैं जैसे दीप्त अग्नि जल से शान्त की जाती है ।

( ख ) जो मनुष्य उत्पन्न हुए क्रोध को क्षमा द्वारा वैसे ही फेंक देता जैसे सर्प पुरानी केंचुल को, वही वास्तविक पुरुष कहलाता है ।

( वाल्मीकिरामायण, सुन्दरकांड, ५५।४,७

क्रोध लोभ से उत्पन्न होता है तथा दूसरों के दोषों से बढ़ता है। राजन्, क्षमा से वह थमता है तथा क्षमा से ही दूर भी होता है ।

( महाभारत, शान्तिपर्व, १६३।७

( विदुर-वचन ) हे धृतराष्ट्र, समझ लो कि ये दस प्रकार के लोग धर्म को नहीं जानते—मत्त, प्रमादी, पागल, थका हुआ, क्रुद्ध, भूखा, उतावला लोभी, डरा हुआ तथा कामी । ( महाभारत, विदुरनीति १।१०७

ऐश्वर्य के इच्छुक व्यक्ति को छः दोषों का त्याग करना चाहिए—नींद तन्द्रा ( ऊँघ ) भय, क्रोध, आलस्य तथा प्रत्येक कार्य में विलम्ब करते जाना

( महाभारत, विदुरनीति १।८३

जो मनुष्य क्रोधी पर क्रोध न कर, क्षमा करता है, वह अपनी व क्रोधी की भारी संकट से रक्षा करता है । वह दोनों का रोग-नाशक वैद्य है ।

( महाभारत

किसी के प्रति मन में क्रोध रखने की अपेक्षा उसे उसी क्षण प्रकट करना अच्छा है, जैसे पल भर जलना देर तक सुलगने से ।

( वेदव्यास : महाभारत

जो दोषी मनुष्य अपने अन्तरंग निर्दोष मनुष्य को क्रोधित करता है, वह रात को वैसे ही सुख से नहीं सो सकता, जैसे कि सर्प-युक्त घर में ।

( विदुरनीति ६।४

( श्री कृष्ण अर्जुन से )—नरक के ये तीन द्वार आत्मा के नाशक हैं काम, क्रोध तथा लोभ । इसलिए इनका त्याग करना चाहिए । जो इन तीन नरक-द्वारों से दूर रह कर आत्म-कल्याण के पथ पर आचरण करता है, वह परम गति ( मोक्ष ) पाता है । ( भगवद्गीता १६।२१-२

मनुष्य जिस यश व तप का भारी कष्ट सह कर संचय करते हैं, क्रोध उसका सबसे प्रबल नाशक है। ( विष्णु पुराण )

क्रोध से अन्धा मनुष्य माता, पिता, पुत्र, भाई, घनिष्ठ मित्र, स्वामी वा सगे भाई तक को मार देता है। ( सं० अच्युतानन्द : व्याख्यानमाला )

सज्जनों का क्रोध नाच जनों के स्नेह के समान है। प्रथम तो वह होता ही नहीं, होता है तो देर तक नहीं रहता; यदि देर तक रहे तो उसका फल उल्टा होता है। ( व्याख्यानमाला )

यदि क्रोध सफल हो तो धर्म, यश तथा धन का नाशक होता है। और यदि विकल हो तो अपनी देह का दाहक होता है। जो क्रोध सज्जनों का लोक-परलोक में भी हितकारी नहीं, उसे अपने मन में स्थान क्यों दिया जाय? ( व्याख्यानमाला )

यदि तुम्हें अपकार करने वाले पर क्रोध आता है तो क्रोध पर क्रोध क्यों नहीं आता ? क्योंकि; क्रोध तो ऐसा लुटेरा है जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सब को बलपूर्वक लूट लेता है। ( व्याख्यानमाला )

यदि मनुष्य जीवन भर भी शत्रुओं को मारता रहे तो भी वे समाप्त नहीं होते। इसलिए जो क्रोध को मार डालता है, उसके सारे शत्रु मर जाते हैं। ( व्याख्यानमाला )

मनुष्य मन के रोग बुद्धि से दूर करे और देह के दुःख दवाइयों से। विज्ञान का सामर्थ्य यही है। बच्चों की बराबरी न करनी चाहिए। ( व्याख्यानमाला )

ज्ञान से मन का रोग ( क्रोधादि ) वैसे ही दूर करना चाहिए जैसे जल से अग्नि। मनुष्य का मन प्रशान्त होने पर शरीर-रोग भी शान्त हो जाता है। ( व्याख्यानमाला )

इसमें सन्देह नहीं कि शरीर के रोग से मन का रोग ( क्रोधादि ) उत्पन्न होता है और यह भी निश्चित है कि मन के रोग से शरीर का रोग। ( व्याख्यानमाला )

मन के दुःख से शरीर तप्त होता है, जैसे तपे हुए लोहे के गोले से घड़े में पड़ा हुआ पानी। ( व्याख्यानमाल )

कहा गया है कि मोक्ष के द्वार के चार पहरेदार हैं—शान्ति, विवेक, सन्तोष तथा साधु-संगति। ( व्याख्यानमाला )

पगड़ी जिह्वा से कहती है कि सच्ची व प्रिय बात कहा कर, क्योंकि जब तू बुरा बोलती है तो मैं पृथ्वी पर गिर पड़ती हूँ। ( व्याख्यानमाला )

कटु वाणी तथा मार-पीट से पत्नी व पुत्र भी विरोधी हो जाते हैं किन्तु दान व कोमल भाषण से पशु भी वश में हो जाते हैं। ( व्याख्यानमाला )

जिस शरीर का अन्त कीड़ों, राख वा विष्ठा के रूप में होता है, उसे दूसरों को दुःख देने में लगाना, कहाँ की नीति है। ( व्याख्यानमाला )

मनुष्य का भूषण रूप है, रूप का भूषण गुण है, गुण का भूषण ज्ञान है और ज्ञान का भूषण क्षमा। ( व्याख्यानमाला )

वाणी की कठोरता आग से भी अधिक जलाने वाली है।

( चाणक्यराजसूत्र ७४ )

श्रेष्ठ मनुष्यों का क्रोध चरण-स्पर्श से समाप्त हो जाता है।

( कालिदास : रघुवंश ४।२८ )

आपके पास गालियाँ हैं, इसलिए देते जायँ। चूँकि हमारे पास गालियाँ है ही नहीं, अतः हम दे ही नहीं सकते। जगत् में जानी-मानी बात है कि जो वस्तु हो वही दी जा सकती है। कोई किसी को खरगोश का सींग नहीं देता।

( संस्कृत-सुभाषित )

तीव्र क्रोध से तिलमिलाते हुए भी सज्जन के मुख से अप्रिय वचन कहाँ निकलते हैं! चाँद चाहे राहु के मुख में भी पड़ा हो तो भी उसकी किरणें सुधा-वृष्टि ही करती हैं। ( गाथासप्तशती )

## ( ख यहूदी-धर्म

जैसे दूध के मथने से मक्खन और नाक के मरोड़ने से लहू निकलता है, वैसे ही क्रोध के भड़काने से झगड़ा उत्पन्न होता है।

( पु० ध० नि०, नीतिवचन ३०।३३ )

यदि तुम चिंगारी को फूँक लगाओगे तो वह आग के समान जल उठेगी, और यदि तुम उस पर थूकोगे तो बुझ जायगी : दोनों ही ( फूँक व थूक ) मुख से निकलती हैं। ( पु० ध० नि० ऐकलस २८।१४ )

क्रोधी मनुष्य झगड़ा मचाता है और अत्यन्त क्रोधी अपराधी भी होता है।
( पु० ध० नि० नीतिवचन, २९।२२ )

क्रोधी मनुष्य के मित्र न बनो और न शीघ्र क्रोध करने वाले के संग चलो। ( नीतिवचन, २२।२४ )

किसी के आत्मसम्मान पर आघात न करना चाहिए। लोगों के संमुख किसी को अपमानित करना उतना ही भारी पाप है जितना उसकी हत्या करना। ( तालमुद )

दुष्ट कहा जायगा वह मनुष्य, जो किसी भाई के विरुद्ध हाथ उठाता है, चाहे वह उसे मारे नहीं। ( तालमुद )

बुद्धिमान् मनुष्य का मुख उसके हृदय में होता है और मूर्ख का हृदय उसके मुख में। ( सुलेमान )

## ( ग ) शितो-धर्म

चाहे अन्य लोग कुपित हो जायँ तो भी तुम गुस्सा न करो।

क्षमा समस्त धनैश्वर्य से अधिक मूल्यवती है। ( शितो-धर्म )

## ( घ ) ज़रतुश्ती-धर्म

सन्त दुष्टों तथा श्रेष्ठों के प्रति, पूर्ण न्याय का व्यवहार करते हैं, और उनके प्रति भी जिनके गुण-दोष बराबर-बराबर होते हैं। ( यस्न ३३।१ )

सबसे बलवान् मनुष्य वह है जो अपनी दुर्भावनाओं से लड़ सकता है, विशेषतः वह जो इन पाँच बुराइयों को दूर भगा देता है—क्रोध, लोभ, काम, अपमान, असन्तोष। ( दिना-इ मैनाग-इ खिरद ४१।९-११ )

( क ) किसी पर व्यंग्य ( ताना ) मत कसो। जो अन्यों पर व्यंग्य करता है वह अन्यों के व्यंग्य का लक्ष्य बनता है। उसकी शोभा नष्ट हो जाती है।

( ख ) अपकार करने वालों के प्रति दिल में अच्छे विचार रखो। सद् विचारों से ही उनका मुकाबला करो। तुम्हारा आदर्श यही हो।

( ग ) अगर तुम अपने दिल से तनिक-सी भी बदले की भावना निकाल दोगे तो तुम नरक के भयावने कष्ट से बच जाओगे। ( पहलवी टैक्स्ट्स )

## ( ङ ) दाओ ( ताओ ) धर्म

भूमि पर जल के तुल्य नम्र व सौम्य पदार्थ दूसरा नहीं। परन्तु सुदृढ़ तथा कठोर पदार्थ को घिसाने-गलाने में भी उसकी तुलना नहीं।

( लाओत्से )

सच्चा योद्धा अवसर आने पर वीरता दिखाता है पर क्रोध में नहीं आता। ( लाओत्से )

ज्ञानी मनुष्य आवेश, क्षुद्रता तथा आडम्बर का त्याग कर देता है।

( लाओत्से )

ज्ञानी पुरुष झगड़ा नहीं करता, अत: उसका कोई वैरी नहीं होता।

( लाओत्से )

शस्त्रास्त्र अमंगल सूचक हैं। ज्ञानी लोग उनका प्रयोग नहीं करते। विवशता की बात अलग है। ( लाओत्से )

सच्चा वीर आवेश में नहीं आता, सच्चा सेनानी मतवाला नहीं होता।

( लाओत्से )

## ( ख ) जैन-धर्म

जो मनुष्य अपना भला चाहता हो, उसे पाप-वर्द्धक चार दोषों से सदा दूर रहना चाहिए—क्रोध, मान, माया और लोभ। क्रोध को शान्ति से जीते, मान को नम्रता से जीते, माया को सरलता से जीते तथा लोभ को सन्तोष से जीते। ( दशवैकालिक सूत्र ८।३७, ३९ )

मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ। सब जीव मुझे क्षमा करें। मेरी सभी प्राणियों से मित्रता है। किसी का मुझ से बैर नहीं है।

( पंचप्रति० वंदित्तु सू० गा० ४६ )

कोप के कारण अत्यन्त प्रिय मनुष्य भी पल भर में क्रोधी का शत्रु बन जाता है। क्रुद्ध व्यक्ति न करने योग्य कार्य करके अपने भारी यश से हाथ धो बैठता है। ( शिवकोटी : भगवती आराधना १३७० )

न किसी की हिंसा कर, न किसी से रूठ, न क्रोध कर। क्रोध से धर्म-नाश होता है और धर्म-नाश से नरक-वास। इस प्रकार मनुष्य-जन्म ही नष्ट हो जाता है। ( मुनिरामसिंह : पाहुड़ दोहा )

क्रोध संताप का विस्तार करता है, विनय को विनाश करता है, मैत्री को मिटा देता है, उद्वेग को उत्पन्न करता है, गालियों को जन्म देता है, झगड़ा पैदा कराता है, कीर्ति को काट डालता है, दुर्बुद्धि का वितरण करता है, पुण्यों का प्रणाश करता है तथा अन्त में बुरी गति देता है। सत्पुरुषों को चाहिए कि ऐसे सदोष रोष को सर्वथा छोड़ दें। ( सोमप्रभ : सूक्तिमुक्तावली )

## ( ग ) बौद्ध-धर्म

( १ ) किसी को कठोर शब्द मत कहो, कहोगे तो बदले में वे भी कहेंगे। क्रोध-पूर्ण शब्दों का परिणाम दुःख होता है। वदले में तुम्हें भी दंड मिलेगा।

( २ ) नहर वाले जल को इच्छानुसार ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाणों को ठीक करते हैं, बढ़ई काष्ठ को झुका लेते हैं, सुव्रती लोग अपने को वश में रखते हैं।

( ३ ) जो उत्पन्न होते हुए क्रोध को पथ-भ्रष्ट होते हुए रथ की भाँति रोक ले, मैं उसे ही सारथी कहता हूँ; शेष लोग तो लगाम पकड़ने वाले ही हैं।

( ४ ) अक्रोध से क्रोध को जीते; दुर्जन को सज्जनता से जीते; कंजूस को दान से जीते झूठ को सच्चाई से जीते।

( धम्मपद, गा० १३३, १४५, २२२, २२३ )

## ( ज ) कनफ्यूश-धर्म

( १ ) जब उत्तम पुरुष को क्रोध आता है तब वह उन कष्टों पर सोच-विचार करता है, जिनमें वह स्व-क्रोध के कारण फँस सकता है।

( २ ) क्रोध की उत्पत्ति के समय परिणामों पर विचार कर लो।

( ३ ) क्रुद्ध मनुष्य सदा विष से पूर्ण होता है।

( ४ ) हमारे उग्र संवेग हमारी आत्माओं के द्वार प्रभु के प्रति बंद कर देते हैं।

( ५ ) अज्ञानी व अशिक्षित व्यक्ति को दण्ड देना सर्वथा अनुचित है। बुद्धिहीन को फाँसी देना घोर अत्याचार है। युद्ध के लिए सेनाएँ सजाना ठीक नहीं ( कानफ्यूशस )

पाँच पापों का परित्याग करना चाहिए—१. जनकों के पोषण में आल
२. जूआ तथा सुरा-पान, ३. धनैश्वर्य को बड़ा समझना, ४. भोग-विलास
डूबना तथा ५. व्यर्थ वीरता-प्रदर्शन, कलह व युद्ध। ( मैंशियस

वह आग जो तुम अपने शत्रु के लिए जलाते हो, प्रायः उसकी अपे
तुम्हें अधिक जलाती है। ( चीनी लोकोक्ति

## ( झ ) ईसाई-धर्म

जो कोई अपने भाई पर क्रोध करेगा, वह न्यायालय में दंडनीय होग
और जो कोई अपने भाई को 'निकम्मा' कहेगा, वह महासभा में दंडनीय होग
और जो कोई 'अरे मूर्ख' कहेगा वह नरक की आग में दडनीय होगा।
( न० ध० नि०, मत्ती, ५।२२

मैं तुमसे यह कहता हूँ कि अपने वैरियों से प्रेम रखो और अपने सत
वालों को लिए प्रार्थना करो। ( न० ध० नि०, मत्ती ५।४४

पतरस ने पास आकर उससे कहा—हे प्रभु, यदि मेरा भाई कोई अ
राध करता रहे तो मैं कितनी बार उसे क्षमा करूँ, क्या सात बार तक
यीशु ने उससे कहा—मैं तुझसे यह नहीं कहता कि सात बार, बल्कि सात ब
के सत्तर गुने तक। ( न० ध० नि०, मत्ती १८।२१

तू अपनी तलवार म्यान में रख ले, क्योंकि जो लोग तलवार चलाते
वे सब तलवार से ही नष्ट किये जायँगे। ( न० ध० नि०, मत्ती २६।५२

क्रोध तो करो पर पाप मत करो। सूर्य अस्त होने तक तुम्हारा क्रो
न रहे। ( न० ध० नि०, इफिसियों ४।२६

यदि किसी को किसी पर दोष देने का कोई कारण हो तो एक दूसरे व
सह लो, और एक दूसरे के अपराध क्षमा करो, जैसे प्रभु ने तुम्हारे अपरा
क्षमा किये। ( न० ध० नि०, कुलुस्सियों ३।१३

## ( ञ ) इस्लाम-धर्म

कोमलता व क्षमा से काम लो। भले कार्य करने की आज्ञा दो औ
अज्ञानी लोगों से न उलझो। ( कुरान० ७।१९९

भलाई और बुराई बराबर नहीं हो सकती। (कटु भाषण का) ऐसे ढंग से उत्तर दो जो बहुत अच्छा हो। (तब देखोगे) कि जिसमें व तुममें शत्रुता थी, वह तुम्हारा घनिष्ठ मित्र है। (कुरान० ४१।३४)

क्षमा करो, उपेक्षा करो तथा बख्श दो। अल्लाह क्षमाशील तथा कृपालु है। (कुरान० ६४।१४)

कटु वाणी तथा गाली-गलौज अल्लाह को पसंद नहीं है, किन्तु वह मनुष्य क्षमा योग्य है, जिस पर किसी ने अत्याचार किया हो। (कुरान०)

किसी मनुष्य ने किसी वस्तु का कोई घूँट ऐसा नहीं पिया, जो अल्लाह की दृष्टि में क्रोध के उस घूँट से बड़ा हो, जिसे कोई मनुष्य अल्लाह की मर्जी के निमित्त पी जाय। (हदीस—अहमद)

पहलवान तथा बलवान् वह नहीं जो दूसरे पहलवान को पछाड़ दे। अपि तु पहलवान वह जो क्रोध के समय मन पर अधिकार रखे। (हदीस—बुखारी)

## (ट) सिक्ख-धर्म

किसी के भी प्रति वैर न करना चाहिए क्योंकि ब्रह्म तो प्रत्येक के हृदय में समाया हुआ है। (गु० ग्रं० सा०, पृ० २५९)

जो सज्जन हरि-कीर्तन सुनते हैं, उनके मन से वैर-विरोध मिट जाता है। (गु० ग्रं० सा०, पृ० २५९)

जो निर्वैर से वैर करता है, वह समस्त संसार का पाप अपने सिर पर चढ़ाता है। (गुरु ग्रंथ साहिब पृ० ३०७)

जिसका मन कठोर है, वह यदि वाराणसी में भी प्राण-त्याग करे, तो भी नरक में जाने से नहीं बच सकता। (गु० ग्रं० सा० पृ० ४८४)

## (ठ) बहाई-धर्म

वे सद्गुण जो मनुष्य की प्रतिष्ठा के योग्य हैं, पृथ्वी के सभी लोगों तथा सम्बन्धियों के प्रति सहनशीलता, दया, सहानुभूति तथा प्रेमपूर्ण दयालुता है। (बहाउल्लाह)

दयापूर्ण जिह्वा मानव-हृदयों के चुम्बक के समान है। (बहाउल्लाह)

यदि मनुष्य अपने क्रोध को भेड़ियों जैसे हिंस्र जन्तुओं के विरुद्ध उपयोग में लाये तो यह उत्तम गुण है, परन्तु यदि वह इन गुणों का उचित व्यवहार नहीं करता तो यह निन्दनीय है। ( अब्दुलबहा )

मानव जाति के प्रेमी सबसे ऊँचे हैं, चाहे वे किसी जाति, सम्प्रदाय या रंग के क्यों न हों। ( अब्दुलबहा )

धर्म का काम तो यह है कि वह सभी हृदयों को मिलाये तथा युद्धों और संघर्षों को संसार से दूर करे। ( अब्दुलबहा )

सावधान ! सावधान !! किसी हृदय को तुमसे चोट न लगे। सावधान ! सावधान !! किसी आत्मा को तुमसे दुःख न पहुँचे। सावधान ! सावधान !! किसी व्यक्ति के प्रति तुम्हारा बर्ताव क्रूर न हो। ( अब्दुलबहा )

## ( ड ) हिन्दी कवि

वोह तो वैसहि भया, तू मति होय अयान।
तू गुणवंत वे निरगुणी, मति एकै में सान॥

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप॥

खोद-खोद धरती सहै, काट-कूट बन राय।
कुटिल वचन साधू सहै, और से सहा न जाय॥

—कबीर

खोजत कतहुं मिलइ नहिं धूरी।
करइ क्रोध जिमि धर्महिं दूरी॥

( रामचरितमानस )

कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच गृह, जरत धनिक धन धाम॥

( तुलसीदास : दोहावली )

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥

( तुलसीदास : दोहावली )

काम क्रोध मद लोभ की जब लग मन में खान।
तब लग पंडित मूरखो, 'तुलसी' एक समान॥
लोभ के इच्छा दंभ बल, काम में केवल नारि।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि॥

( तुलसीदास : दोहावली )

जा रिपु सों हारेहुँ हँसी, जिने पाप परितापु।
तासों रारि निवारिए, समयँ सँभारिअ आपु॥

( तुलसीदास : दोहावली )

'सहजो' क्रोधी अति बुरो, उलटी समझै बात।
सबही सू ऐंठो रहै, करै वचन की घात॥ ( सहजो बाई )

महा भयंकर कोप के ही सब थे परिणाम।
वसुधा में जितने हुए बढ़े-बड़े संग्राम॥

( हरिऔध सतसई, पृ० ६९ )

अपने ते जे छुद्र अति, तिहिं पै करिउ न क्रोध।
किहूँ भाँति सोहत नहीं, केहरि मसक विरोध॥

( रामचरित उपाध्याय )

यथा समय जो कोप-अनुग्रह को प्रयोग में लाते हैं स्वयं देहधारी सब उनके वशीभूत हो जाते हैं। क्रोधहीन नर की रिपुता से कोई भय नहीं पाते हैं, तथा मित्रता से वे उसको आदर नहीं दिखाते हैं।

( महावीर प्रसाद द्विवेदी : द्विवेदी काव्यमाला पृ० २८३ )

गंभीरता सुखद शान्ति विवेक भक्ति,
आनन्द नीति क्षमता सुविचार-शक्ति।
तौं लों निवास करते नर चित्त बीच।
जौं लों प्रवेश नहिं हो तब क्रोध नीच॥ ( मैथिलीशरण गुप्त )

भाग्यहीन जब किसी हृदय में क्रोध उदय होता है।
बढ़ती है पाशविक शक्ति आत्मिक बल क्षय होता है।
क्रोध दया सुविचार न्याय का मार्ग भ्रष्ट करता है।
अपना ही आधार प्रथम वह दुष्ट नष्ट करता है।

क्रोध तुम्हारा प्रबल शत्रु है वसा तुम्हारे घर में।
हो सकते हो उसे जीत कर विजयी तुम जग भर में।

( रा० न० त्रि० पथिक पृ० ५८ )

यही क्रान्ति है कि तुम करोगे, हिंसा से हिंसा का मर्दन।
क्रान्तिवाद क्या यही कि घहरे, इधर-उधर तोपों का गर्जन ॥

( बा० कृ० शर्मा नवीन : हम विषपायी जनम के, पृ० ६५ )

लखि सतीत्व-अपमान हूँ भये न जे दृग लाल।
नीबू-नौन निचोरिये, छेद फोरिये हाल ॥

( वियोगी हरि, वीर सतसई, पृ० १०६ )

बनत क्रोधजित निबल नर, धारि छमा अभिराम।
करत कलंकित क्लीव ज्यौं, ब्रह्मचर्य व्रत-नाम ॥

( वियोगी हरि : वीरसतसई, पृ० १०५ )

न क्रोध हो तो फिर पाप भी नहीं,
न कोप हो तो अभिशाप भी नहीं,
न मृत्यु हो तो न अमान भी कहीं,
न रोप हो तो न अशान्ति भी कहीं।

( अनूप : वर्द्धमान, पृ० ५३९ )

व्यापक प्रेम विना संभव कब पूर्ण क्रान्ति प्रियदर्शिनि !
संघर्षण से नहीं उपजती ज्वाला वह मधुवर्षिणी !

( नरेन्द्र : अग्निशस्त्र, पृ० ८१ )

क्रोधी नर को कभी नरक में
जाने का कुछ काम नहीं।
वह तो सदा बना लेता है,
नरक, जहाँ है, धाम वहीं।

( हरिकिशनदास अग्रवाल : मन की शान्ति )

इतिहासों में बात युद्ध की, बार-बार ही आवेगी।
जब तक जाति-भेद है जग में, नहीं लड़ाई जावेगी ॥

( मन की शान्ति पृ० २६० )

## ( ढ ) प्रकीर्ण

क्रोध यमराज है। ( चाणक्य )

अपने विकारों को वश में रखो ताकि वे तुम्हें वश में न कर ले। धन, सुख व शान का प्रेमी व्यक्ति मनुष्य-प्रेमी नहीं होता। ( एपिक्टीटस )

क्रोधी मनुष्य उन लोगों के तुल्य हैं जो अपने सिर के बल खड़े हों। वे सब वस्तुओं को उलटी ही देखते हैं। ( अफ़लातूं )

क्रोध से वही सर्वाधिक बचा रहता है, जो यह याद रखता है कि ईश्वर मुझे सदा देख रहा है। ( अफ़लातूं )

क्रोध में कही गई बातें अन्त में उलटी निकलती हैं। ( मीनेंडर )

मौन रहो या मौन से अच्छा बोलो। ( पाइथागोरस )

क्रोध मूर्खता से आरम्भ होता है तथा पश्चात्ताप से समाप्त। ( पाइथागोरस )

बदला लेने का विचार बनाये रखने वाला व्यक्ति अपने उन घावों को हरा रहने देता है, जो वैसे अपने आप ही भर जाते। ( बेकन )

बदला तो एक प्रकार का जंगली काम है। जितना अधिक मनुष्य उसकी ओर प्रवृत्त होता है, उतना ही अधिक कानून द्वारा उसका उन्मूलन होना चाहिए। ( बेकन )

मनुष्य क्रोध मे सागर के समान बहिरा तथा आग के तुल्य उतावला होता है। ( शेक्सपीयर )

बदला लेना नहीं बल्कि सह लेना ही वीरता है। ( शेक्सपीयर )

अपने शत्रु के लिए भट्ठी इतनी अधिक न सुलगाओ कि तुम्हें ही झुलसा दे। ( शेक्सपीयर )

यद्यपि प्रतिशोध पहले मधुर प्रतीत होता है, तथापि शीघ्र ही कड़वा लगने लगता है और अन्त में अपने ऊपर ही आ पड़ता है। ( मिल्टन )

हमारे संवेग ऐंठन के दौरों के समान हैं, जो उस समय तो हमें सबल बना देते हैं, परन्तु तत्पश्चात् हमें अधिक निर्बल कर जाते हैं। ( स्विफ्ट )

सहनशील व्यक्ति के क्रोध से सावधान रहो। ( ड्राइडन )

मनुष्य अपने विकारों को अपने जीवन की सेवा में लगाने के स्थान पर, अपने जीवन को विकारों की सेवा में खर्च कर देते हैं। ( स्टील )

लोगों में मुझे कोई ऐसी भूल दिखाई नहीं देती जो मैंने स्वयं न की हो। ( गेटे )

क्रोध में कुछ कहने से पूर्व दस तक गिनो; क्रोध उग्र हो तो सौ तक। ( जैफर्सन )

क्रुद्ध मनुष्य 'होश' में आने पर पुनः अपने पर क्रुद्ध होता है। ( पब्लीयस साइरस )

प्रकृति में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जो मनुष्य को इतना कुरूप, इतना पाशविक बनाता हो, जितना कि उग्र क्रोध। ( जान वैब्स्टर )

क्रोध एक बहुमूल्य विलास-वस्तु है, जिसका उपभोग एक विशेष आय वाले व्यक्ति ही कर सकते हैं। ( जी० डब्ल्यू कर्टिस )

मनुष्य को मूर्ख बनाने में उग्र संवेग अनुपम है। यह अमूर्खों को मूर्ख बना देता है तथा मूर्ख को प्रकट कर देता है। ( हाल )

( क्रोध : का परिणाम )

प्रातः से सायं तक कार्य करने से मनुष्य उतना नहीं थकता, जितना क्रोध या चिन्ता से घण्टे भर में थक जाता है। ( जेम्स एलन )

प्रतिशोध नीच मन का नीच सुख है। ( जुविनाल )

जब संवेग सिंहासन पर विराजमान होता है तब विवेक द्वार से बाहर रहता है। ( एम० हेनरी )

बुद्धिमानों का क्रोध चकमक से निकाली जाने वाली अग्नि के समान होता है। वह बहुत परिश्रम से निकलती है और निकलते ही बुझ भी जाती है। ( एम० हेनरी )

वश में न रखा गया क्रोध उस आघात से अधिक दुःखदायी होता है जिससे वह उत्पन्न होता है। ( सेनेका )

प्रत्येक छोटी-छोटी बात पर क्रुद्ध होना मुझे बहुत मँहगा पड़ता है। ( टी० ऐडम )

मृत्यु-शय्या पर पड़े सर वाल्टर स्काट के शब्द स्व-जामाता के प्रति—
लाकहार्ट ! मैं तुमसे शायद मिनट भर ही बात कर सकूँ। मेरे प्यारे, सद्गुणी बनो, धार्मिक बनो, सज्जन बनो। अन्तिम समय लेटोगे और कोई वस्तु तुम्हें शान्ति न देगी।

जो क्षणिक क्रोध को वश में कर सकता है वह शोक के दिन से बच जाता है। क्रोध को वश में कर लेना अच्छा है, परन्तु उसे आने ही देना और भी अच्छा है। (ट्राइन एड्वर्ड्स)

विकार उद्दण्ड पशु हैं, इसलिए उन्हें धर्म विवेक तथा नीति की शृंखलाओं से बाँध रखना चाहिए। इस प्रकार तो वे सहायक सेवक होंगे, अन्यथा उद्दण्ड स्वामी बन सहस्रों संकटों में घसीट ले जायँगे। (सर एम० हेल)

जब क्रोध, बे-काबू होकर, कुछ करने को दौड़ता है, तब युद्ध के जोशीले घोड़े के समान मार्ग में ही ठोकर खाता है। (सेवेज)

अंगूर के नशे के समान क्रोध का नशा, हमें दूसरों के सम्मुख प्रत्यक्ष कर देता है, परन्तु हमें अपने आप से छिपाये रखता है। (कोलटन)

यदि किसी दुष्ट मनुष्य से आपको झगड़ा करना ही पड़े तो स्वयं करने के स्थान पर अपने वकील से कराइये। (कोलटन)

ऐसे भी अवसर होते हैं जब नाराजगी का प्रकाशन उचित ही नहीं, आवश्यक भी होता है, उदाहरणार्थ झूठ, स्वार्थ व अत्याचार के विरुद्ध। (स्माइल्स)

प्रायः जीवन वैसा ही बनेगा, जैसा हम स्वयं इसे बनायँगे। आनन्दी मनुष्य संसार को आनन्दमय बनाता है, खिन्न व्यक्ति खिन्न। (स्माइल्स)

ज़रा-ज़रा-सी बात पर क्रोध करना तुच्छ व बच्चों-जैसी बात है; क्रोध में लाल-पीला होकर आगा-पीछा न देखना जंगलियों का सा काम है; निरन्तर क्रोध में डूबे रहना शैतानों का स्वभाव व रीति है; किन्तु क्रोध से बचना व उसे दबा देना, बुद्धिमत्तापूर्ण, शानदार, मानवोचित तथा दिव्य कार्य है। (वाट्स)

उग्र क्रोध की अवस्था में कोई कार्य मत करो। ऐसा करना नौका को तूफानी सागर में चलाना है। (थामस फुल्लर)

बुद्धिमान मनुष्यों को उचित मात्रा में ही क्रोध शोभा देता है।

( फ़िलेमन )

क्रोध-भरी आवाज़ विवेक की मौत का घुँघरू है। ( बोयेस )

किसी संवेग का मूल्य उसके परिणाम की परीक्षा से निर्धारित किया जाता है। संवेग अच्छा वा बुरा नहीं होता, अच्छी वा बुरी उसकी अभिव्यक्ति होती है। ( ईमेशन, पृ० २८१ )

लगे मुँह भी चिढ़ाने देते-देते गालियाँ साहब,
ज़ुबाँ बिगड़ी तो बिगड़ी थी खबर लीजे दहन बिगड़ा। ( गालिब )

फ़ितने को जहाँ तलक हो दीजिये तस्की,
ज़हर उगले कोई तो कीजे बात शीरी।
गुस्सा गुस्से को और भड़काता है,
इस आरजा का इलाज बिलभिस्ता नहीं॥ ( हाली : दीवान )

ऊँचा नीयत का अपनी जीना रखना।
अहबाब से साफ अपना सीना रखना॥
गुस्सा आना तो नेचुरल है 'अकबर'।
लेकिन है शहीद ऐब, कीना रखना॥ ( अकबर )

न निरे ऊँट हो न हो बुलडाग।
न तो मिट्टी ही हो न तुम हो आग॥
चाल है एतदाल की अच्छी।
साज़े हिकमत का जोड़ है यह राग॥ ( अकबर )

मुनासिब है यही दिल पर जो कुछ गुजरे उसे सहना।
न कुछ किस्सा न कुछ झगड़ा न कुछ सुनना न कुछ कहना॥

( अकबर )

गुस्सा किस पर करना? अपने पर? यह तो रोज करो। दूसरों पर? यह तो करने का कारण ही क्यों? ( महात्मा गाँधी )

सभा में विनोद कायम रखना। छोटी-छोटी बातों पर चिन्ताग्रस्त, चिढ़े हुए मनुष्य की तरह व्यवहार मत करना, क्योंकि यह तुम्हारे योग्य कर्तव्य नहीं है। ( नेहरूजी को ४-१-१९३८ को लिखे गये पत्र में से )

किसी ने द्वेष का कारण दिया हो तो भी उस से द्वेष न कर उस पर प्रेम करना चाहिए। प्रेम के बदले प्रेम करना—यह कर्ज चुकाने की तरह है।

( महात्मा गांधी : अमृतवाणी पृ० ३५ )

गुस्सा एक प्रकार का क्षणिक पागलपन है। जो लोग जान-बूझ कर या बिना जाने इसके वश में अपने को होने देते हैं, उन्हीं को इस का नतीजा भुगतना पड़ता है। ( महात्मा गांधी )

क्रोध उस पत्थर के समान है जो भिड़ों के छत्ते पर मारा गया हो।

( मालाबार की लोकोक्ति )

क्रोध को कुछ हवा लगने दी जाय तो प्रायः वह क्षमा का रूप ग्रहण कर लेता है, यदि उसे छिपा रखा जाय तो कठोर बन जाता है। ( अज्ञात कर्तृक )

प्रतिशोध पहले तो मधुर लगता है, किन्तु शीघ्र ही कड़वा और अन्ततः अपने आप पर आ पड़ता है। ( अज्ञात कर्तृक )

क्रोध ज्ञानी मनुष्य के हृदय में तो झाँकता भर है, निवास मूर्खों के हृदय में करता है। ( लोकोक्ति )

# परिशिष्ट–२

## प्रमुख सहायक ग्रन्थ-सूचियाँ

### ( क ) हिन्दी ग्रन्थ-सूची


१. रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि

२. बुधजन : बुधजन सतसई

३. बनारसी दास : बनारसी विलास

४. बनारसी दास : जैन शतक

५. कृष्णवल्लभ द्विवेदी : भारत-निर्माता

६. धर्मशास्त्र अर्थात् पुराना और नया धर्म-नियम

७. तुलसीदास : तुलसी-ग्रंथावली

८. रामसरूप : नीति-सूक्ति-कोश, हिन्दी में नीतिकाव्य का विकास

९. गिरिधर : कुंडलियाँ

१०. कबीर-ग्रन्थावली

११. वियोगी हरि : सन्त सुधासार

१२. वुडवर्थ व मार्क्विस : मनोविज्ञान

१३. रामबालेश्वर सिंह : विकासात्मक बालमनोविज्ञान

१४. हनुमानप्रसाद पोद्दार : मानव-धर्म

१५. विनोबा भावे : गीता-प्रवचन

१६. विनोबा भावे : इस्लाम क्या है ?

१७. सीताराम–कान्ति मोहन : शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार

१८. द्वारकाप्रसाद शर्मा : भारतीय चरिताम्बुधि

१९. सुरेशसिंह : जीव-जगत्

२०. व्रजेश बहादुर : जन्तु-जगत्

२१. डी० आई० लाल : आधुनिक बाल मनोविज्ञान

२२. सीताराम जायसवाल : शिक्षा मनोविज्ञान दीपिका

२३. एस० एस० माथुर : शिक्षा मनोविज्ञान
२४. गुरुनारायण पांडये : विश्व के महान् विचारक
२५. महात्मा गांधी : अमृतवाणी ( संकलन )
२६. हरिभाऊ उपाध्याय : मेरे हृदय देव
२७. सं० कृष्ण बिहारी सहल : लाल बहादुर शास्त्री
२८. कालासिंह : गुरु नानक निरंकारी
२९. माई दयाल जैन : ऐसे थे नेहरु जी
३०. रमाशंकर गुप्त : सूक्तिसागर
३१. श्री कृष्णदत्त भट्ट : धर्म क्या कहता है ? ( पुस्तिकामाला )

## ( ख ) अंग्रेजी-ग्रन्थ-सूची

1. Encyclopaedia of Religion & Ethics.
2. Aristotle : The Nichomachean Ethics ( 1956 )
3. Seneca : Moral Essays.
4. Darwin : Expression of Emotions in Animals & Men.
5. W. B. Cannon : Bodily Changes in Pain, Hunger & Fear ( 1934 ).
6. Young P. T : Emotion in Man & Animal.
7. Hume : Treasure House of Living Religions.
8. Bacon : Essays.
9. Dictionary of Thoughts.
10. Prem Nath : Popular Talks on Psychological Topics.
11. Akhilananda : Mental Health & Hindu Psychology.
12. Reader's Digest : Marnels & Mysteries of Animal World.
13. Miller R. F. : The Saints that moved the World.
14. Benjamin Walker : Hindu World.
15. Samuel Smiles : Character.
16. P. T. Young : Motivation & Emotion.

## ( ग ) संस्कृत-ग्रन्थ-सूची

१. वेद
२. उपनिषद्
३. वाल्मीकि-रामायण
४. महाभारत ( गीता; विदुरनीति )
५. पुराण
६. मनुस्मृति
७. सुभाषितरत्नभांडागार
८. सुभाषितरत्नसन्दोह
९. सं० अच्युतानन्द : व्याख्यानमाला
१०. विश्वनाथ : साहित्य-दर्पण

## ( घ ) अन्य भाषाओं की ग्रन्थ-सूची

१. महात्मा बुद्ध : धम्मपद ( पालि )
२. कुरान ( उर्दू )
३. हदीस ( ,, )
४. गुरु ग्रन्थ साहिब ( पंजाबी )
५. मुहम्मद सुलेमान : रहमतुल आलिमीन ( उर्दू )
६. ज्ञानसिंह ज्ञानी : तवारीख़ गुरु ख़ालसा
७. वसुनन्दि : श्रावकाचार ( प्राकृत )